आमंत्रण आरोग्य को

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर ही रोगी नहीं होता, मन भी रोगी होता है, भावनाएं भी रुग्ण होती हैं। वास्तव में भावना का रोग मन को रुग्ण बनाता है और मन का रोग शरीर को रुग्ण बनाता है। रोग का विशाल साम्राज्य है। रोग को निमंत्रण देना बहुत आसान है। बहुत कठिन काम है आरोग्य को आमंत्रण देना। प्रस्तुत पुस्तक में इस कठिन कार्य को सरल बनाने की प्रक्रिया है ।

Jain Education International nly www.jainelibrary.org

आमंत्रण आरोग्य को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमंत्रण आरोग्य को

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

© आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान)

संपादक :
मुनि दुलहराज
मुनि धनंजय कुमार

स्वर्गीय श्री जेठमलजी संचेती, स्वर्गीया श्रीमती भंवरीदेवी संचेती (चाड़वास-राजस्थान) की पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र श्री जोरावरमल संचेती एवं सुपौत्र श्री संपतसिंह संचेती, काठमाण्डो (नेपाल) के सौजन्य से प्रकाशित।

प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक : आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान)
मूल्य : साठ रुपये / संस्करण : १९९९ / मुद्रक : कलरप्रिंट, दिल्ली-११००३२

AAMANTRAN AAROGYA KO *by* Acharya Mahaprajna Rs. 60.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुति

शरीर ही रोगी नहीं होता, मन भी रोगी होता है, भावनाएं भी रुग्ण होती हैं। वास्तव में भावना का रोग मन को रुग्ण बनाता है और मन का रोग शरीर को रुग्ण बनाता है। रोग का विशाल साम्राज्य है।

आरोग्य रोग का निषेध नहीं, वह भावात्मक अवस्था है। दवा ली, बीमारी मिट गई, आरोग्य उपलब्ध हो गया। यह आरोग्य की वास्तविक समझ नहीं है। रोग आया और फिर आरोग्य समाप्त। फिर दवा लें तब आरोग्य मिले। इस अर्थ में आरोग्य दवा के हाथ की कठपुतली बन गया। वास्तविकता ऐसी नहीं है। आरोग्य है विधायक भाव। आरोग्य है मनोबल, सृजनात्मक चिन्तन, पवित्र स्मृति और पवित्र कल्पना। यह हमारी नैसर्गिक शक्ति है। इसके द्वारा हम सदा स्वस्थ बने रहते हैं। तात्पर्य की भाषा में आरोग्य है हमारी रोग-प्रतिरोधक शक्ति। वह जितनी प्रबल, आदमी उतना ही अरुज। नकारात्मक चिन्तन और भाव रोग-प्रतिरोधक शक्ति को क्षीण करते हैं। इन्द्रियों का असंयम रोग प्रतिरोधक शक्ति को दुर्बल बनाता है। औषधि उसे देनी है, जो रोग को निमंत्रण देता है। नकारात्मक दृष्टिकोण और असंयम की चिकित्सा का अर्थ है, आरोग्य को आमंत्रण। इस भाषा को उलटकर कहें—विधायक दृष्टिकोण और संयम का अर्थ है आरोग्य को आमंत्रण।

रोग को निमंत्रण देना बहुत आसान है। बहुत कठिन काम है आरोग्य को आमंत्रण देना। प्रस्तुत पुस्तक में इस कठिन कार्य को सरल बनाने की प्रक्रिया है। उसका चिन्तन और मनन कर हृदय तक पहुंचा जा सकता है।

मुनि दुलहराजजी प्रारम्भ से ही साहित्य-संपादन के कार्य में लगे हुए हैं। वे इस कार्य में दक्ष हैं। प्रस्तुत पुस्तक के संपादन में मुनि धनंजयकुमार ने निष्ठापूर्ण श्रम किया है।

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

'आमंत्रण आरोग्य का'
कितना विचित्र है यह शीर्षक
कौन नहीं बुलाता है आरोग्य को ?
व्यक्ति क्या-क्या नहीं करता है आरोग्य के लिए ?
मैंने पढ़ा था एक दिन—
एक व्यक्ति तेईस वर्ष से निरन्तर
प्रतिदिन पचहत्तर गोलियां खाता है
केवल स्वास्थ्य के लिए, स्वस्थ बने रहने के लिए
वह छह लाख गोलियां खा चुका है,
और···
गिनीज वर्ल्ड बुक में अपना नाम दर्ज कराकर
बना रहा है दवा खाने का विश्व रिकार्ड ।
यह आरोग्य की चिन्ता का एक निदर्शन है,

क्या प्रश्न केवल शरीर का ही है ?
चिन्तन, विचार और मन का नहीं है ?
शरीर महत्त्वपूर्ण है या मन ?
व्यक्ति की अपनी समस्या है शरीर का रोग
सामाजिक समस्या है चिन्तन और मन का रोग ।

हमारी मानसिकता, हमारा चिन्तन
स्वस्थ है या रुग्ण ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कितने प्रभावों से घिरा हुआ है चिन्तन/मन
प्रतिशोध और घृणा
मिथ्या आग्रह और धारणा
रूढ़ मान्यताएं/मिथ्या अभिनिवेश
हिंसा, अपराध और क्लेश
और भी न जाने कितने भावात्मक उद्वेग
कहां हैं स्वस्थ संवेग, अन्तःप्रवेश
इनसे त्रस्त/ग्रस्त है हमारा चिन्तन
बना हुआ है दुर्बल/रुग्ण/विकृत मन ।

समस्या की तमिस्रा में एक आशा
विधायक दृष्टि और मनोबल की दीप शिखा
महाप्रज्ञ की अन्तःप्रज्ञा से निःसृत
आरोग्य की मीमांसा
जगाएगी नई जिज्ञासा ।
चिन्तन और मन की उलझन
पाएगी स्वतः समाधान
होगा एक नया प्रस्थान
जो बनाएगा व्यक्ति को महान् ।

मुनिश्री दुलहराज का सहज योग
प्राप्त कर आत्मीय सहयोग
प्रस्तुत है महाप्रज्ञ की नवीन कृति
आरोग्य के नए क्षितिज की प्रस्तुति ।

मुनि धनंजयकुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

आरोग्य चिन्तन का १-११७

१. मकड़ी अपने ही जाल में उलझ रही है ३
२. साधुवाद गोर्बाच्योव ! ७
३. हत्या और मृत्युदण्ड में कोई संगति नहीं १०
४. अधूरी सचाई समस्याओं का जाल तोड़ नहीं सकती १३
५. समस्या बन रहा है वैज्ञानिक अनुसंधान १७
६. साक्षरता का मूल्य २०
७. निर्णायक स्वयं उलझा हुआ है २३
८. प्रतीक्षा का क्षण २६
९. संकल्प की स्वतन्त्रता और नैतिकता २९
१०. अशाश्वत में शाश्वत की खोज ३२
११. एक प्रश्न, जो आज भी अनुत्तरित है ३५
१२. आग्रह जन्म देता है विरोधाभास को ३८
१३. जरूरत है आत्ममंथन की ४१
१४. कृत्रिम में अकृत्रिम की खोज ४४
१५. धर्म समन्वय और वैचारिक स्वतंत्रता ४७
१६. जरूरत है उस परम्परा की, जो राजनीति को अहिंसा से जोड़ सके ५०
१७. नशामुक्ति की समस्या और प्रयत्न ५३
१८. जीवन और जीविका के बीच भेदरेखा खींचें ५६
१९. मनुष्य की प्रकृति है शाकाहार ६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. सन्त की कसौटी ६३
२१. अहिंसा का कालजयी आलेख ६६
२२. क्या राजनीतिज्ञ के लिए आध्यात्मिक प्रशिक्षण जरूरी है ? ६९
२३. हिन्दू सम्प्रदाय नहीं, राष्ट्रीयता है ७२
२४. धर्म निरपेक्ष शब्द से उलझी समस्या ७५
२५. नए शब्द की खोज करें ७८
२६. स्वस्थ समाज रचना में हमारी सहभागिता ८१
२७. अणुव्रत की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता ८६
२८. निष्काम कर्म और गीता ८९
२९. अहिंसा की आस्था ९७
३०. अहिंसा का विकास १०६

आरोग्य मन का ११९-२१९

३१. शरीर, मन और मनोबल १२१
३२. मनोबल के तीन रूप १२८
३३. मन के लिए कितना समय ? १३६
३४. मनोबल की हानि क्यों ? १४३
३५. निद्रा, अनिद्रा और अतिनिद्रा १५१
३६. अपना नियंत्रण अपने द्वारा १५८
३७. क्या मानसिक स्वास्थ्य चाहते हैं ? १६६
३८. व्यक्तित्व के तीन प्रकार १७७
३९. तन, मन और आत्मा का सामंजस्य १८६
४०. मन का शरीर पर प्रभाव १९३
४१. संतुलित आहार २०२
४२. मानसिक आरोग्य और अध्यात्म २०८
४३. मानसिक आरोग्य और प्रत्याहार २१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमंत्रण आरोग्य को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आरोग्य चिन्तन का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. मकड़ी अपने ही जाल में उलझ रही है

असीम और ससीम—इन दो शब्दों से हम बहुत परिचित हैं । आकाश असीम हैं । पृथ्वी की सीमा है । इच्छा असीम है, पदार्थ जगत की सीमा है। यदि हमें सीमा का बोध होता तो हम इच्छा को सीमा में बांधने का प्रयत्न करते । यदि इच्छा की सीमा हो जाती तो पर्यावरण विज्ञान के क्षेत्र में एक क्रांति घटित होती । इकोलोजी का एक सिद्धांत है—लिमिटेशन । पदार्थ सीमित हैं इसलिए उनका असीम भोग न करें । जल असीम नहीं है; उसका व्यय उसे असीम मानकर किया जा रहा है । पीने का जल आज भी कम है । केवल राजस्थान ही नहीं, अनेक प्रांत जल-संकट की समस्या से जूझ रहे हैं । वैज्ञानिक कहते हैं— जल का इसी प्रकार अपव्यय होता रहा तो जल-संकट एक दिन गम्भीर रूप ले सकता है । बड़े-बड़े शहरों में गंदी नालियों के जल को साफ कर पीने की नौबत आ सकती है । महात्मा गांधी इस समस्या के प्रति बहत जागरूक थे । वे थोड़े से जल से स्नान कर लेते, अपने कपड़े धो लेते । रूपचन्दजी सेठिया बावन तोला जल से स्नान कर लेते । एक बौद्धिक व्यक्ति को ये बातें पुरानेपन या पिछड़ेपन जैसी लगती है । पानी को घी की तरह बरता जाए— इस धारणा में अतिरंजना की अनभूति होती है । किन्तु किसी भी प्रवृत्ति और अवधारणा का मूल्य समस्या के सन्दर्भ में आंका जाता है ।

सीमा का मूल्य

पानी की समस्या जैसे-जैसे गहराती जा रही है, पर्यावरण विज्ञानी सृष्टि संतुलन की बात प्रस्तुत करते जाते हैं, जल विज्ञानी जल-समस्या की उग्रता को कहते जाते हैं, तब समझ में आता है, सीमा का कितना मूल्य है । एक व्यक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नल के नीचे बैठा। स्नान में पानी का स्रोत बहा दिया। क्या यह सही है ? यह प्रवृत्ति अहिंसा की दृष्टि से भी सही नहीं है और सृष्टि-संतुलन शास्त्र की दृष्टि से भी सही नहीं है। जो काम अल्प से किया जा सकता है उसके लिए अधिक का व्यय क्यों ?

सीमा सामाजिक और धार्मिक—दोनों दृष्टियों से आवश्यक है। इस आवश्यकता की अनुभूति नहीं होती। उसके कारण आंतरिक हैं। जो सीमा का मूल्य नहीं जानता, वह उसका प्रयोग नहीं करता। इसका हेतु अज्ञान है। एक व्यक्ति उसका मूल्य जानते हुए भी उसका प्रयोग नहीं करता, इसका हेतु प्रमाद है। कोई व्यक्ति बहुत आराम का जीवन जीना चाहता है, सुख सुविधा को पूरी तन्मयता से भोगता है, वह भी सीमा नहीं करता। इसका हेतु सुविधावादी मनोवृत्ति है।

मत की बात महीन

एक दीप जलता है। अंधेरा मिट जाता है। ज्ञान की एक रश्मि से अज्ञान को मिटाया जा सकता है। एक हल्का-सा स्पर्श किया, नींद जाग जाती है। एक जीवन सूत्र का स्पर्श हुआ, प्रमाद जागरूकता में बदल जाता है। अज्ञान और प्रमाद की समाप्ति जटिल नहीं है। जटिल है सुख-सुविधावादी मनोवृत्ति। आदमी जन्मा है सुख-सविधा को भोगने के लिए। यह एक अवधारणा है, एक सिद्धांत है,एक मत है। कवि ने ठीक लिखा–'सुई का छेद महीन होता है!' जो मत बन गया, उसे बदलना बहुत जटिल है। भर्तृहरि ने शायद इसी बात को ध्यान में रखकर लिखा होगा–

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते जनो विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं, ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥

अजान को समझाना सरल है। विशेषज्ञ को समझाना भी बहुत सरल है। मतवादी को मनुष्य तो क्या, ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता।

दूसरा संदर्भ

सुविधा की बात समझाने की जरूरत नहीं, अपने आप समझ में आती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है ! सुखभोग की बात बहुत-बहुत सरलता से समझ में आ जाती है । त्याग की बात समझाना अत्यन्त-अत्यन्त कठिन है । भर्तृहरि के श्लोक को इस प्रकार बदला जा सकता है—

सुविधा सुखमाराध्या, सुखतरमाराध्यते प्रियः सुखाभोगः ।
त्यागलवदुर्विदग्धं, सुज्ञोऽपि तं नरं न रञ्जयति ॥

सचमुच ऐसा हो रहा है । त्याग और तप ध्रुव तारे बन रहे हैं । वे आकाश में चमक रहे हैं, जीवन की धरती पर नहीं उतर रहे हैं । त्याग की चेतना जागे बिना पदार्थ-भोग की सीमा नहीं होती और पदार्थ-भोग की सीमा के बिना त्याग की तेजस्विता प्रकट नहीं होती । इस समस्या का समाधान कब होगा? कौन करेगा?

अस्वीकार की शक्ति जागे

आराम और सुख-सुविधा वर्तमान जीवन शैली के प्रमुख अंग बन गए हैं। वैज्ञानिक उपकरणों ने इस मनोवृत्ति को बहुत संपुष्ट किया है । आज के युवक को जीवन जीने की बात कहना अप्रासंगिक है । अधिकतम सुख भोगने की बात प्रासंगिक बन गई है । इस परिस्थिति में संकल्पशक्ति और मनोबल के विकास की बात सोची नहीं जा सकती । जीवन की सफलता के दो सूत्र हैं—संकल्प शक्ति और मनोबल । सुविधावादी दृष्टिकोण इन दोनों पर पर्दा डाल देता है । त्याग का पहला चरण है—संकल्प शक्ति का विकास और मनोबल का पहला चरण है—त्याग की चेतना । जो व्यक्ति अस्वीकार करना नहीं जानता, छोड़ना या त्यागना नहीं जानता, वह कभी मनोबली नहीं हो सकता ।

चिन्तन की त्रुटि

मानसिक तनाव को आज के विश्व की सबसे बड़ी समस्या माना जा रहा है । चिकित्सा के क्षेत्र में उसके उपाय खोजे जा रहे हैं । वे उपाय क्षणिक आश्वासन देते हैं । उससे आगे कारगर नहीं हो रहे हैं । मानसिक तनाव कोई बीमारी नहीं है । वह भावना का अंतर्द्वंद्व है । दवा उसे कैसे मिटा सकती है? उसकी कारगर चिकित्सा है—मनोबल का विकास । मन की तरलता में भावना की गंदगी घुलती है, वह कमजोर हो जाता है और जल्दी टूट जाता है । यदि उसे जमा दिया जाए, वह बर्फ की शिला में बदल जाए तो गंदगी उसमें घुल नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकती। वह आती है, उस पर गिरती है और लुढ़ककर नीचे चली जाती है। इस दुनिया में यह संभव नहीं है कि गंदगी न हो। वह है और रहेगी। संभव है—मन की ऐसी चट्टान बना देना, जिससे गंदगी आए, गिरे और लुढ़ककर नीचे चली जाए। हम असंभव को संभव बनाने की बात सोच रहे हैं और जो संभव है, उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। यह चिन्तन की त्रुटि ही समस्या का एक चक्र बना रही है। मकड़ी अपने लिए जाला बुन रही है और उसी में उलझ रही है। क्या इस जाले को तोड़ने की दिशा में आदमी का प्रस्थान होगा?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. साधुवाद गोर्बाच्योव !

मानव समाज के भाग्य की डोर राजनीति की सत्ता ने अपने हाथ में थाम रखी है। यह अणुबम से अधिक खतरनाक घटना है। सत्ता की कुर्सी पर बैठे लोग मानव-समाज का हित सोच नहीं सकते। उनकी दृष्टि सदा अपनी प्रभुसत्ता को बनाए रखने और उसको विस्तार देने पर टिकी रहती है। काल्पनिक भय और सुरक्षा के नाम पर वे संहारक अस्त्रों का निर्माण करते हैं। यह मानवता के साथ सबसे बड़ी खिलवाड़ है। दिसम्बर १९८८ में सोवियत संघ के राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाच्योव ने सुंयक्त राष्ट्र संघ की महासभा में भाषण देते हुए एक उल्लेखनीय बात कही। उन्होंने कहा—'संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में जन-संगठनों की एक महासभा आयोजित होनी चाहिए, जिससे विश्व की वैकल्पिक आवाज सुनी जा सके और वह विश्व के भविष्य को प्रभावित कर सके।' आज नये विकल्प की खोज करना और उसकी आवाज सुनना बहुत आवश्यक हो गया है। केवल सत्तधीश वर्ग का स्वर सुनते-सुनते मानवता ऊब चुकी है। अब वह नया स्वर सुनने की बाट जोह रही है पर सत्ता ने अपने आपको इतना शक्तिशाली बना लिया है कि बृहत् समाज की आवाज को मूल्य देना ही नहीं चाहती। विश्व भर के कुछ सौ लोग अपनी मनमानी कर रहे है और सारे मानव-समाज को समस्या की भट्ठी में झोंक रहे हैं। यदि सार्वजनिक संगठनों की शक्ति सत्ता की शक्ति पर अंकुश रखने की स्थिति में आ जाए तो समस्या का समाधान हो सकता है।

दीवारों का मूल्य नहीं है

हम जिस दुनिया में जी रहे है, उसके बीच कोई दीवार नहीं है। चीन की दीवार बहुत पुरानी है। पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के बीच भी एक दीवार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन चुकी है किन्तु इस संक्रमणशील जगत् में इन दीवारों का कोई मूल्य नहीं है। दीवार बनाने वाला बहुत बड़ा आदमी नहीं होता। बड़ा आदमी होता है, जो इन दीवारों को तोड़ गिराता है। वायुयान के युग में इन दीवारों का अर्थ कम हो गया है। पुराने किले और गढ़ अर्थहीन हो गए हैं। मनुष्य ने नई दीवारें, नए किले और नए गढ़ बना लिए हैं। सामाजिक विचारधारा, अर्थ-व्यवस्था, राजनीतिक प्रणालियाँ और साम्प्रदायिक कट्टरता की इतनी बड़ी दीवारें खड़ी हो गई हैं कि उन्हें लांघना आकाशमार्ग से भी संभव नहीं है। क्या आज का मनुष्य इन सबका आग्रह छोड़ने को तैयार है ? यदि है तो वे दीवारें अपने आप ढह जाएंगी। यदि उन्हें छोड़ने के लिए तैयार नहीं है तो समस्याओं का समाधान असंभव है।

प्रश्न है संवेदनशीलता का

'मैं सोचता हूं, वैसे ही दूसरा सोचे। मैं करता हूं, वैसे ही दूसरा करे।' इस आग्रहपूर्ण आदत ने विविधता से होने वाले सौंदर्य को मिटाने का प्रयत्न किया है। अपना मार्ग दूसरों पर थोपने की प्रवृत्ति हमेशा हिंसा को जन्म देती है। आज की जरूरत है विविधता में एकता को खोजना। इस दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे शेष से सर्वथा पृथक् किया जा सके और ऐसा भी संभव नहीं है कि पांचों अंगुलियों को एक बना दिया जए। पांचों अंगुलियों का आकार भी समान नहीं है और प्रकार भी समान नहीं है फिर भी उनमें परस्पर सहयोग है। प्रश्न पारस्परिक सहयोग का है, संवेदनशीलता का है।

'जीवो जीवस्य जीवनम्' जीव जीव का जीवन है— इस धारणा ने संवेदनशीलता के रस को सोखा है। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है— इस मात्स्य न्याय ने आक्रामक वृत्ति को प्रोत्साहन दिया है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' इस मान्यता ने सचाई पर पर्दा डाला है। अज्ञान और अविकास की दशा में जीने वाले क्षुद्र जन्तुओं के प्राकृतिक नियमों को बुद्धिमान् मनुष्य अपने पर ओढ़ लेता है, तब समस्या उलझ जाती है।

पाशविक वृत्ति और बुद्धि का योग

बुद्धि और विवेक चेतना के कारण मनुष्य पशु से काफी ऊंचा उठ चुका है फिर भी उसमें पाशविक मस्तिष्क का अस्तित्व विद्यमान है। मस्तिष्क विज्ञानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं— मनुष्य के मस्तिष्क में एक परत एनीमल ब्रेन की है। आदिम वृत्तियां उसी के आधार पर चलती है। हिंसा, उत्तेजना, आक्रामक मनोवृत्ति, आवेश, प्रतिशोध और संघर्ष— इन सबके मूल में वही मस्तिष्क काम कर रहा है। मनुष्य ने एक विशेषता अर्जित कर ली। पशु में पाशविक वृत्ति है पर बुद्धिमत्ता नहीं है इसलिए उसकी पाशविक वृत्ति का प्रयोग एक सीमा में होता है। मनुष्य में पाशविक वृत्ति और बुद्धि— दोनों है इसलिए वह अपनी पाशविक वृत्ति का प्रयोग बुद्धि की पैनी धार के साथ कर रहा है। यह प्रयोग असीम बन गया है। पाषाण युग से अणु अस्त्रों तक का विकास उसी का परिणाम है। मनुष्य बुद्धिमान् है इसलिए इस विकास से वह पीछे हटना भी चाहता। पाशविक वृत्ति का खतरा सीमित होता है। उसके साथ बुद्धि का योग होने पर खतरा असीम बन जाता है। आज का विश्व उसी खतरे का सामना कर रहा है। इस खतरे का समाधान बौद्धिक स्तर पर नहीं किया जा सकता। इसके समाधान का एक मात्र उपाय है—आध्यात्मिक चेतना का विकास।

अध्यात्म का स्वर

कल तक साम्यवाद के खेमे से जो स्वर फूट रहा था, वह कोरी भौतिकता का स्वर था। गोर्बाच्योव का जो स्वर आ रहा है, वह अध्यात्म का स्वर है, अनेकांत का स्वर है—'हम अपना विश्वास नहीं छोड़ेंगे और दूसरों से अपना विश्वास छोड़ने का अग्रह भी नहीं करेंगे।' यह स्वर कोरी बौद्धिकता का नहीं है। इसके पीछे स्वतन्त्रता की आस्था और मानवीय मूल्य की प्रेरणा है।

अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध मानवीय मूल्यों के आधार पर बने, उन्हें विचारधारा से मुक्त किया जाए। कल तक अपने से भिन्न राजनीतिक और धार्मिक विचार रखने वालों को जेल के सींखचों में बन्द करने की बात चलती थी। आज उन्हें मुक्त आकाश दिया जा रहा है। कल और आज के मौलिक अंतर को आध्यात्मिक चेतना के आधार पर ही समझा जा सकता है। बुद्धि इस बात को स्वीकार नहीं करती कि अपने से भिन्न विचार रखने वालों को उड़ानें भरने के लिए मुक्त आकाश दिया जाए। एक शक्तिशाली राष्ट्र का एक शक्तिशाली नेता अहिंसा, अनेकांत और अध्यात्म की भाषा में बोलता है और अहिंसक विश्व के निर्माण की बात कहता है, हथियारों की अर्थव्यवस्था को निःशस्त्रीकरण की अर्थ-व्यवस्था में बदलने का आह्वान करता है। क्या यह कम आश्चर्य है? क्या यह दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य नहीं है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. हत्या और मृत्युदण्ड में कोई संगति नहीं

मृत्यु एक परिवर्तन है

जीवन और मरण—इन दो शब्दों की परिधि में विश्व का सारा प्रपंच समाया हुआ है। जीवन एक उल्लास का सूचक है और मृत्यु अवसाद का। सचाई यही है, नहीं कहा जा सकता। यह मानी हुई सचाई जरूर है। मृत्यु एक प्रसाद हो सकती है और जीवन अवसाद। मैं बहुमत की सचाई को उलटने का प्रयत्न नहीं कर रहा हूं। जो यथार्थ है, उसे अभिव्यक्ति देना आवश्यक है। मृत्यु अवसाद है उन लोगों के लिए, जो अभी जीवित है। जो उसका वरण कर रहा है, उसके लिए अवसाद नहीं है। उसके लिए वह केवल एक परिवर्तन है।

सेना में अनिवार्य भर्ती हो रही थी। एक व्यक्ति से पूछा गया— क्या तुम्हें रण-भूमि में जाने का डर नहीं लग रहा है ?

वह बोला मुझे क्यों डर लगे ? अभी मेरी भर्ती ही नहीं हुई है। मेरा नम्बर ही नहीं आया है।

नम्बर आ जाएगा तो ?

नम्बर आएगा तो क्या पता मुझे मोर्चे पर भेजेंगे या नहीं भेजेंगे।

यदि भेज दिया तो ?

क्या पता मैं अग्रिम पंक्ति में रहूंगा या नहीं।

यदि अग्रिम पंक्ति में रहे तो ?

क्या पता गोली लगेगी या नहीं।

यदि लग गई तो ?

तो फिर डर किसको होगा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोग मौत के नाम से डरते हैं। मौत के क्षण में कोई डर नहीं होता।

जन्म और मृत्यु— दोनों अनिवार्य घटनाएं हैं। जितना स्वाभाविक है जन्म, उतनी ही स्वाभाविक है मौत। हर्ष और विषाद हमारी भावनात्मक मान्यताएं हैं। यथार्थ यह है कि वे दोनों हर्ष और विषाद से जुड़े हुए नहीं है।

प्रश्न मौत की सजा का

स्वाभाविक मौत होने पर सगे-संबंधियों और मित्रों को कष्ट होता है। दुर्घटना में मौत होने पर वह कष्ट बढ़ जाता है। आतंकवादी प्रवृतियों में मौत होने पर वह कष्ट भयंकर बन जाता है। उसकी व्यापकता भी बढ़ जाती है। केवल परिवार वालों को ही नहीं, हर संवेदनशील व्यक्ति को वह कष्ट सालता है। मृत्यु के साथ जितने हेतु जुड़ते हैं उतने जन्म के साथ नहीं जुड़ते। समाचार पत्र के पहले पृष्ठ पर सतवंतसिंह और केहरसिंह को दी गई फांसी का समाचार पढ़ा तो मन कांप उठा। इस बौद्धिक और वैज्ञानिक युग में कितनी बातें बदल गई पर फांसी की सजा में बदलाव नहीं आया। क्या मौत की सजा को बदला नहीं जा सकता ? यह सोचते ही तर्क उभर आता है—हत्या करने वाले की हत्या न की जाए, हत्या करने वाले को हत्या का दण्ड नहीं दिया जाए तो हत्या का सिलसिला अंतहीन हो जाएगा। यह तर्क आपाततः यथार्थ लगता है। कुछ दूर चलने पर इसकी यथार्थता कोहरे में चली जाती है। क्या मृत्युदण्ड की व्यवस्था में मारने वालों की संख्या कम हुई है ? आँकड़े बता रहे हैं—हिन्दुस्तान में हत्या की घटनाएँ प्रतिवर्ष बाईस हजार होती हैं। मृत्युदण्ड बाईस हजार को नहीं मिलता वह दस-बीस लोगों को मिलता होगा। इसमें न्यायिक पक्षपात की बात नहीं है। कानूनी जटिलताएं इतनी अधिक हैं कि बहुत सारे हत्या करने वाले भी मृत्युदण्ड से बच जाते हैं।

हत्या और मृत्युदण्ड

आजीवन कारावास कोई कम दण्ड नहीं है। एक व्यक्ति को लम्बे समय तक कारावास के सींखचों में बन्द रखना, वैयक्तिक जीवन की सुविधाओं और पारिवारिक सम्बन्धों से वंचित रखना कोई दण्ड नहीं है। कुछ विचारक मृत्युदण्ड के पक्ष मे नहीं हैं तो कुछ विचारक उसके पक्ष में है। पक्ष और प्रतिपक्ष को कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। तर्क और प्रतितर्क के दरवाजे कभी बन्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होते। मृत्युदण्ड के समर्थन में आने वाले तर्कों के उपरांत भी एक प्रश्न शेष रहता है। क्या मृत्युदण्ड हत्या की घटनाओं को रोक पाएगा ? इतिहास साक्षी है— हत्या और मृत्युदंड दोनों निरन्तर चलते रहे हैं। हत्या आवेश में की जाती है। मृत्युदण्ड चिन्तनपूर्वक दिया जाता है। इसलिए हत्या और मृत्युदण्ड में कोई संगति नहीं है। आवेश की बहुलता रुके तो हत्या की घटना रुक सकती है अन्यथा उसे रोकना संभव नहीं है। मृत्युदण्ड चिन्तनपूर्वक होने वाली प्रक्रिया है इसलिए उसे बदला जा सकता।

मृत्युदण्ड का औचित्य

भय अपराध की रोकथाम में एक कारण बन सकता है बनता है किन्तु भय के आधार पर मृत्युदण्ड का औचित्य प्रमाणित नहीं किया जा सकता। समाज में केवल हत्या ही अपराध नहीं है और भी बहुत सारे अपराध हैं। अन्य अपराधों की सजा मृत्युदण्ड के बिना हो सकती है तो हत्या की सजा उसके बिना क्यों नहीं हो सकती ? समाज को भय से हांकने की मनोवृत्ति उसके विकास की सूचक नहीं है। भय और प्रलोभन प्रथम दृष्टि में कार्य की साधना में सहायक प्रतीत होते हैं। अंततः कार्यसिद्धि में वे सबसे बड़े विघ्न बनते हैं। एक आदमी ने हत्या की और उसे फांसी की सजा दी गई। एक की मौत आवेश या आतंक के साए में हुई और दूसरे की मौत कानून के साए में। एक की मौत अन्याय के पल्ले में हुई और दूसरे की मौत न्याय के पल्ले में। तराजू के दोनों पल्ले बराबर रहे। आखिर आवेश और चिन्तन— दोनों ने मारने का सहारा लिया। आतंकवाद भी भय की नीति के सहारे चल रहा है। डरा-धमकाकर लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है, यह धारणा ही आतंकवाद को जिला रही है। मृत्युदण्ड का भय दिखलाकर अपराध को रोका जा सकता है, यह धारणा भी भय की नीति के आधार पर चल रही है। इन दोनों में संवेदनशीलता का सूत्र पकड़ में नहीं आता। भय अपराध को भूमिगत कर सकता है, प्रकाश से अंधकार में ले जा सकता है, खुलेपन से छिपाव में ले जा सकता है, उसे मिटा नहीं सकता। उसे मिटाने का एक शक्तिशाली उपाय हैं— संवेदनशीलता। उसकी पतंग आकाश में उड़ रही है, डोर हाथ से गायब है। क्या उसे हाथ में थामने का प्रयत्न होगा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. अधूरी सचाई समस्याओं का जाल तोड़ नहीं सकती

निमित्त : उपादान

मनुष्य के भीतर एक अंगारा है राख से ढका हुआ। ईंधन मिला कि आग भभक जाती है। कुछ विचारक मानते हैं— मनुष्य प्रकृति से अच्छा होता है, परिस्थिति उसे बुरा बनाती है। कुछ मानते हैं — बच्चा सलेट जैसा होता है, परिस्थिति उसे अच्छा या बुरा बनाती है। इस परिस्थितिवाद ने मूल सचाई पर पर्दा डाल दिया है। उपादान हमारी आंखों से ओझल हो गया है। तर्क शास्त्र में कार्य-कारण का सिद्धान्त चलता है। अनुकूल परिस्थिति मिली, मिट्टी घड़ा बन गई। परिस्थिति मिट्टी को घड़े का रूप देने वाली हो सकती है पर वह मिट्टी का निर्माण नहीं कर सकती। मिट्टी उपादान है। कारणवाद की भाषा में मिट्टी को घड़े का आकार देने वाले तत्त्व निमित्त और निवर्तक हैं। निमित्त को सब कुछ मानकर बैठ जाने वाले पूरी सचाई को छू नहीं सकते। अधूरी सचाई समस्याओं का जाल तोड़ नहीं सकती।

मनुष्य का अस्तित्व वर्तमान की उपज नहीं है। मनुष्य वर्तमान की उपज है। वह पहले मनुष्य ही था—ऐसा नहीं कहा जा सकता पर उसका अस्तित्व पहले था और अभी भी है इसीलिए इस स्थूल शरीर में सांस लेने वाले मनुष्य की व्याख्या अतीत के संदर्भ को छोड़कर नहीं की जा सकती। जीनेटिक इंजीनियरिंग के अनुसार मनुष्य के भाग्य की लिपि अथवा कर्म की लिपि जीन में अंकित है। अध्यात्म विद्या के अनुसार वह मनुष्य के सूक्ष्म शरीर या कर्म शरीर में अंकित है। इस लिपि को पढ़कर ही मनुष्य के अच्छा या बुरा होने की मात्रा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्धारित की जा सकती है। परिस्थिति का मूल्य कम नहीं है। अच्छे-बुरे की अभिव्यक्ति में परिस्थिति का बहुत बड़ा हाथ है इसीलिए बदलाव की प्रक्रिया दोनों ओर से चलनी चाहिए। उपदान भी बदले, निमित्त या परिस्थति भी बदले।

अन्तर्द्वन्द्व

वर्तमान मनुष्य का ध्यान परिस्थिति को बदलने पर केन्द्रित है। इस शताब्दी में उसे बदलने के अनेक समायोजन हुए हैं और आज भी हो रहे हैं। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सभी प्रणालियों को बदला गया। परिणाम जो निकलना चाहिए, वह नहीं निकला। इस असफलता के बिन्दु पर पहुंचकर क्या सोचना आवश्यक नहीं है? आखिर खामी कहां है? परिर्वतन के इतने प्रयत्नों के उपरान्त भी वह नहीं हो रहा है। इसका अवश्य कोई हेतु है। उस हेतु की खोज आज की अनिवार्य अपेक्षा है। चैतन्य को गौण कर केवल पदार्थ-परक प्रवृत्तियां समाज में शान्ति की स्थापना नहीं कर सकती। आज पूरे विश्व का वातावरण भय से आक्रांत है। पूरी मानव जाति का अस्तित्व खतरनाक मोड़ पर खड़ा है। यह भय पदार्थ के विस्तार से उपजा है। सुविधावादी समाज नहीं चाहता कि पदार्थ कम हो और भय न हो, यह नियति को मान्य नहीं है। समझौते का बिन्दु दिखाई नहीं देता। वैज्ञानिक उपलब्धियों ने जीवन को इतना सुविधामय बना दिया कि अब उससे पीछे हटने की हमारी तैयारी नहीं है। विकास के मानदण्ड जो बन गए, उनकी अन्त्येष्टि करना हमें पसन्द नहीं है। हम शान्तिपूर्ण जीवन जीना चाहते हैं, अभय और मुक्त वातावरण में सांस लेना चाहते हैं, साथ-साथ पदार्थ का अम्बार भी लगाना चाहते हैं। यह सबसे बड़ा अन्तर्द्वन्द्व है। इस विरोधाभासी सभ्यता में जीने वाला आदमी क्या कभी अपने प्रश्न का उत्तर पा सकेगा?

युग दीर्घदर्शी नहीं है

एक भाई ने बताया—विदेश से कुछ लोग शुद्ध गेहूं की मांग कर रहे हैं।

मैंने पूछा—गेहूं अशुद्ध कैसे ?

रासायनिक खाद से पैदा होने वाला गेहूं शुद्ध कैसे होगा ?

कृषि वैज्ञानिकों ने उपज की बढ़ोतरी के लिए रासायनिक खाद का बहुत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रचार किया था । क्या अब यह दृष्टिकोण बदल रहा है ?

अवश्य बदल रहा है । समझदार लोग अनुभव करने लगे हैं कि रासायनिक खाद से उपजा खाद्य शरीर में विष को भर रहा है ।

विदेश से मांग यह है कि प्राकृतिक खाद से उपजा हुआ गेंहू चाहिए ।

कृत्रिम साधन और कृत्रिम विकास एक बार चलता है और कुछ दूर चलकर वह रुक जाता है । क्या यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि आज का युग प्रवृत्ति के लिए आतुर है, परिणाम के क्षेत्र में दीर्घदर्शी नहीं है ।

सूक्ष्मदर्शी बनें

विज्ञान के क्षेत्र में सूक्ष्म दर्शन का बहुत विकास हुआ है । जीवन के क्षेत्र में स्थूल दर्शन ही चल रहा है । जनता का बहुत बड़ा भाग स्थूलदर्शी होता है । उसका नेता या संचालक स्थूलदर्शी नहीं होना चाहिए । लोकतंत्र में नेतृत्व स्थूलदर्शन के मत पर निर्भर है इसलिए सूक्ष्मदर्शी नेतृत्व की कल्पना करना बहुत कठिन है । एक मंत्री घोटाला कर सकता है, रिश्वत ले सकता है, विशाल दायित्व के प्रति आंखमिचौनी कर सकता है— यह सोचा नहीं जा सकता । कुछ बातें सोच से परे होती हैं । स्थूलदर्शी व्यक्तित्व में यह सब कुछ हो सकता है । केवल परिस्थिति को ही देखने वाला और उसके आधार पर उतार-चढ़ाव की कल्पना करने वाला सूक्ष्मदर्शी नहीं हो सकता । सूक्ष्मदर्शी वही होता है, जो पहले उपादान को देखता है, फिर परिस्थिति का मूल्यांकन करता है । उपादान को बदलने के साथ-साथ परिस्थिति को बदलने की बात सोचता है । बहुत सारे चिन्तकों ने परिस्थिति या व्यवस्था को बदलने की बात पर अधिक भार दिया इसलिए समूचा विश्व उसी धारा के साथ चल रहा है । परिस्थिति को बदलने वाला न बदले और परिस्थिति बदल जाए, क्या यह संभव है ?

मनःस्थिति : परिस्थिति

इस शताब्दी में परिस्थिति या व्यवस्था को बदलने के अनेक प्रयत्न हुए। इस दिशा में साम्यवाद और समाजवाद के प्रयत्नों को आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता । उनके परिणाम हमारे सामने हैं । वैज्ञानिक प्रणालियों ने भी बदलाव के बहुत प्रयत्न किए ? उनकी निष्पत्तियां भी अगम्य नहीं हैं । आज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का मनुष्य चिन्तन के चौराहे पर खड़ा है। वह खोज रहा है— कोई मार्ग मिले, कोई दरवाजा खुले। दरवाजा बाहर की ओर खुलेगा तो परिस्थिति ही सामने आएगी और वह यदि भीतर की ओर खुला तो मनःस्थिति सामने आएगी। आज हमें यह चुनाव करना है— परिस्थिति को बदलें या मनःस्थिति को बदलें। अनेकान्त की भाषा में इसका उत्तर होगा— दोनों को बदलें। केवल मनःस्थिति बदले, यह बात सीमित होगी। केवल परिस्थिति बदले, यह पत्तों और टहनियों को काटने जैसी बात होगी। मूल और पत्तों को अलग करके नहीं देखा जा सकता। मनःस्थिति और परिस्थिति को भी विभक्त कर नहीं देख जा सकता। दोनों के समन्वित बदलाव के प्रति हमारा ध्यान क्यों नहीं जा रहा? इसका कोई उत्तर देगा?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. समस्या बन रहा है वैज्ञानिक अनुसंधान

वैज्ञानिक जगत् की अदूरदर्शिता

रहस्य का जगत् बहुत बड़ा है। उसकी खोज अतीत में हुई है और वर्तमान में भी हो रही है। अतीत में खोज का क्षेत्र सीमित था। वर्तमान में उसका क्षेत्र बहुत बड़ा बन गया है। अतीत में रहस्य के ज्ञान और उसकी खोज के साथ पात्रता का अनुबन्ध कर दिया गया। वर्तमान में पात्र-अपात्र का कोई भेद नहीं है। पात्र की कसौटी थी— जो रहस्य ज्ञान को पचा सके, मानव जाति के अहित में उसका उपयोग न करे, हित में उपयोग करने का भी विवेक हो, उसे व्यवसाय न बनाए, उसके परिणाम के प्रति सतर्क रहे। वर्तमान में पात्र की ये सारी कसौटियां मान्य नहीं है। बहुत सारे वैज्ञानिक अनुसंधान व्यावसायिक बने हुए हैं। शस्त्र-निर्माण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक बहुत बड़ा व्यवसाय है। शस्त्र-निर्माण की नई-नई तकनीकें विकसित हो रही हैं। उनका उपयोग व्यावसायिक दृष्टि से किया जा रहा है। वैज्ञानिकों में एक होड़-सी लगी हुई है। कौन कितना भयंकर शस्त्र बनाए? सुविधा के उपकरणों की भी प्रतिस्पर्धा चल रही है। एक चीज का आविष्कार होता है। उसे व्यापकता मिलती है। कुछ समय बाद उसके बुरे परिणामों की चेतावनी सामने आ जाती है। विद्युत के लिए अणु-भट्टियों के निर्माण का सिलसिला चला, उसकी बहुत गाथाएं गाई गई। अनेक राष्ट्रों में अणु-भट्टियों के निर्माण की होड़-सी लग गई। अब चिन्तन की धारा बदल रही है। उनके निर्माण को खतरनाक बताया जा रहा है। उनके निर्माण पर पुनर्विचार की बात कही जा रही है। क्या यह वैज्ञानिक जगत् की अदूरदर्शिता नहीं है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानव उपकरण के लिए नहीं है

अमेरिका, आस्ट्रेलिया, पश्चिमी जर्मनी, स्वीडन, मैक्सिको, स्पेन, ब्राजील, अर्जेन्टीना, चीन आदि ने अपना अणु-भट्टी निर्माण का कार्यक्रम स्थगित कर दिया है। अणु-धूलि और अणु-विकिरण मनुष्य जाति के सामने एक त्रासदी बना है। अणु का ज्ञान पहले भी था किन्तु उसके उपयोग की बात मनुष्य ने नहीं सोची। उसके दुष्परिणाम प्रत्यक्ष थे। वर्तमान में पहले अणु-भट्टियों का विस्तार किया गया। अब दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं तब उनके प्रति अरुचि प्रदर्शित की गई है। चेर्नोबिल की दुर्घटना के बाद सोच का तरीका बदला है। अणु-भट्टी का प्रभाव हजारों किलोमीटर की दूरी तक पहुंच जाता है। उससे प्रभावित भूमि विकास योग्य नहीं रहती। मनुष्य अनेक बीमारियों का शिकार बन जाता है। बताया गया है— चेर्नोबिल के किरणोत्सर्ग से पांच लाख लोग कैंसर के शिकार होंगे। और भी क्या-क्या होगा, उनका लेखा-जोखा अभी शेष है।

उपकरण मानव के लिए है, मानव उनके लिए नहीं है। जो उपकरण-मानव जाति के विनाश में व्यापृत हो रहे हैं, उनके निर्माण का मोह भंग नहीं हो रहा है। क्या यह कम आश्चर्य की बात है? पदार्थ का अनसोचा-अनसमझा विकास खतरों से भरा हुआ है। कुछ छोटे खतरे हैं और कुछ बड़े खतरे हैं। कुछ तात्कालिक खतरे हैं और कुछ धीमे-धीमे बढ़ने वाले खतरे हैं। ये खतरे वैज्ञानिक खोज के साथ-साथ बढ़ रहे हैं।

मूल्यवान् चिन्तन

आज का समाज इन्द्रिय प्रधान है। उसमें इन्द्रियों की तृप्ति की प्रबल आकांक्षा है। व्यवसाय से जुड़े हुए वैज्ञानिक इस सामाजिक दुर्बलता का लाभ उठा रहे हैं। एक सामाजिक व्यक्ति इन्द्रिय तृप्ति से विमुख हो जाएगा, यह नहीं सोचा जा सकता। इन्द्रिय तृप्ति की सीमा के बारे में सोचा जा सकता है। भारतीय धर्मों में व्रत का चिन्तन बहुत मूल्यवान् रहा है। उसके द्वारा इन्द्रिय तृप्ति पर एक अंकुश लगाया जाता था। विज्ञानोन्मुख समाज लगभग व्रत-विमुख बन चुका है। व्रतजनित नियंत्रण के अभाव में सुखवाद या सुविधावाद को फैलने का अवसर मिला है। आज का आदमी इन्द्रियों को अधिक-से-अधिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृप्त करना चाहता है इसीलिए बाजार बहुत बड़े बन गए हैं। वस्तु भंडार अनगिन पदार्थों से भरे हुए हैं। दुकानों का जाल-सा फैल गया है। ऐसे बहुत कारखाने चल रहे हैं, जिनमें निर्मित वस्तुओं की अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। वे केवल इन्द्रियों को भुलावे में डाल रहे हैं।

समाधान कौन देगा ?

वैज्ञानिक जगत् के अनुसार भूमिगत ईंधन— तेल, कोयला, गैस आदि का भंडार सौ वर्ष में समाप्त हो जाएगा। ऊर्जा के स्रोतों की समाप्ति एक संकट बनकर गहरा गई है। उसके नये विकल्प खोजे जा रहे हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति का समाज ऊर्जा के आधार पर निर्मित हुआ है। ऊर्जा के अभाव में उसका आधार ही ढह जाता है। बार-बार वही प्रश्न उभरकर सामने आता है। क्या मनुष्य के लिए इतने पदार्थ और उपकरण जरूरी है ? वास्तव में नहीं है— इन्द्रियों की उच्छृंखलता बढ़ाकर उनकी जरूरत पैदा की गई है। इस कृत्रिम जरूरत ने गरीबों को बढ़ावा दिया है, आर्थिक विषमता को सहारा दिया है, फलस्वरूप हिंसा और हत्या को नया आयाम मिला है।

मैं जानता हूं— वैज्ञानिक युग में जीनेवाला विज्ञान से दूर नहीं भाग सकता, वैज्ञानिक उपलब्धियों से मुंह नहीं मोड़ सकता किन्तु क्या वह आवश्यकता और प्रलोभन के बीच भेद-रेखा भी नहीं खींच सकता ? आज का वैज्ञानिक अपनी खोजों से विरत नहीं हो सकता। क्या वह उन खोजों से अपने आपको नहीं बचा सकता, जो अपराध, हत्या और नाना प्रकार की बीमारियों के लिए जिम्मेदार है ? अनुसंधान स्वयं समस्या बन रहा है। आर्थिक विकास में उलझा हुआ व्यवसायी और व्यवसाय से जुड़ा हुआ विज्ञान क्या इसका समाधान दे सकेगा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. साक्षरता का मूल्य

अशिक्षा और गरीबी में क्या कोई गठबंधन है ? बहुत सारे गरीब अशिक्षित हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनकी गरीबी का कारण अशिक्षा है । शिक्षित गरीबों की संख्या भी कम नहीं है इसलिए यह तथ्य उलट जाता है । शिक्षा के प्रकार अनगिनत हैं। व्यावसायिक शिक्षा को कला, विज्ञान और साहित्य के बटखरों से नहीं तोला जा सकता । मानवीय मस्तिष्क में असंख्य कोष्ठ है । उनसे संचालित होने वाली असंख्य प्रवृत्तियां हैं। सबके लिए कोई एक सार्वभौम नियम नहीं गढ़ा जा सकता ।

एकांगी धारणा टूटे

हिन्दुस्तान में अभी साक्षरता का अभियान चल रहा है। इस बात की चिन्ता है कि यदि लोगों को तेजी से साक्षर नहीं बनाया गया तो हिन्दुस्तान कुछ वर्षों में निरक्षर देशों की श्रेणी में अग्रणी बन जाएगा। लगता है—साक्षरता को विकास का मानदंड मान लिया गया है। अज्ञान निश्चित ही अंधेरा है। उसमें व्यक्ति न अपने आपको खोज पाता है, न किसी दूसरे को। ज्ञान जरूरी है, इसमें कोई विकल्प भी नहीं हो सकता, कोई दो मत भी नहीं हो सकता। ज्ञान का पहला चरण है अक्षर-ज्ञान। अक्षर-ज्ञान ही ज्ञान है, यह एकांगी धारणा टूट जाए तो साक्षरता का अभियान बहुत सार्थक हो सकता है। शिक्षा, समझ, सोचने की शक्ति और विवेक—इनकी उपेक्षा कर साक्षरता को मूल्य नहीं दिया जा सकता। साक्षरता का अभियान चरित्र विकास के साथ जुड़ जाए तो सही अर्थ में उसे मूल्य दिया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साक्षरता और आचार

आज का प्रश्न है—एक पढ़ा-लिखा आदमी बैंक डकैती में संलग्न है, चोरी करने में अपनी दक्षता का परिचय दे रहा है, शराब पीता है, मादक वस्तुओं का सेवन करता है और एक निरक्षर आदमी इन सारी बुराइयों से बचा हुआ है। क्या साक्षरता उसके लिए कोई वरदान है? क्या निरक्षरता दूसरे के लिए कोई अभिशाप है? यह प्रश्न सही सोच में से नहीं उपजा है। चरित्र का सम्बन्ध साक्षरता और निरक्षरता से नहीं है। उसका सम्बन्ध आन्तरिक चेतना की जागरूकता से है। साक्षरता का संबंध सभ्यता, संस्कृति और भौतिक विकास से जुड़ा हुआ है। तथ्यों को समझने की क्षमता भी साक्षरता से जुड़ी हुई है।

सत्य की यात्रा का पहला पड़ाव है साक्षरता। आचार विकास के लिए हेय और उपादेय अथवा कल्याण और अकल्याण का बोध आवश्यक है। वह ज्ञान के बिना कैसे होगा? आयुर्वेद हित और अहित अथवा स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य का बोध कराने वाला शास्त्र है। शास्त्र अक्षरात्मक है। जो साक्षर ही नहीं है, उसके लिए शास्त्र का क्या मूल्य होगा ? यदि आंख ही नहीं है तो दर्पण का कितना मूल्य होगा ? हम प्रथम दरवाजे को बंद रखकर भीतर में प्रवेश की बात नहीं सोच सकते। साक्षरता और आचार—दोनों के स्रोतों की भिन्नता होने पर भी उनके बंटवारे की बात नहीं सोची जा सकती। उन्हें तराजू के दोनों पल्लों को एक साथ रखकर ही तोलना संगत होगा।

दोनों सापेक्ष हैं

गरीबी की समस्या हिन्दुस्तान की एक बड़ी समस्या है। दुनिया के अनेक देशों में मात्रा भेद से इस समस्या का अस्तित्व बना हुआ है। इसका कारण केवल अशिक्षा अथवा केवल व्यवस्था की त्रुटि नहीं है। कारण का एक चक्र है। अशिक्षा एक बड़ा कारण है, यह स्वीकारने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में हिन्दुस्तान की यह चिंता समझ में आ सकती है—निरक्षरता का अंत आवश्यक है। 'पूरा देश साक्षर हो, सब लोगों में पढ़ने-लिखने की क्षमता हो तो विकास की पृष्ठभूमि तैयार हो सकती है। आचार को प्राथमिकता दी जा सकती है। 'आचारः प्रथमो धर्मः' के स्वर का उद्घोष किया जा सकता है। उसमें आचार के मूल्यांकन का दृष्टिकोण प्रस्फुटित होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । उसके उद्गम स्रोत की जानकारी नहीं मिलती । उद्गम की दृष्टि से ज्ञान की प्राथमिकता है । 'ज्ञानं प्रथमो धर्मः' इसका मूल्यांकन किए बिना 'आचार प्रथमो धर्मः' का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता । वास्तव में हम लोग एकांगी अधिक होते हैं । एक सापेक्ष बात के निरपेक्ष मूल्य दे देते हैं । ज्ञान और आचार दोनों सापेक्ष हैं । ज्ञान के बिना आचार का मूल्य कम होता है और आचार के बिना ज्ञान का भी मूल्य कम होता है । दोनों की युति को ही पूर्ण मूल्य दिया जा सकता है ।

साक्षरता : प्रथम चरण

अन्तर्ज्ञान का सम्बन्ध साक्षरता से नहीं है । उसका स्रोत व्यक्ति के भीतर में होता है । कुछ निरक्षर साक्षर लोगों की अपेक्षा अधिक समझदार, अधिक विवकेशील और अधिक आचारवान् होते हैं । अंतर्ज्ञान की ज्योति सबमें प्रकट नहीं होती । साक्षरता एक सामान्य प्रक्रिया है । अन्तर्ज्ञान की कोई सामान्य प्रक्रिया नहीं है । वह वैयक्तिक उपलब्धि है । हम सामान्य प्रक्रिया का उपयोग कर सकते हैं । एक साक्षर व्यक्ति कुछ पढ़ता है ? पढ़ने का मतलब है— वह दूसरे विचारों को ग्रहण करता है, दूसरों के अनुभवों के प्रकाश में अपनी ज्ञानराशि का संवर्धन करता है । जो पढ़ना नहीं जानता, उसके सामने नये ज्ञान पाने का राजपथ नहीं होता, पगडंडियां होती हैं, वे भी बहुत संकरी । एक व्यक्ति प्रतिदिन कोई न कोई नयी बात न पढ़े, कोई न कोई नया ज्ञान न पाए, उसका जीवन कैसा होता होगा ? शिक्षा के अभाव में केवल आर्थिक गरीबी की संभावना ही नहीं होती, वैचारिक गरीबी की संभावना भी होती है । साक्षरता को शिक्षा का विकास नहीं कहा जा सकता पर वह प्रथम चरण है । उसके अभाव में अग्रिम चरण आगे कैसे बढ़ेगा ? इसलिए साक्षरता की दिशा में कदम बढ़ाना, राष्ट्रीय विकास की एक अनिवार्य प्रेरणा है । क्या यह प्रेरणा का स्वर अब भी अनबोला और अनसुना रहेगा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. निर्णायक स्वयं उलझा हुआ है

विकास की त्रिपदी

समर्पण, पराक्रम और निर्णायक शक्ति— यह विकास की त्रिपदी है। समर्पण का अर्थ है निश्छिद्र श्रद्धा। उसकी दुहाई बहुत है, उपलब्धि दुर्लभ। क्या कोई आदमी दूसरे के विचारों के साथ तदात्म हो सकता है? क्या दो जनों के स्वार्थ एकात्मक हो सकते हैं? प्रत्यक्ष जीवन में इसकी संभावना बहुत कम है। परमात्मा परोक्ष सत्ता है इसलिए उसके साथ तादात्म्य जोड़ा जा सकता है। एक आदमी दूसरे आदमी के साथ जीता है, वह प्रत्यक्ष है। उसके प्रति तादात्म्य की बात सोचना द्वैत में अद्वैत की खोज जैसा है, कठिन बात है। बहुत लोग अपने प्रति भी समर्पित नहीं है तब दूसरे के प्रति समर्पित होने की बात कैसे की जाए? एक आदमी अकेला जीता है, एकान्त में अपनी परिपूर्णता की कल्पना संजो लेता है और अपने प्रति पूर्ण समर्पण की अनुभूति करता है किन्तु उसकी श्रद्धा उस समय कसौटी पर चढ़ जाती है, जब वह समूह का जीवन जीता है। समूह में सब लोग समान नहीं होते। विभिन्न प्रकृति, विभिन्न रुचि, विभिन्न विचार, आचार और व्यवहार के लोग होते हैं। उनकी ओर से आने वाले आघात और प्रतिघातों के क्षण बड़े संवेदनशील होते हैं। उन क्षणों में अपने प्रति पूर्ण समर्पित रहना सचमुच घोर तपस्या है।

समर्पण : अवसरवादिता

जो अपने प्रति समर्पित नहीं होता, वह दूसरों के प्रति समर्पित कैसे होगा? समर्पित कोई दूसरे के प्रति होता ही नहीं। वह समर्पित होता है अपने विचारों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रति और अपने सिद्धांतों के प्रति। उनके माध्यम से किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति। जो विचार और सिद्धान्त के प्रति समर्पित नहीं होता, उसकी विकास-यात्रा अधूरी रह जाती है। आज राजनीतिक संस्थाओं में इसीलिए उलझनें बढ़ रही है कि दल के सदस्य सिद्धान्तों के प्रति समर्पित नहीं है। वे किसी उद्देश्य की पूर्ति या महत्त्वकांक्षा से दल के साथ जुड़ जाते हैं। उनकी पूर्ति न होने पर दलबदल के चक्र में फंस जाते हैं।

धर्म संप्रदायों की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है। सिद्धान्त के आधार पर संप्रदाय को मानने वाले लोग कम होते हैं। अधिकांश अनुयायी इच्छा-पूर्ति या महत्त्वाकांक्षा के साथ चलते हैं। किसी देवता या मूर्ति की पूजा करने में विश्वास नहीं है किन्तु वैसा करने से धन मिलता है तो अमूर्तिपूजक मूर्तिपूजक होने में संकोच नहीं करता। यहां पूजा और अपूजा का प्रश्न नहीं है। मुख्य प्रश्न यह है कि प्रतिमा का अपूजक उसका पूजक बन रहा है, वह किसी सिद्धान्त से नहीं बन रहा किन्तु धन की आकांक्षा से बन रहा है। कोई हिन्दू मुसलमान बन रहा है वह किसी सिद्धान्त से नहीं बन रहा किन्तु किसी प्रतिक्रिया और प्रलोभन के साथ बन रहा है। यह सिद्धान्तहीनता किसी भी दल या संप्रदाय के प्रति समर्पण नहीं है, कोरी अवसरवादिता है। इस अवसरवादिता और समर्पण के बीच भेद-रेखा खींचने के बाद ही कोई व्यक्ति सिद्धान्त के प्रति समर्पित हो विकास की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

सोया है पराक्रम का देवता

आराम, आलस्य और अकर्मण्यता— इनका अर्थ भी लगभग एक जैसा है। आगे बढ़ने के लिए जिस पराक्रम की अपेक्षा है, वह बहुत कम लोगों में होता है। बहुत लोग अपना पैर उठाते ही नहीं। कुछ उठाते हैं तो बीच में ही रुक जाते हैं। तट के पार बहुत कम लोग जा पाते हैं। संशय, अनास्था और कपट इसमें बहुत बाधक बनते हैं। सब जानते हैं कि कष्टों को झेले बिना उनकी अंतहीन शृंखला को कभी तोड़ा नहीं जा सकता। फिर भी हमें कष्ट झेलना पसंद नहीं है और वह इसीलिए नहीं है कि हमारा पराक्रम का देवता सोया हुआ है। वर्तमान युग में जितना विज्ञान का विकास हुआ है उतना ही सुविधावाद का विकास हुआ है। सुविधावादी दृष्टिकोण ने पराक्रम की ज्योति पर एक ढक्कन रख दिया है। कठोर जीवन जीना और कष्ट सहना— ये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों विस्मृति के गर्त में चले गए है। उनके अभाव में सहिष्णुता के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

अज इतनी असहिष्णुता क्यों ? यह प्रश्न बार-बार उभरता है। इसका उत्तर कठोर जीवन से जुड़ा हुआ है। सहन करने की शक्ति का नाम है कठोर जीवन। कठोर जीवन जीने का अर्थ है सहन करने की शक्ति को बढ़ाना। जो कठोर जीवन से दूर भागता है वह सहिष्णुता से भी दूर भागेगा।

मनुष्य और यंत्र-मानव

इस यंत्र-युग में यंत्र-मानव और मनुष्य में एक स्पर्धा हो रही है। समाज के लिए मनुष्य अधिक हितकर है या यंत्र-मानव। यह निर्णय जिसे करना है, वह स्वयं उलझा हुआ है। यंत्र-मानव बहुत काम देता है, शीघ्रता से काम करता है और थकान का अनुभव नहीं करता। मनुष्य में ये क्षमताएं इतनी नहीं हैं। उसमें एक अद्भुत क्षमता है और वह है निर्णय की शक्ति। यांत्रिकता और निर्णय— ये दोनों विरोधी छोर है। यांत्रिकता जड़ता है और निर्णय चेतना की अभिव्यक्ति है। मनुष्य में अन्य प्राणियों की अपेक्षा चेतना अधिक विकसित है। उसका नाड़ी-तंत्र भी अधिक शक्तिशाली है इसलिए वह विवेक कर सकता है, निर्णय ले सकता है। अनिर्णय की स्थिति में विकास के चरण आगे नहीं बढ़ सकते।

निर्णय नेतृत्व का एक विशिष्ट गुण है। नेतृत्व का अर्थ है आगे ले जाने की क्षमता। बहुत लोग संशय की कारा में बंदी बने रहते हैं। वे तथ्यों को जानते हुए भी किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाते। साहस के बिना यह संभव भी नहीं है। खतरा झेलने की शक्ति हो तभी कोई बड़ा निर्णय लिया जा सकता है। आज का मनुष्य मानसिक तनाव भोग रहा है, उच्च रक्तचाप और हृदय रोग से संत्रस्त है। इन सबके पीछे एक बड़ा हेतु है भय का वातावरण। आज का आदमी चारों ओर भय से घिरा हुआ है। वह निर्णय नहीं कर पा रहा है कि धन की लालसा को कम करे अथवा मानसिक तनाव से छुटकारा पाए। यह अनिर्णय की स्थिति ही उसे उलझन में डाले हुए है। क्या मनुष्य अपनी निर्णय-शक्ति का विकास करेगा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. प्रतीक्षा का क्षण

परिवर्तनशील है जगत्

इस परिवर्तनशील जगत् में सब कुछ बदलता है फिर शब्द अपरिवर्तित कैसे रह सकता है ? शब्द भी बदलता है और उसका अर्थ भी बदलता है। किसी समय संप्रदाय शब्द का अर्थ गरिमापूर्ण था। वह सूचक था गुरु परम्परा और उसके आम्नाय का। शताब्दियों तक उसकी गरिमा बनी रही। अर्थ का परिवर्तन घटना के साथ जुड़ा होता है। संप्रदायों ने अवांछनीय व्यवहारों का सहारा लिया, परस्पर कटुता के बीज बोए। परिणाम यह हुआ है— संप्रदाय और सांप्रदायिकता अपनी गरिमा को खो बैठे। आज उनके साथ हल्केपन की अनुभूति जुड़ गई है। इसका मूल हेतु है— अपने संप्रदाय के उत्कर्ष की स्थापना और दूसरे के प्रति घृणा के बीज बोना। मनुष्य में अपनी दुर्बलताएं होती हैं। वे किसी भी रूप से प्रकट हो जाती हैं। अपने आपको महत्त्व देना, अपनी विचारधारा को महत्त्व देनाा, अपनी शक्ति को बढ़ाना, अपने परिपार्श्व में संख्या का विस्तार करना ये सारी प्रवृत्तियां संप्रदाय के लिए विष-बीज बनी हुई हैं। इन्हीं के कारण संप्रदाय की सीमा में कलह और संघर्ष होते रहे हैं।

प्रश्न भेद और अभेद का

वर्तमान युग में सांप्रदायिकता को कम करने के लिए अनेक प्रयत्न किए जा रहे हैं। उनमें एक प्रयत्न है तुलनात्मक अध्ययन। प्रायः सभी धर्म-संप्रदायों ने अहिंसा और सत्य को प्रतिष्ठा दी है इसलिए उनके मूल तत्त्व एक जैसे लगते हैं। कहा भी जाता है— सब धर्मों की मूल बात तो एक ही है। हमने सबमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभेद दिखलाकर सांप्रदायिक संघर्ष को कम करने का प्रयत्न किया है । इसे अवांछनीय नहीं कहा जा सकता । फिर भी इसके परिणाम बहुत अवांछनीय नहीं रहे । सौ अभेदों के बीच एक भी भेद की बात मुखर होकर उन्हें मौन कर देती है, संघर्ष नया रूप ले लेता है ।

केवल अभेद की बात करना एकांगी दृष्टिकोण है । यदि अभेद के साथ हमारी दृष्टि भेदोन्मुखी रहे तो असहिष्णुता को उभरने का मौका कम मिलेगा या नहीं मिलेगा । किस धर्म संप्रदाय ने क्या नई देन दी है ? क्या नये विचार का विकास किया है? यह विषय जन-साधारण तक पहुंचे तो उसका दृष्टिकोण बदल सकता है, दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता बढ़ सकती है । तुलना का अर्थ केवल समानता दिखलाना नहीं है । असमानता का दिग्-दर्शन भी उसका मुख्य अंग है ।

समाज से जुड़ी समस्याएं

समानता और असमानता—इन दोनों के आधार पर ही सहिष्णुता की फसल उगाई जा सकती है । धर्म-संप्रदाय के क्षेत्र में असहिष्णुता कम नहीं हुई है । अपने से भिन्न या विरोधी विचारों को सहना बहुत कम लोग जानते हैं। अन्यान्य क्षेत्रों में असहिष्णुता हो तो आश्चर्य नहीं होता पर धर्म-संप्रदाय के क्षेत्र में यह आश्चर्य की बात है । मुड़कर देखता हूं तो यह भी आश्चर्य नहीं है। मैं अध्यात्म से अनुप्राणित धर्म-संप्रदायों को सामने रखकर सोच रहा हूं । बहुत से धर्म-संप्रदाय समाज-व्यवस्था से सीधे जुड़े हुए हैं । उनका दृष्टिकोण अध्यात्म से अनुप्राणित संप्रदाय जैसा नहीं हो सकता । अहिंसा का विकास सहिष्णुता के विकास पर निर्भर है और सहिष्णुता का विकास अहिंसा के विकास पर निर्भर है । यह निर्भरता अध्यात्म अनुप्राणित धर्म-संप्रदाय में ही हो सकती है । समाज-व्यवस्था से जुड़े हुए धर्म-संप्रदाय अहिंसा की भाषा में सोच नहीं सकते, बोल नहीं सकते । उनकी सोच और वाणी राजनीति के साथ चलेगी । संप्रदाय की मूल प्रकृति को समझकर ही हम उनके अभेद और भेद की मीमांसा कर सकते हैं । अध्यात्म प्रधान संप्रदाय न हिंसा को प्रोत्साहन दे सकता है, न असहिष्णु हो सकता है और न दूसरों के लिए खतरा पैदा कर सकता है । ये सारी समस्याएं समाज से जुडी हुई हैं । समाज-व्यवस्था को प्रधानता देने वाला इन समस्याओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से मुक्त नहीं रह सकता।

धर्म चेतना के साथ जुड़े

संप्रदाय के प्रति बदलती अवधारणाओं में यदि वर्गीकरण नहीं किया गय तो भयंकर भूल की संभावना को नहीं टाला जा सकता। धर्म-संप्रदायों का रक्त रंजित इतिहास राजाओं की तलवार से लिया गया है। उसका हेतु रहा—अपने संप्रदाय को फैलाने का व्यामोह। जब-जब और जहां-जहां धर्म को तलवार के साथ जोड़ा गया तब-तब अनुयायियों की संख्या बढ़ी किन्तु धर्म नहीं बढ़ा इस वैज्ञानिक युग में धर्म, संप्रदाय और उसके साथ जुड़ी विस्तारवादी मनोवृत्ति को अलग-अलग बटखरों से तौलना होगा। उनके साथ तभी न्याय किया ज सकेगा। एक ही बटखरे से सबको तौलने का अर्थ न सही मूल्यांकन होगा और न समुचित न्याय। आज के विश्व-चिन्तन का बहाव संप्रदाय की ओर नहीं है। वह यथार्थ की ओर प्रवाहित है। धर्म एक यथार्थ है। उस तक पहुंचने की गति में तरतमता हो सकती है। उसके स्वरूप में तारतम्य नहीं होता। हम पहुंच के तारतम्य को वास्तविकता मानकर उलझ जाते हैं।

इस उलझन को मिटाने के लिए धर्म-संप्रदायों के अभेद और भेद का अध्ययन आवश्यक है। आज का विचारक इस आवश्यकता की अनुभूति कर रहा है और इस कार्य में जुटा हुआ है। वह दिन विश्व के इतिहास में महत्त्वपूर्ण होगा, जिस दिन धर्म संख्या के बन्धन से मुक्त होकर चेतना के साथ जुड़ेगा। इस क्षण की प्रतीक्षा वैज्ञानिक युग में ही की जा सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. संकल्प की स्वतन्त्रता और नैतिकता

आप स्वतंत्र हैं या परतन्त्र ? यदि स्वतन्त्र हैं तो आपके लिए नैतिकता का कोई अर्थ है। यदि आप परतंत्र हैं तो आपके लिए उसका कोई अर्थ नहीं है। आप अपने कृत के लिए उत्तरदायी हैं या अनुत्तरदायी ? यदि उत्तरदायी हैं तो आपके लिए नैतिकता सार्थक है। यदि उत्तरदायी नहीं हैं तो आपके लिए वह निरर्थक है। संकल्प की स्वतन्त्रता और कृत के प्रति उत्तरदायित्व— इन दो से बंधी हुई है नैतिकता। यदि मनुष्य किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा संचालित हो अथवा किसी राज्य-शक्ति से परिचालित हो तो उसके कर्त्तव्य को नैतिकता और अनैतिकता की भाषा में गांठना सरल नहीं है।

नैतिकता : कारण और निमित्त

नैतिकता की समीक्षा के दो कोण हैं— कारण और निमित्त। नैतिकता का कारण है व्यक्ति का अपना संकल्प। उसके निमित्त अनेक हो सकते हैं। वर्तमान में अनैतिकता का विकास हुआ है। उसका निमित्त है परिस्थिति। परिस्थिति को बदलने की भरपूर चेष्टाएं हो रही हैं। निमित्त के बदल जाने पर उत्तेजना नहीं होगी, उद्दीपन नहीं होगा किन्तु कारण यथावत् बना रहेगा। अनैतिकता का कारण बना हुआ है। उसे छोड़ने का संकल्प जागे बिना कोरे निमित्त का परिवर्तन समस्या को कैसे सुलझाएगा ? हो यही रहा है। सारे राष्ट्र परिस्थिति को बदलने की चिंता में व्यस्त हैं। साम्यवादी राष्ट्रों ने परिस्थिति को बदलने के भरसक प्रयत्न किए, क्या वहां अनैतिकता मिट गई ? रूस और चीन की घटनाएं बता रही हैं— जनता का मानस नहीं बदला है। इससे सही स्थिति का अंकन करने में बड़ी सुविधा होती है। कारण को बदले बिना कोरा निमित्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का बदलाव नैतिकता का मुखौटा बन सकता है, नैतिकता नहीं।

कारण : धर्म की आस्था

राजनीति के पास निमित्त को बदलने की क्षमता हो सकती है। कारण को बदलने की शक्ति उसके पास नहीं है। उसका उपाय है धर्म की आस्था। जापान में आर्थिक संपन्नता बहुत बढ़ी फिर भी कुछ दशकों में चार प्रधानमंत्रियों को त्यागपत्र देना पड़ा। अमेरिका संपन्नता के शिखर पर है पर नैतिकता के शिखर पर नहीं है। गरीबी को अनैतिकता का एक मुख्य निमित्त माना जाता है। जहां गरीबी नहीं है, वहां भी अनैतिकता अपना जाल बिछाए बैठी है। घटनाओं और स्थितियों के अध्ययन से साफ होता है— केवल परिस्थिति बदलने का प्रयत्न बहुत सफल नहीं हो सकता। परिस्थिति के साथ-साथ मनःस्थिति बदले तभी सफलता की बात सोची जा सकती है।

महान् आश्चर्य

धर्म उपाय है मनःस्थिति को बदलने का। राज्यशक्ति या दंडशक्ति के द्वारा उसे बदला नहीं जा सकता। समस्या कुछ उलझी हुई है। धर्म के प्रति आकर्षण कम है। राजनीति के परिपार्श्व में सत्ता है इसलिए उसके प्रति अधिक आकर्षण है। राजनीति और धर्म का संतुलन होता तो अनैतिकता की होली खुलकर नहीं खेली जाती। गीता के कृष्ण ने अर्जुन का मोह भंग किया था। आज का प्रबुद्ध व्यक्ति आस्था भंग कर रहा है। केवल नैतिकता का ही अभाव नहीं है, उसके प्रति आस्था का भी अभाव है। आदमी मान बैठा है— नैतिकता और वैज्ञानिक युग की सुख-सुविधाएं एक साथ नहीं हो सकतीं। सुख-सुविधा को भोगना है तो नैतिकता के हिमालय से नीचे उतरना होगा। यदि नैतिकता के प्रति आस्था होती तो राजनीति नैतिकता-विहीन नहीं होती और धर्म भी नैतिकता शून्य नहीं होता। राजनीति का आदमी नैतिकता को नकारता है वह आश्चर्य तो है पर विश्व का महान् आश्चर्य नहीं। धर्म का आदमी नैतिकता को नकार रहा है, यह विश्व का महान् आश्चर्य है। एक आदमी धार्मिक है पर नैतिक नहीं है। क्या यह दिन में रात होने की घटना नहीं है? दुनिया में कभी-कभी अघटित घटित होता है। यह भी वैसी ही घटना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजनीति और धर्म का एकीकरण खतरनाक है

राजनीति और धर्म एक नहीं है। उनका एकीकरण खतरनाक है। अपने-अपने स्थान पर दोनों का महत्त्व है। उन्हें मिला देने पर दोनों का मूल्य कम हो जाता है। इस प्रसंग में आचार्य भिक्षु ने एक कथा कही, वह अत्यन्त प्रासंगिक है—

एक साहूकार की दुकान में सवेरे कोई पैसा लेकर आया और कहा, 'शाहजी! पैसे का गुड़ है?' दुकानदार ने उस पैसे को नमस्कार कर उसे ले लिया। उसने सोचा—सवेरे-सवेरे तांबे के सिक्के से व्यवसाय का प्रारम्भ हुआ है।

दूसरे दिन वह रुपया लेकर आया और कहा—शाहजी! रुपये की रेजगी है?' दुकानदार ने रुपये को नमस्कार कर उसे ले लिया। रेजगी गिनकर उसे दे दी। मन में प्रसन्न हुआ— 'आज चांदी के सिक्के का दर्शन हुआ।'

तीसरे दिन वह खोटा रुपया लेकर आया और बोला—'शाहजी! रुपये की रेजगी है?' दुकानदार प्रसन्न होकर बोला—'मेरी दुकान पर कल वाला ही ग्राहक आया है। उसने रुपया हाथ में लेकर देखा तो वह खोटा था। भीतर तांबा और ऊपर चांदी। उस रुपये को फेंककर बोला—'ले जाओ यह खोटा रुपया, रेजगी नहीं है।' वह बोला, 'शाहजी! आप नाराज क्यों हुए? परसों मैं पैसा लाया था, तब तुमने तांबे के सिक्के को नमस्कार किया था, कल मैं रुपया लाया था, तब तुमने चांदी के सिक्के को नमस्कार किया था और इसमें तो तांबा और चांदी—दोनों हैं, इसलिए इसे तुम दो बार नमस्कार करो।'

शाह बोला—'रे मूर्ख! परसों तो अकेला तांबा था, वह ठीक है। कल अकेली चांदी थी, वह और अधिक ठीक है। वे दोनों अलग-अलग थे इसलिए नकली नहीं थे पर इसमें भीतर तांबा और ऊपर चांदी का झोल है इसलिए यह खोटा है। यह किसी काम का नहीं।'

राजनीति और धर्म की मिलावट का इस दृष्टान्त के संदर्भ में अंकन किया जाए तो सचाई स्पष्ट होगी और उनके स्वतंत्र रूप का सही मूल्यांकन होगा, उससे नैतिकता को अधिक बल मिलेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. अशाश्वत में शाश्वत की खोज

प्रतिध्वनि

शाश्वत सत्य की प्रति-ध्वनि धर्म के क्षेत्र में बहुत बार सुनने को मिलती है। कभी-कभी वह राजनीति के क्षेत्र में भी सुनाई दे जाती है। सोवियत संघ के राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाच्योव और चीनी नेताओं के बीच हुए वार्तालाप के संदर्भ में उसे उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। चीन के केन्द्रीय सैनिक आयोग के अध्यक्ष श्री देंग ने कहा—'गोर्बाच्योव के साथ हुई उनकी वार्ता को आठ चीनी अक्षरों में प्रस्तुत किया जा सकता है। उसका अर्थ है—बीती बातों को ताक पर रखकर भविष्य का मार्ग प्रशस्त करना। दोनों नेता इस बात पर सहमत हुए—'गुजरी बातों को गुजरी बातें मानकर आगे बढ़ा जाए।' अतीत की भूलों को भुलाने का यह स्वर धर्म का स्थायी स्वर है! उद्रायण ने चंडप्रद्योत को बन्दी बना लिया था किन्तु बीती बातों को ताक पर रखने के धार्मिक सिद्धांत को सम्मान दिया। बंदी मुक्त हो गया और दोनों एक आसन पर आसीन हो जाए। जैन धर्म का सुप्रसिद्ध शब्द है—खमतखामणा। इसका अर्थ है—क्षमा लो और क्षमा दो। भविष्य को प्रशस्त करने का यह एक सहज मार्ग है। अतीत की बेड़ियों से बंधे हुए पैर उज्ज्वल भविष्य की ओर कभी आगे नहीं बढ़ सकते।

प्रश्न स्वतन्त्रता का

चीन के प्रधानमंत्री ली फेंग ने सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाच्योव के साथ बातचीत के दौरान यह घोषणा की—'स्वतंत्रता, जनतंत्र और मानवाधिकारों पर पूंजीवादी देशों का ही एकाधिकार नहीं है। उनका लाभ समाजवादी देशों को भी उठाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए।' ली ने गोर्बाच्योव से कहा—'चीन को आधुनिकीकरण के लिए शांतिपूर्ण वातावरण में स्थिर आंतरिक स्थिति की जरूरत है।' ये स्वर साम्यवादी मंच से उभरे, इसलिए पुराने होते हुए भी नए हैं। अशांति, हिंसा और आंतक आधुनिकीकरण के सबसे बड़े रोड़े बने हए हैं। शांतिपूर्ण वातावरण ही व्यक्ति, समाज और देश को आगे बढ़ा सकता है। यह सचाई स्वर्णाक्षरों में अंकित सचाइयों में से एक है। जनतंत्र और मानवाधिकार का प्रश्न स्वतंत्रता से जुड़ा हुआ है। धर्मसूत्रों में स्वतंत्रता को इसलिए महत्त्व दिया गया था कि उसके बिना नैतिकता और उत्तरदायित्व की भावना का विकस नहीं हो सकता।

अनुयायिओं की भीड़

देंग ने कहा— 'विज्ञान और तकनीक सहित विश्व-स्थिति में ज्ञानात्मक परिवर्तन हो रहे हैं। इस स्थिति में पुराने नियमों से चिपके रहने पर विफलता ही हाथ आएगी।' जिनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है, उन नियमों से चिपके रहना सचमुच खतरनाक होता है। इस संदर्भ में अनेकान्त का यह दृष्टिकोण बहुत उपयोगी है— नये पुराने की भाषा को बदलो, सांप्रत और असांप्रत की भाषा को मान्य करो। जो सांप्रत है, जिसकी प्रासंगिकता या उपयोगिता बनी हुई है, वह बहुत पुराना होने पर भी हमारे लिए सद्यस्क है। जो सांप्रत नहीं है, वह नवीन होने पर भी अपने अस्तित्व को प्रतिष्ठित नहीं कर सकता। अतीत के प्रति लगाव एक स्वाभाविक मनोवृत्ति है। मनुष्य जिस विचारधारा को लेकर चलता है, अधिकांशतः अतीत में जन्मे होते हैं। अतीत के परिधान में लिपटा हुआ विचार ही आकर्षक बनता है। नया-नया विचार समझ के क्षेत्र में सहज प्रवेश ही नहीं पाता। इसीलिए अनुयायी की परम्परा चल रही है। केवल धर्म के क्षेत्र में ही नहीं, राजनीति के क्षेत्र में भी सव अनुयायी हैं। शास्त्रों की दुहाई केवल धर्म के क्षेत्र में ही नहीं दी जाती, राजनीति के क्षेत्र में भी उसका काफी उपयोग होता है। वर्तमान चिन्तन की सीमा में आता है, अतीत आस्था की सीमा में। साम्यवादी या समाजवादी प्रणाली के अनुयायियों की बहुत वड़ी संख्या है। गांधी के अनुयायी कहने में गौरव का अनुभव करनेवाले भी कम नहीं हैं। लोकतंत्र का अनुगमन करने में गौरव की अनुभूति किसे नहीं है? सारा संसार नाना प्रकार के धर्मों के अनुयायियों से भरा हुआ है। आश्चर्य है— नैनिकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या ईमानदारी के अनुयायियों की भीड़ कहीं नहीं है ।

साधन-शुद्धि का प्रश्न

चीनी छात्रों का आंदोलन उस अनुयायित्व की खोज का आन्दोलन है । साध्य की प्राप्ति पर बल देने वाला मार्क्सवाद क्या अब चिन्तन के नये मोड़ पर नहीं खड़ा है ? साधन शुद्धि के विचार को ताक पर रखकर येन-केन-प्रकारेण साध्य की प्राप्ति कर ली जाती है । उसका परिणाम क्या होता है, यह वर्तमान की साम्यवादी शासन की घटनाओं के आलोक में देखा जा सकता है । साम्यवादी शासन-प्रणाली में भ्रष्टाचार की कल्पना नहीं की जा सकती पर वह जीवन्त है । यही निष्कर्ष नितर आता है कि साध्य और साधन की शुद्धि को बांटना संगत नहीं होता । महात्मा गांधी ने साध्य और साधन की शुद्धि पर समतुल्य बल दिया था पर अनुयायी आखिर अनुयायी होते हैं । वे पीछे चलना पसंद करते हैं, साथ में चलना पसन्द नहीं करते । उनके अनुयायी साधन-शुद्धि के प्रश्न पर मार्क्सवाद से बहुत दूर नहीं है । वाचिक दूरी हो भी सकती है, क्रियान्विति में कहीं दूरी दिखाई नहीं देती । साध्य और साधन— दोनों की शुद्धि पर बल देने वालों में आचार्य भिक्षु अग्रणी थे । उनके सूत्र आज भी ज्योति-स्तम्भ बने हुए हैं । क्या अंधेरे में राह खोजती दुनिया को मार्ग दिखाने की उनकी क्षमता को अभिव्यक्ति मिलेगी ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. एक प्रश्न, जो आज भी अनुत्तरित है

समतामूल्क समाज क स्वप्न अनेक बार देखा गया है और देखा जा रहा है। उसकी स्थापना के लिए संविधान में समता के प्रावधान रखे गए हैं और रखे जा रहे हैं। फिर भी यह कटु सत्य है— समता की अपेक्षा विषमता अधिक व्याप्त है। जाति, धर्म-संप्रदाय, भाषा, रंगभेद भौगोलिक परिस्थिति अथवा सांस्कृतिक भेद किसी-न-किसी बहाने विषमता फूट पड़ती है। इतने स्वप्नों, प्रयत्नों और संवैधानिक आरक्षणों के उपरान्त भी विषमता की जड़ें गहरी होती चली जा रही हैं। उनका हेतु क्या है ? क्या वह हमारे बाहरी वातावरण में है ? अथवा कहीं अन्तर में चेतना के स्तर पर है ?

विद्यमान है विषमता

हम हर समस्या का समाधान बाहरी वातावरण में खोजते हैं। यह हमारी आदत ही बन गई है। विषमता के मूल हेतु चेतना के स्तर पर विद्यमान हैं। कुछ मूर्च्छा के स्तर पर और कुछ मान्यता के स्तर पर। हरिजनों के प्रति सवर्ण हिन्दू समाज की मान्यता आज भी समतामूलक नहीं है। गांवों का वातावरण आज भी विषाक्त है। ग्रामीण लोग हरिजनों को बराबरी का दर्जा देने की बात सोच ही नहीं पा रहे हैं। उनके उत्पीड़न की घटनाएं घटती रहती हैं। अभी भी बहुत गांवों में हरिजन कुएं पर जल भरने में संकोच के साथ ही जाते हैं। यह भय और आतंक का वातावरण स्वतंत्रता की सूचना नहीं है। जातिवाद के संस्कार इतने गहरे हैं कि मानवीय एकता का सिद्धांत उनके सामने टिक नहीं पा रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समता और स्वतन्त्रता

भगवान् महावीर समतामूलक स्वतन्त्रता के पुरस्कर्ता थे। उन्होंने समताविहीन स्वतन्त्रता को मूल्य नहीं दिया। समता और स्वतंत्रता— दोनों अविच्छिन्न भाव से जुड़े हुए हैं। कोरी स्वतन्त्रता की आवाज अर्थहीन आवाज है। आजादी की इतनी लम्बी यात्रा के उपरान्त भी जनता का ध्यान समता पर केन्द्रित नहीं हुआ है। आर्थिक विषमता को लेकर यदा-कदा चर्चा होती है। वह चर्चनीय विषय है पर उससे भी अधिक चर्चनीय विषय है मानवीय समानता का स्तर। अर्थार्जन में व्यावसायिक बुद्धि का तारतम्य हो सकता है। उसके आधार पर किसी को अर्थ का अधिक लाभ हो सकता है, किसी को कम लाभ हो सकता है। इससे मानवीय समानता की धुरी नहीं टूटेगी। वह तब टूटती है, जब एक मानव दूसरे को अपने दर्जे का नहीं मानता।

साफ नहीं है मति और मनीषा

मान्यता का अहंकार कोई नया नहीं है। पुराना होने पर भी सर्वथा अवांछनीय है। इसने समय-समय पर सांस्कृतिक अवरोध उत्पन्न किए हैं। यदि ये अवरोध नहीं होते तो हिन्दुस्तान आज कितना बड़ा होता? क्या बृहत्तर भारत लघु भारत बनता? क्या भारतीय सांस्कृतिक चेतना संकीर्णता की सीमा में आबद्ध होती? अतीत की स्मृति से क्या? वर्तमान का धुंधलका भी साफ नहीं हो रहा है। आज भी मति और मनीषा साफ नहीं है। महावीर ने कहा था— प्राणी मात्र को अपने समान समझो और संकट यह है— आदमी आदमी को अपने समान नहीं समझ रहा है। इस आत्मिक समानता के सिद्धान्त का जितना धार्मिक मूल्य है, उतना ही सामाजिक मूल्य है। इस मूल्य के व्यापक होने में बाधा कहां है? इसकी मीमांसा जरूरी है। क्या अविकसित सामाजिक चेतना बाधा है? अथवा धर्म की अवधारणा बाधा है? अथवा आंतरिक मूर्च्छा, स्वार्थ, अहंकार आदि बाधा है?

बाधा है मूर्च्छा

पहली बाधा चेतना की मूर्च्छा है। इस पर हमारा ध्यान कम जा रहा है। इस सचाई को समझने में एक कहानी बहुत उपयोगी होगी। पिता ने पुत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से कहा— एक कथावाचक आया हुआ है। वह बहुत अच्छा कथा-वाचन करता है। आज तुम भी चलो मेरे साथ। पिता और पुत्र दोनों कथा में गए। कथावाचक ने 'सब आत्माएं समान हैं' इस विषय पर मार्मिक प्रवचन दिया। पुत्र ने पहली बार प्रवचन सुना और उसका हृदय आंदोलित हो गया। पिता भोजन करने घर चला गया और पुत्र दुकान पर। घंटा भर बाद पिता दुकान पर आया। उसने देखा— अनाज का ढेर लगा है और एक गाय अनाज खा रही है। उसने दूर से ही लाठी को उछालना शुरू किया। पुत्र से कहा— अंधा है। देखता नहीं, गाय अनाज खा रही है।

पुत्र बोला—'पिताजी ! अंधा नहीं हूं। आज ही आंख खुली है। सब आत्माएं समान हैं, इस सिद्धान्त ने मेरी दृष्टि को मांजा है फिर क्या होगा— यदि एक गाय ने थोड़ा-सा अनाज खा लिया।'

पिता बोला तू बड़ा मूर्ख निकला। क्या धर्मस्थान की बात दुकान पर लाने की होती है ?

यह मूर्च्छा का एक निदर्शन है।

एंगेल्स की स्वीकृति

हम समता की बात मूर्च्छा के स्तर पर सुन रहे हैं और उसी स्तर पर कर रहे हैं। आंतरिक मूर्च्छा का चक्रव्यूह टूटे बिना समानता की बात कहां फलित होगी ? हमारा आचरण और व्यवहार आंतरिक चेतना का प्रतिबिम्ब होता है। यदि हमारी चेतना में ही समता नहीं है तो व्यवहार समतापूर्ण कैसे होगा ? समाज व्यवस्था समतापूर्ण कैसे होगी ? हमारे समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री और राजनीति के लोग समतामूलक समाज-व्यवस्था की चर्चा बहुत करते हैं। इस पर बहुत सोचा-विचारा और लिखा जा रहा है। मार्क्स से लेकर अब तक यह चक्र चल ही रहा है किन्तु उसका परिणाम बहुत आशाप्रद नहीं है। जीवन की संध्या में मार्क्स और एंगेल्स ने अध्यात्म की आवश्यकता का अनुभव किया था। "मृत्युकाल से कुछ दिन पहले एंगेल्स ने अपने एक पत्र में स्वीकार किया था— मार्क्स और मैं अंशतः नवयुवकों में इस भावना के फैलाने के जिम्मेदार हैं कि आर्थिक पक्ष ही सब कुछ है। एक तो विरोधियों के आक्रमणों के जवाब देने में हमें इस बात पर जरूरत से ज्यादा जोर डालना पड़ा, दूसरे, न हमें समय मिला न अवसर कि हम दूसरे पक्ष को भी पूरे तौर पर देख सकें।" (नई दिशा पृ. ६)

क्या यह प्रश्न आज के चिन्तकों के लिए चिन्तनीय नहीं है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. आग्रह जन्म देता है विरोधाभास का

शुभ संकेत

अच्छाई और बुराई की दुनिया के अपने-अपने नियम हैं। सारी दुनिया नियमों के अधीन चलती है। नियंता अनिवार्य नहीं है, नियम अनिवार्य है। नियम प्राकृतिक भी होता है। बीमार होना बुरी बात है, अपनी बीमारियों को खुलकर समझने का प्रयत्न करना अच्छी बात है। तथाकथित भगवान भी अपनी बीमारी का अनुभव कर रहे हैं, यह एक शुभ संकेत हैं। मुक्त यौन का समर्थन एक मानसिक बीमारी है। उसका समर्थन करने वाले ब्रह्मचर्य का मूल्य बखान रहे हैं। इसे अच्छा ही माना जाए। बीमार आदमी अपनी बीमारी का अनुभव करे, उसे बुरा क्यों माना जाना चाहिए ? लोग कहते हैं अमुक भगवान पहले ऐसा कहते थे, अब ऐसा कहते हैं। यह वैचारिक विरोधाभास और वाचिक विसंगति साधना के क्षेत्र में क्यों होनी चहिए ? इसका उत्तर देना मेरे लिए मुश्किल है। यह कह सकता हूं कि यदि वर्तमान में अच्छी बात कही जा रही है तो क्या पहले की बुरी बात को भुला देना अच्छा नहीं होगा। हमारा ध्यान विसंगति की अपेक्षा संगति पर अधिक केन्द्रित होना चाहिए।

अस्वाभविक नहीं है विचार-परिवर्तन

हर आदमी हर रोज बदलता है। यह स्वाभाविक नियम है। बदलने के साथ न बदलने का भी एक नियम है। न बदलने में विसंगति या संगति का प्रश्न ही नहीं है। यह प्रश्न बदलने के साथ जुड़ा हुआ है। विचार-परिवर्तन अस्वाभाविक नहीं है। वह अस्वाभाविक बनता है आग्रह के कारण। आभिग्रहिकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोवृत्ति विरोधाभास को उभारती है। मिथ्या दृष्टिकेण एक जैसा ही नहीं होता। कोई व्यक्ति किसी झूठी बात को आग्रह के साथ पकड़ता है और दूसरा व्यक्ति नहीं जानता कि यह मिथ्या है इसलिए उसे माने बैठा है। दूसरा दृष्टिकोण मिथ्या है पर उसके साथ मिथ्या को पकड़े रहने का आग्रह नहीं है। पहले दृष्टिकोण में मिथ्या को पकड़े रहने का आग्रह है। कुछ लोग इतने आग्रह के साथ अपनी बात प्रस्तुत करते हैं, मानो वह अंतिम सचाई है। फिर उस बात को बदलते हैं तब विरोधाभास की अनुभूति होती है।

विग्रही मनोवृत्ति

सचाई की प्रस्तुति विनम्रता और सापेक्षता के साथ हो तो पूर्वापर में विरोधाभास जैसा कुछ नहीं लगता। हर व्यक्ति को अपना विचार बदलने की स्वतन्त्रता है। किन्तु उसे यह स्वतंत्रता नहीं है कि वह अपने से भिन्न विचार रखने वालों को कोसता चला जाए, भिन्न विचार का निरन्तर खंडन करता चला जाए। यह खंडन करने की मनोवृत्ति राग-द्वेष की प्रबलता से उपजी मनोवृत्ति है। अनेकान्त दर्शन ने इस मनोवृत्ति को विग्रही मनोवृत्ति बतलाया है। विग्रह आग्रह का अवश्यंभावी परिणाम है।

निर्णायक कौन ?

दृष्टिकोण का दूसरा पहलू इससे भिन्न है। कुछ लोग किसी विचार पर टिक ही नहीं पाते। वे एक दिन में गिरगिट की भांति अनेक रंग बदल लेते हैं। यह भी मिथ्या दृष्टिकोण का एक प्रकार है। आगे बढ़ने के लिए किसी एक विचार के साथ चलना जरूरी है। प्रश्न हो सकता है— किसके साथ चलें? कौन-सा विचार सही है ? इसका निर्णय कौन करे ? निर्णय करने में हर व्यक्ति स्वतंत्र है इसीलिए विचारों और सिद्धांतों की एक भीड़ है। इस भीड़ में से चुनाव करना एक जटिल प्रश्न है। फिर भी हर आदमी किसी-न-किसी सिद्धांत या विचार का निर्णय करता है और उसके सहारे चलता है। उस पर पूरी आस्था रखता है और पूर्ण आस्था के साथ उसे प्रतिपादित करता है। इसे क्या माना जाए ? उसकी अपनी दृष्टि में वह विचार सही है, दूसरे की दृष्टि में वह सही नहीं है। वास्तव में वह सही है या नहीं है, इसका निर्णय कौन करें ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवर्तित होता है विचार

सिद्धान्त की सत्यता और असत्यता का निर्णय देने वाला कोई भी न्यायाधीश उपलब्ध नहीं है । इस बिन्दु पर विचार की सीमा को समझना जरूरी है । कोई भी विचार समग्र या परिपूर्ण नहीं होता । हर विचार समग्र का एक अंश होता है इसलिए उसके साथ सापेक्षता की सीमा जुड़ी रहती है । यदि विचार समग्र होता तो वह निरपेक्ष होता । यदि वह निरपेक्ष होता तो विचार यानि परिवर्तनशील नहीं होता । मार्क्सवाद हो या गांधीवाद, आखिर एक विचार है । उसके साथ परिवर्तन की रेखा जुड़ी हुई है । मार्क्सवाद का सपना अपरिवर्तन के साथ जुड़ा हुआ लगता था । एक शती भी पूरी नहीं हुई कि वह बदलाव के चौराहे पर खड़ा हो गया है । जिस मजदूर की शोषण-व्यथा को आधार बनाकर मार्क्सवाद ने जन्म लिया था, उसी मजदूर का शोषण मार्क्सवादी शासन-प्रणाली में हो, इससे बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है ?

मार्क्सवाद की विडंबना

चीन की घटनाओं ने विश्व को चौंकाया है । वहां सत्ता के सिंहासन पर आसीन लोग राजसी ठाट भोग रहे हैं और सामान्य आदमी को तामसिक रोटियां भी नसीब नहीं हैं । यह दूरी मार्क्सवादी दर्शन में नहीं हो सकती । पहले माना जाता था— यह दूरी वहां नहीं है । छात्र आंदोलन ने स्पष्ट कर दिया यह दूरी वहां बनी हुई है और बढ़ रही है । उस दूरी की गाथा को जागतिक राजनीति के सामने रखना ही तो छात्रों का अपराध था । ऐशो-आराम का जीवन जीने वाले सत्ताधीश कभी नहीं चाहते कि उनके वैभव पर कोई आंच आए अथवा उनके वैभव पर कोई अंगुली उठाए । बंदूक की शक्ति में विश्वास रखने वाले लोग करुणा की आस्था में नहीं जीते । क्रूरता के साथ उनका निकट सम्बन्ध होता है । यदि विचार को परिवर्तनशील माना जाता तो वह दमनचक्र का आधार नहीं बनता । मनुष्य इस भूल को दोहराता आया है । वह परिवर्तनशील को शाश्वत मानकर चल रहा है । यह भ्रांति पहले भी खतरनाक थी और आज भी उतनी ही खतरनाक है । क्या इस खतरनाक मोड़ पर होने वाली दुर्घटनाओं को रोका जा सकेगा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. जरूरत है आत्ममंथन की

स्वतन्त्रता की सीमा

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत संवैधानिक अधिकार— इन दोनों शब्दों के बीच झूल रहा है असंख्य लोगों का भविष्य। गर्भपात एक उदाहरण है। उसके समर्थन और विरोध में अनेक आंदोलन काम कर रहे हैं। उसके समर्थक महिला की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और उसके व्यक्तिगत संवैधानिक अधिकार की दुहाई देते हैं और गर्भपात निरोध के कानून को उचित नहीं मानते। अभी-अभी अमरीकी उच्चतम न्यायालय ने गर्भपात के विरोध में जो निर्णय दिया, वह अमेरिका के महिला मुक्ति आंदोलन की दृष्टि में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है। क्या यह दृष्टिकोण स्वतन्त्रता के प्रति एक प्रश्नचिह्न पैदा नहीं करता ? क्या स्वतंत्रता निरपेक्ष है ? क्या वह असीम है ? यदि है तो वह इस दुनिया की चीज नहीं है। यदि नहीं है तो हमें उसकी अपेक्षा और सीमा का बोध करना होगा। अजन्मे शिशु की हत्या करने को क्या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कहा जा सकता है ? क्या उसे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन माना जा सकता है ? एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की हत्या करने के लिए स्वतन्त्र नहीं है फिर वह जन्म हुआ हो या अजन्मा। इसलिए स्वतन्त्रता की सीमा पर पुनर्विचार करने की जरूरत है।

संदर्भ : रासायनिक ऊर्वरक का प्रयोग

दूसरा उदाहरण है रासायनिक ऊर्वरक का प्रयोग। हर व्यक्ति उपज बढ़ाना चाहता है। आबादी बढ़ रही है, खपत भी बढ़ रही है। बढ़ती हुई आबादी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की मांग को पूरा करने के लिए अधिक उपज की जरूरत है। कृषि वैज्ञानिकों ने उसका विकल्प दिया— रासायनिक ऊर्वरक का प्रयोग। उससे उपज बढ़ी। अब धरती की पैदा करने की शक्ति उर्वरक के हाथों चली गई। उसका अंधाधुन्ध प्रयोग होने लगा। हर किसान को यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त है कि वह चाहे जैसे रासायनिक ऊर्वरक का प्रयोग करे और वह अपनी स्वतन्त्रता का प्रयोग भी कर रहा है। इसका परिणाम बड़ा भयंकर हो रहा है। पर्यावरण वैज्ञानिक और भूगर्भ वैज्ञानिक बता रहे हैं— रासायनिक ऊर्वरक के अंधाधुन्ध प्रयोग से भूमिगत जल दूषित हो रहा है। भूमिगत जल स्रोतों से पेयजल की बड़ी मात्रा में आपूर्ति होती है। यदि वे स्रोत दूषित हो जाएं, जल पीने योग्य न रहे तो मनुष्य जाति का भाग्य लड़खड़ा नहीं जाएगा? केवल भूमिगत जल ही प्रदूषित नहीं हो रहा है, फसल भी प्रदूषित हो रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्रयुक्त ऊर्वरक का पचास प्रतिशत भाग फसल में समा जाता है। उस फसल से उपजा अनाज या अन्य पदार्थ क्या स्वास्थ्य को प्रभावित नहीं करते? रासायनिक ऊर्वरक का अंधाधुंध प्रयोग करने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को क्या असीम रखा जाए?

संवैधानिक अधिकार : नैतिक कर्तव्य

स्वतन्त्रता की सीमा है— दूसरों की स्वतन्त्रता बाधित न हो, प्राकृतिक सम्पदा का विनाश न हो। भूमि, जल और पर्यावरण को प्रदूषित करने की स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती और न ही दी जानी चाहिए। संवैधानिक अधिकार व्यक्ति या समाज के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं किन्तु सर्वोच्च नहीं। नैतिक कर्त्तव्य का स्थान संवैधानिक अधिकार से भी आगे है। संवैधानिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए पुलिस, फौज, शस्त्र और दण्ड-संहिता है। नैतिक कर्त्तव्य की सुरक्षा के लिए वैसी कोई सुरक्षा पंक्ति नहीं है। उसका सुरक्षा कवच केवल सामाजिक चेतना का जागरण है। वह व्यक्तिगत स्वार्थ से दबी हुई प्रतीत होती है। जब समाज और सत्ता के शीर्ष स्थानों पर बैठे लोग व्यक्तिगत स्वार्थ की साधना में लग जाते हैं तब स्वतन्त्रता की आधारभित्ति ही हिल जाती है।

संदर्भ : धर्म-परिवर्तन

तीसरा उदाहरण है धर्म-परिवर्तन की स्वतन्त्रता का। हर व्यक्ति अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार के अनुसार धर्म को स्वीकार कर सकता है और छोड़ सकता है किन्तु वर्तमान में धर्म-परिवर्तन का आधार विचार परिवर्तन कम है, परिस्थिति का दबाव, बलप्रयोग या प्रलोभन अधिक है। समझा-बुझाकर कोई धर्म-परिवर्तन कराए अथवा समझ-बूझकर कोई धर्म-परिवर्तन करे, उस स्थिति में स्वतंत्रता के सामने प्रश्नचिह्न नहीं लग सकता। हरिजन धर्म-परिवर्तन कर रहे हैं। वह विचार-परिवर्तन नहीं है। उनके सामने परिस्थिति की बाध्यता है। सवर्ण लोगों का अहं इतना प्रबल है कि वे हरिजनों को मानवीय धरातल पर समानता देने को तैयार नहीं है। कोई हरिजन घोड़े पर बैठकर बारात निकाले, उससे भी उनके अहं को चोट पहुंचती है। इस परिस्थिति की बाध्यता से क्या व्यक्तिगत स्वतनत्र्ता का सम्मान हो रहा है ? परतंत्रता के इतने निमित्त और हेतु हैं कि स्वतंत्रता बार-बार प्रश्नों के घेरे में आ जाती है। उसका बहुत मूल्य है। वह मनुष्य की सर्वोच्च उपलब्धि है। इस उपलब्धि का स्मृतिकार ने मूल्यांकन किया था—

सर्वं परवशं दुःखं, सर्वमात्मवशं सुखम् ।

स्वतन्त्रता सबसे बड़ा सुख है। कितनी कठिन है उसकी प्राप्ति और कितनी कठिन है उसकी सुरक्षा। इसका आत्ममंथन करना है हर व्यक्ति को और पूरे समाज को।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. कृत्रिम में अकृत्रिम की खोज

जापान के डॉक्टर के० जी० होंडा कृत्रिम रक्त बनाने में सफल हो गए हैं। यह सूचना आश्चर्यजनक है किन्तु कृत्रिम अवयवों के निर्माण, नई प्रजातियों के विकास के युग में चौंकाने वाली नहीं है। आदमी दांतों से सुन सकेगा। लेन्स का प्रयोग कर मोतियाबिंद से दृष्टिहीन बना हुआ आदमी दृष्टि पा जाएगा। चिकित्सा और जीवविज्ञान के क्षेत्र में बड़ी तेजी के साथ परिवर्तन हो रहे हैं। उन परिवर्तनों ने अनेक नये प्रश्न पैदा किए हैं। इक्कीसवीं शताब्दी का प्रभात इन प्रश्नों की अस्फुट आभा से प्रद्योतित रहेगा।

धर्म और विज्ञान

जेनेटिक अनुसंधानों में लगे वैज्ञानिक जीवाणुओं की नयी सृष्टि करने में लगे हुए हैं। कुछ विषपायी जीवाणु तैयार कर लिए गए हैं। पेट्रोल खाने वाले जीवाणु समुद्र की सतह पर फैले पैट्रोल को खा जाते हैं और जल तेल रहित हो जाता है। गंधक खाने वाले जीवाणु गंधक को खाकर हवा को स्वच्छ बना देते हैं। नयी सृष्टि का निर्माण उतना आश्चर्यजनक नहीं है जितना आश्चर्यजनक है मनचाही संतान पैदा करने का प्रयत्न। बौद्धिक, वैज्ञानिक या व्यावसायिक प्रतिभासंपन्न अथवा शल्यचिकित्सा में दक्ष संतान पैदा की जा सकेगी। क्या चरित्र संपन्न संतान भी पैदा की जा सकेगी ? यदि ऐसा होगा तो फिर विश्व को युद्ध, शस्त्रीकरण, आतंकवाद, अपराध और अनुशासनहीनता के संकट से मुक्ति मिल जाएगी। धर्म का उपदेश मनुष्य को चरित्रवान बनाने में बहुत सफल नहीं रहा। इतने धार्मिक उपदेशों के उपरांत भी विश्व में युद्ध से लेकर अनुशासनहीनता तक के दौर चल रहे हैं। यदि विज्ञान धर्म के इस दायित्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को ओढ़ने में सफल हो सका तो फिर विज्ञान और धर्म में भेदरेखा खींचने की जरूरत क्या होगी ?

व्यक्तित्व निर्माण का प्रश्न

शुक्र और रज में विद्यमान जीन्स में कुछ कतर-ब्योंत कर मनचाहे गुण वाले व्यक्तित्व का निर्माण संभव बन जाए तो यह सबसे बड़ी वैज्ञानिक उपलब्धि होगी। फिर व्यक्तित्व-निर्माण का प्रयत्न आवश्यक नहीं रहेगा। कर्मसिद्धान्त के अनुसार मनुष्य में विधायक और निषेधात्मक—ये दो प्रणालियां विद्यमान रहती हैं। निषेधात्मक प्रणाली को निष्क्रिय बनाकर विधायक प्रणाली को सक्रिय बना दिया जाए तो अच्छा व्यक्ति बन सकता है। यह कार्य व्यक्ति के अपने पुरुषार्थ द्वारा संभव हो सकता है किन्तु इसकी कोई कतर-ब्योंत वाली प्रक्रिया कर्म-दर्शन के पास नहीं है।

अकल्पित होड़ का वातावरण

आज सबसे बड़ी समस्या व्यक्तित्व का निर्माण है। व्यक्तित्व का सबसे बड़ा गुण है चारित्रिक विशेषता। उसके बीज का अकुंरण नहीं हो रहा है। भौतिकवादी अवधारणाओं और आर्थिक प्रलोभनों ने एक अकल्पित होड़ का वातावरण पैदा कर दिया है। आर्थिक दौड़ में कोई भी पीछे रहना नहीं चाहता। सारी शक्तियों की आहुति अर्थार्जन के हवनकुण्ड में दी जा रही है। नैतिकता, ईमानदारी, सचाई जैसे शब्द अपना अर्थ बदलते जा रहे हैं। आश्चर्य होता है—समाज के अग्रणी लोग धार्मिक मामलों में घोटाला करते हैं। बड़े-बड़े व्यापारी, उद्योगपति और सत्ता के सिंहासन पर बैठे लोग जब ऐसा करते हैं तब दूसरों के बारे में क्या कहा जा सकता है ?

विकास और संयम

आज आर्थिक विकास की चर्चा हर स्थान पर सुनने को मिलती है। उसका शिक्षण और प्रशिक्षण भी मिलता है। प्रत्येक राष्ट्र आर्थिक विकास की चिन्ता में लगा हुआ है। आर्थिक संयम का स्वर बहुत क्षीण हो चुका है। उसका उच्चारण भी कम हो रहा है और उसे सुनने वाले भी बहुत कम हैं। केवल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्थिक विकास की धुन में लगा हुआ आदमी क्या गबन और आर्थिक घोटालों से बच पाएगा ? विकास और संयम— दोनों सापेक्ष हैं । दोनों का संतुलन ही सामाजिक समस्याओं को समाधान दे सकता है । आर्थिक मामलों में एक अर्थशास्त्री का परामर्श और योजना जितनी उपयोगी हो सकती है उतना ही उपयोगी हो सकता है एक धार्मिक संत का परामर्श । उस धार्मिक संत का परामर्श, जो स्वयं अर्थ में लिप्त न हो ।

अपराध का कारण

लोभ या कामना की अति ने सामाजिक अपराधों की एक शृंखला तैयार की है । आवश्यक श्रम, आवश्यक उत्पादन और अपेक्षित आपूर्ति— इससे अपराध की सृष्टि नहीं होती । आवश्यकता से अधिक अतिरिक्त संग्रह किसी व्यक्ति या किसी राष्ट्र के पास होता है तो वह अपराध का रास्ता साफ करता है इसलिए आर्थिक विकास के साथ आर्थिक संयम की अनिवार्यता है । आर्थिक संयम का सूत्र आज के आदमी की समझ से परे हैं । आर्थिक उपयोगिता के तर्क इतने प्रबल हैं कि उनके सामने उसका टिक पाना भी मुश्किल है । उसका न कोई अपना तर्क है और न कोई उसकी उपयोगिता है । वह एक सचाई है। सत्य इतना साफ होता है कि उसे समझने के लिए किसी तर्क की जरूरत ही नहीं होती । दर्पण में प्रतिबिम्ब होता है । उसके लिए कोई तर्क प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । यदि आर्थिक अपराधों से समाज को उबारना है तो आर्थिक संयम को समझना ही होगा । चाहे आज चाहे कल ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. धर्म समन्वय और वैचारिक स्वतंत्रता

मौलिक अवधारणा

धर्म के मूल तत्त्व समान हैं। उपासना की पद्धतियां भिन्न-भिन्न हो सकती है, धर्म भिन्न-भिन्न नहीं हो सकता। धर्म सत्य है। सत्य दो नहीं हो सकता। वह सबका एक होगा। हिन्दू समाज के सामने वैदिक, जैन और बौद्ध— ये धर्म की तीन मुख्य अवधारणाएं रही हैं। तीनों के अपने संप्रदाय भेद या उपासना भेद हैं पर धर्म की मौलिक अवधारणा में वे एक बिन्दू पर आ जाते हैं। भगवान महावीर ने कहा— **'अप्पणा सच्च मेसेज्जा मेतिं भूएसु कप्पए'** स्वयं सत्य खोजो, सबके साथ मैत्री करो। यही शंकराचार्य ने कहा—

मोक्षसाधनसामग्रयां, भक्तिरेव गरीयसी ।
स्वरूपानुसंधानं, भक्तिरित्यभिधीयते ।।

स्वयं सत्य की खोज करना और अपने स्वरूप का अनुसंधान करना यह वाक्य शब्दों में भिन्न है, तात्पर्यार्थ में भिन्न नहीं है।

विचार का क्षेत्र

आज का युग तुलनात्मक अध्ययन का युग है। दार्शनिक विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है। फलतः आग्रह के बंधन टूट रहे हैं, भाषा और परिभाषा के आवरण में छिपा हुआ सत्य प्रकट हो रहा है।

हिन्दू समाज विचार के क्षेत्र में बहुत उदार रहा है। उसने कभी अपना विचार मनवाने के लिए किसी को बाध्य नहीं किया, तलवार का सहारा नहीं लिया। वह आक्रामक भी नहीं रहा। उसमें जातीय भेद-भाव जैसी अवधारणाएं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होतीं, भाईचारे का भाव प्रबल होता तो वह विश्व का एक अनुकरणीय समाज होता। आज इस बदलते हुए चिन्तन और बदलती हुई अवधारणाओं के वैज्ञानिक युग में हिन्दू समाज को फिर से नया दृष्टिकोण अपनाना जरूरी है।

समन्वय मंच

सांप्रदायिक भेद होना विचार-विकास की प्रक्रिया है। उसे रोका नहीं जा सकता और रोकना भी नहीं चाहिए। समन्वय का दृष्टिकोण होता है तो विचारधारा में भेद हो सकता है, विरोध नहीं। वर्तमान युग ने इस सचाई को समझा है। वैचारिक भेद होते हुए भी विरोध से अविरोध की दिशा में हमारा प्रस्थान हो रहा है, यह सर्वधर्म की दिशा है। समभाव से सद्भाव बढ़ता है और सद्भाव से समभाव बढ़ता है। समभाव और सद्भाव की वृद्धि के लिए एक समन्वय मंच की जरूरत है। विश्व हिन्दू परिषद उसका दायित्व निभा रही है, यह प्रसन्नता की बात है।

धर्म समन्वय : पांच सूत्र

समभाव या समन्वय के लिए सहिष्णुता अनिवार्य है। उसके अभाव में मतभेद मनभेद में बदल जाता है। आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रस्तुत धर्म समन्वय का पंचसूत्री कार्यक्रम बहुत उपयेगी है—

- मंडनात्मक नीति बरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए, दूसरों पर मौखिक या लिखित आक्षेप न किए जाएं।
- दूसरे के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए।
- दूसरे संप्रदाय के प्रति घृणा एवं तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाए।
- संप्रदाय परिवर्तन के लिए दबाव न डाला जाए।
- धर्म के मौलिक तथ्य अहिंसा,सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवनव्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाए।

समस्या है असहिष्णुता

हिन्दू समाज अनेक संप्रदायों में विभक्त है। यदि उनमें समन्वय का सेतु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बना रहे तो संप्रदायों की अनेकता कोई समस्या नहीं है। समस्या है असहिष्णुता। उसे कम करने की दिशा में हमारा प्रयत्न होना जरूरी है। इस कार्य में अनुयायी की अपेक्षा धर्म गुरू का दायित्व अधिक है। धर्म की धारणा के लिए वर्तमान शिक्षा वैसे ही अनुकूल नहीं है। आज के पढ़े-लिखे युवक की धर्म में सहज रुचि नहीं है, फिर वह धर्म-संप्रदायों के झगड़े को देखता है तो उसकी जो थोड़ी-बहुत रुचि होती है, वह भी समाप्त हो जाती है। इसलिए इस विषय पर हमारा ध्यान केन्द्रित होना चाहिए।

चिन्तनीय प्रश्न

आज ऐसा लगता है— हिन्दू समाज संगठित कम है, उसमें बिखराब ज्यादा है। इसका एक कारण उसकी अपनी विशाल संख्या है पर दूसरा कारण भी है और वह है उदासीनता। विचार की स्वंत्रता से कोई धर्म-परिर्वतन करे तो उसे क्षम्य मानना चाहिए किन्तु हिन्दू समाज की उदासीनता, उपेक्षा और भाईचारे की कमी के कारण कोई धर्म-परिवर्तन करता है तो क्या वह चिन्तनीय नहीं है?

कुछ शताब्दियों पूर्व हिन्दू लोग कुछेक देशों में थे। अब वे विश्व के कोने-कोने में फैले हुए हैं। उनका क्षेत्र बढ़ा है। क्षेत्र बढ़ने के साथ-साथ उनकी गुणवत्ता भी बढ़नी चाहिए। लंदन (२६ अगस्त ८९) में होने वाला यह विश्व-हिन्दू-सम्मेलन सर्व धर्म समभाव, समन्वय और संगठन की भूमिका तैयार कर पाएगा, यह कल्पना ही सुखद है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. जरूरत है उस परम्परा की, जो राजनीति को अहिंसा से जोड़ सके

प्रश्न है विश्वसनीयता का

'ग्यारह गांधीवादी संस्थाओं के खिलाफ सी० बी० आई० की जांच' (दैनिक हिन्दुस्तान, ९ अगस्त ८९) यह शीर्षक चौंकाने वाला है। इसमें गांधी का नाम जुड़ा हुआ है। जिस गांधी ने दो पैसे के हिसाब के लिए अपने सचिव प्यारेलाल को लंबे समय तक उलाहना दिया। एक रेल यात्री ने गांधीजी से कहा— 'बापू! आपने दो पैसे के हिसाब के लिए प्यारेलालजी को इतना लताड़ा?' गांधी बोले— 'प्रश्न दो पैसे का नहीं है। प्रश्न है सार्वजनिक पैसे का। जनता मेरे विश्वास पर पैसा देती है। यदि एक पैसा भी इधर-उधर होता है तो मेरे प्रति जनता का विश्वास टूट जाएगा।' महात्मा गांधी का वह आदर्श इस जांच की पृष्ठभूमि में मौन हो रहा है। यदि वह मुखर होता तो कुदाल आयोग की रिपोर्ट का पृष्ठ उजला होता। धन के कथित दुरुपयोग के मामलों की जांच का कार्य केन्द्रीय जांच ब्यूरो को नहीं सौंपा जाता। जो कुछ हुआ है, उसे सौभाग्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार की घटनाओं का होना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। यह आश्चर्यजनक इसलिए है कि यह गांधीवादी संस्थाओं से जुड़ा हुआ है।

नेतृत्वहीन है गांधीवाद

कुदाल आयोग की रिपोर्ट को विवादास्पद बताया जा सकता है, सी० बी० आई० की जांच को भी राजनीतिक रूप दिया जा सकता है किन्तु गांधी गांधी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। उन्हें नहीं बदला जा सकता। वे आज जीवित नहीं है। उनके नाम पर चलने वाली संस्थाओं के लिए वे उत्तरदायी भी नहीं हैं। उन संस्थाओं में कुछ हुआ या नहीं हुआ, यह भी मेरे सामने चर्चनीय विषय नहीं है। चर्चनीय विषय यह है आज गांधीवाद की डोर को थामने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं है। आचार्य विनोबा ने कुछ अंशों में गांधीवाद का नेतृत्व किया था। अब वे भी इस दुनिया में नहीं हैं। इसलिए गांधीवाद नेतृत्व-विहीन अथवा दिशासूचक सुईविहीन जैसा लग रहा है।

गांधीवाद : वर्तमान स्थिति

गांधीजी सदा गांधीवाद शब्द को नकारते रहे। वे नहीं चाहते थे—उनके पीछे कोई संप्रदाय बने। उनकी चाह का विशेष अर्थ हो सकता है पर वह मानवीय मनोविज्ञान के अनुकूल नहीं है। हम चौखटे में मंढ़ी हुई विचार-धारा प्रस्तुत करें और उसके आकार को नकारें, यह कैसे संभव हो सकता है? संप्रदाय से जुड़े हुए खतरों से सावधान रहा जा सकता है किन्तु विचारधारा से उपजने वाले संप्रदाय को नहीं रोका जा सकता। गांधीजी ने अपनी स्वतंत्र विचारधारा का अभिषेक किया किन्तु उसे ताज पहनाना उचित नहीं समझा। परिणाम यह हुआ—संप्रदाय बन गया, नेतृत्व विकसित नहीं हुआ। यदि संप्रदाय के साथ नेतृत्व के विकास की बात सोची जाए तो अच्छे परिणाम आ सकते हैं। संप्रदाय की अनिवार्यता हो जाए और नेतृत्व के विकास की बात को नकार दिया जाए तो विषम स्थिति उत्पन्न हो जाती है। गांधीवाद आज उसी स्थिति को भोग रहा है।

न निर्णायक : न नियंत्रक

गांधीजी की नीति अहिंसा से जुड़ी हुई हैं। अहिंसा जागतिक समस्याओं के लिए बहुत बड़ा समाधान है पर गांधी की नीतियों का कोई अधिकृत संचालक नहीं है। संप्रदाय का अर्थ है—उत्तराधिकार की परंपरा की स्वीकृति। यदि गांधीजी पूरी शक्ति का नियोजन कर किसी को गांधीवाद का प्रवक्ता मनोनीत करते और उस परंपरा को आगे बढ़ाने की बात सोचते तो एक दो शताब्दी तक अहिंसा की नीति का एक समर्थक संचालक व्यक्तित्व मिलता रहता। सुदूर भविष्य में हो सकता है स्थिति बदल जाए पर निकट भविष्य इतना अनिर्णायक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होता। आज गांधीवादी नीतियों का न कोई निर्णायक है और न कोई नियंत्रक है।

मेरे पीछे संप्रदाय हो या न हो— ये दोनों चिन्तन सापेक्ष हैं। इन्हें निरपेक्ष मानकर चलना हितकर नहीं है। अपने पवित्र उद्देश्य और अहिंसात्मक नीति के साथ केई संप्रदाय चले तो उसमें कठिनाई क्या है? यदि इनकी अवहेलना कर चले तो उसे चलाने का अर्थ ही क्या है?

जरूरत है एक मोड़ की

गांधीवाद चले या न चले, यह मेरे चिन्तन का विषय नहीं है। मेरे चिन्तन का बिन्दु यह है— विकेन्द्रित सत्ता और विकेन्द्रित अर्थनीति तथा उद्योग का विकेन्द्रीकरण समाज के लिए अधिक कल्याणकारी है। केन्द्रीकरण की नीति ने समाज को यांत्रिक बना दिया है। यंत्र मनुष्य पर हावी होता जा रहा है। रोबोट का शिकंजा फैलता जा रहा है और मनुष्य सिकुड़ता जा रहा है। चेतना का यह अवमूल्यन आज के भौतिकवादी दृष्टिकोण की फलश्रुति है। इस स्थिति का सामना करने के लिए कोई भी हिंसात्मक नीति सफल नहीं हो सकती। राजनीति और समाज के क्षेत्र में कोई भी ऐसा संगठन नहीं है, जो सत्याग्रह और हिंसात्मक नीति के द्वारा केन्द्रीकरण की नीति में नया मोड़ ला सके। आज सचमुच एक मोड़ की जरूरत है। मैं मानता हूं कि गांधी जैसे व्यक्ति को पैदा नहीं किया जा सकता, वह स्वयं पैदा होता है। परंपरा व्यक्तित्वों का निर्माण करती है—कभी निरन्तर और कभी सान्तर—पर उसमें विच्छेद नहीं होता। परंपरा का अभाव विच्छेद की स्थिति पैदा कर देता है। मैं परंपरा का समर्थक हूं तो साथ-साथ उसके व्यवस्था पक्ष का भी समर्थक हूं। यह मुझे कभी वांछनीय नहीं है कि परंपरा चले और उसका कोई नियंता न हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. नशामुक्ति की समस्या और प्रयत्न

जार्ज बुश की समस्या और प्रयत्न

बहुत पुराना उपदेश है—नशा मत करो। यह धर्म का उपदेश है इसलिए धर्म को मानने वालों ने इस पर ध्यान दिया, न मानने वालों ने इसकी उपेक्षा की। अब 'नशा मत करो' यह स्वर राष्ट्रीय समस्या के रूप में उच्चरित हो रहा है इसलिए यह सबका ध्यान आकर्षित कर रहा है। अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने कहा—नशीले पदार्थों का सेवन राष्ट्र के लिए गंभीर खतरा पैदा कर रहा है। राष्ट्रपति बुश ने नशीले पदार्थों की रोकथाम के लिए एक रणनीति बनाई है। उसके मुख्य अंग हैं—आवंटित धनराशि का सही उपयोग, उसके लिए कानून, कानून का उल्लंघन करने वालों के लिए जेल की व्यवस्था, मादक वस्तु का सेवन करने वालों का उपचार करना, उन्हें नशे के खिलाफ जागरूक बनाना।

नशे की आदत : कारण

यह वर्तमान बीमारी के उपचार की व्यवस्था है। इसमें बीमारी के मूल कारण का कोई उल्लेख नहीं है। नशे के परिणाम बुरे होते हैं, यह जानते हुए भी आदमी नशे में क्यों जाता है, यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। क्या कोई व्यक्ति जान-बूझकर हृदयरोग, कैंसर जैसी भयंकर बीमारियों को निमंत्रण देना चाहेगा? कोई नहीं चाहता फिर भी नशा करने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। शिक्षा संस्थानों के परिसर नशे की पकड़ में आ रहे हैं। इन सबका मुख्य कारण है—मानसिक तनाव। छोटे-मोटे अन्य कारण भी हो सकते हैं पर मुख्य कारण है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानसिक तनाव है। आज का सामान्य आदमी आजीविका के प्रश्न सें उलझा हुआ है। एक विद्यार्थी पढ़ने से पहले, पढ़ते समय और पढ़ने के पश्चात् इस समस्या को दिमाग से नहीं निकल पाता कि अच्छी नौकरी लगेगी या नहीं, अच्छा व्यवसाय हाथ लगेगा या नहीं। वर्तमान समाज में प्रश्न केवल पैसे का नहीं है, प्रतिष्ठा का प्रश्न भी उसके साथ जुड़ा हुआ है। पैसा और प्रतिष्ठा— इन दोनों स्थितियों के निर्माण में काफी मानसिक तनाव जमा हो जाता है। बहुत लंबे समय तक तनाव का जीवन जीना मनुष्य के लिए कठिन होता है। वह उससे छुट्टी पाने का सीधा रास्ता खोज लेता है, नशे की आदत बन जाती है।

विश्वव्यापी समस्या

नशा केवल व्यक्तिगत आदत है या सामाजिक मूल्यों, अवधारणाओं और परिस्थितियों से उपजी हुई एक आदत है ? व्यक्तिगत आदत को बदलना शायद उतना कठिन नहीं है जितना कठिन है सामाजिक समस्या के संदर्भ में उपजी हुई आदत को बदलना।

नशे की समस्या आज विश्वव्यापी समस्या है। इसके परिणाम भी भयंकर रूप में सामने आ रहे हैं। सोवियत दैनिक 'सोवियतस्काया' के अनुसार मानसिक कमजोरियों से ग्रस्त बच्चों की संख्या बढ़ रही है। इसका कारण पुरुषों और महिलाओं में शराब की आदत की वृद्धि माना गया है। वाराणासी में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार युवा पीढ़ी नशे की प्रवृत्ति से सर्वाधिक ग्रस्त है। सर्वेक्षण से इस बात का भी पता चला—शिक्षा नशे पर लगाम लगाने में समर्थ नहीं है। शिक्षा का स्तर जैसे बढ़ता गया, वैसे ही नशे की प्रवृत्ति भी बढ़ती गई।

ज्वलन्त प्रश्न

नशे की आदत संक्रामक बीमारी जैसी है। वह बढ़ती ही जा रही है। अमेरिका ने अपने नागरिकों को कोकीन, मारिजुआना और हिरोइन रो मुक्त रखने के लिए सन् १९८० में एक अरब डॉलर खर्च किए। सन् १९८८ तक यह खर्च बढ़ता चला गया। सन् १९८९ में और बड़ी योजना सामने आई है। जैसे-जैसे नशे पर रोक लगने की बात बढ़ी है वैसे-वैसे नशीले पदार्थों की मात्रा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी बढ़ी है। यह समस्या व्यवसाय से भी जुड़ी हुई है। मादक वस्तुओं के व्यवसायी इस व्यवसाय में अपार धन-संपदा अर्जित कर रहे हैं। वे कैसे चाहें कि आज की युवा पीढ़ी नशे की आदत से मुक्त हो जाए। इस परिस्थिति में 'नशा मत करो' यह उपदेश कितना कारगर हो सकता है, यह एक ज्वलंत प्रश्न है। समस्या की व्यापकता के सामने उसके निरोध का प्रयत्न नगण्य जैसा है। क्या इस प्रकार का प्रयत्न चलाया जाए या न चलाने का निर्णय किया जाए ? बहुत लोग कहते हैं—समस्या के महासमुद्र में एक छोटा-सा टापू बन रहा है समस्या के निवारण का प्रयत्न।

गणित की भाषा में न सोचें

अणुव्रत जैसे नैतिक आन्दोलन के सामने यह प्रश्न प्रस्तुत किया जा सकता है किन्तु अमेरिका जैसे शक्तिसम्पन्न राष्ट्र के राष्ट्रपति नशे के विरोध में खड़े हैं और उनका प्रयत्न भी सफल नहीं हो रहा है तो प्रश्न गंभीर बन जाता है। हम इस सचाई को स्वीकार कर लें—नशे में जो आकर्षण है, वह नशा छुड़ाने में नहीं है। हर बुराई के साथ यह समस्या जुड़ी रहती है फिर भी सचाई को जीने वाला व्यक्ति बुराई के सामने कभी घुटने नहीं टेकता। वह गणित की भाषा में नहीं सोचता—कितना होगा ? कितनी मात्रा में होगा ? वह अपने कर्त्तव्य की भाषा में सोचता है। कर्त्तव्य आंकड़ों के आधार पर नहीं चलता, वह जीवन के साथ चलता है। नशा जीवन के लिए घातक है, स्वास्थ्य के लिए घातक है और सबसे बड़ा घातक है भावात्मक स्वास्थ्य के लिए। कुछ संस्थाएं नशामुक्ति के लिए औषधीय उपचार का सहारा ले रही है। राजकीय नियंत्रण, व्यवस्था और उपचार के साथ यदि मस्तिष्कीय प्रशिक्षण-शिक्षण और प्रेक्षाध्यान के प्रयोग जोड़ दिए जाएं तो नशामुक्ति अभियान को और अधिक गति दी जा सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. जीवन और जीविका के बीच भेदरेखा खींचें

जीवन-दर्शन की कसौटी

स्वर्ग परोक्ष है । मोक्ष अत्यन्त परोक्ष है । मन की शान्ति प्रयत्क्ष है । प्रयत्क्ष के प्रति जितना आकर्षण है, उतना परोक्ष के प्रति नहीं होता । गुरु अपने शिष्य को प्रतिपादन की शैली का अर्थ समझा रहे थे । वे बोले—धर्म अव्याकृत नहीं है । उसका प्रतिपादन किया जा सकता है । वह जीवन-दर्शन का स्पर्श करने वाला हो तो अधिक उपयोगी और अधिक आकर्षक हो सकता है । कोरी उपदेशात्मक शैली निरन्तर आकर्षण उत्पन्न नहीं करती । चरित्र अथवा दृष्टान्त का सहारा लो और अपने वक्तव्य को आकर्षक बनाओ । प्रतिपादन का लक्ष्य होना चाहिए, शान्तिपूर्ण जीवन का दर्शन ।

जीवन दर्शन की तीन कसौटियां हैं—

- व्यक्ति को क्या लाभ मिल रहा है ?
- समाज को क्या लाभ मिल रहा है ?
- वर्तमान की समस्या का समाधान हो रहा है या नहीं ?

यदि वर्तमान की समस्य सुलझती है तो भविष्य अपने आप उज्ज्वल बन जाता है ।

भयारण्य : अभयारण्य

एक राज्य की विचित्र परंपरा । साठ वर्ष की आयु के बाद राजा को राजगद्दी छोड़नी होती । नये राजा का अभिषेक हो जाता । पुराने राजा को अरण्य में छोड़ दिया जाता । यह परंपरा लम्बे समय तक चलती रही । राज्यमुक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने के बाद सब राजे पछताते पर अपने राज्यकाल में इस समस्या पर किसी ने भी गहरा चिन्तन नहीं किया। राजा प्रद्युम्न के मन में एक विचार उभरा। यदि मैं वर्तमान को पकड़ूं तो भविष्य की चोटी मेरे हाथ में आ सकती है। अपनी चोटी को पकड़े बिना अपनी छाया की चोटी कभी नहीं पकड़ी जा सकती। उसने वर्तमान पर ध्यान केन्द्रित किया और समस्या का समाधान खोज लिया। जिस अरण्य में राज्यमुक्त राजा को छोड़ा जाता, उसे सुन्दर बनाने की कल्पना की। एक योजना बनाई। देखते-देखते अरण्य एक रमणीय बगीचे में बदल गया। बड़े-बड़े प्रासाद, राजपथ, विशाल जलाशय उसकी उपयोगिया बढ़ा रहे थे। भोजन और चिकित्सा की व्यवस्था, जो कुछ चाहिए, वह सब वहां उपलब्ध हो गया। वह अरण्य की विभीषिका क्रीड़ागृह की रमणीयता में बदल गई। राजा बहुत प्रसन्न था। उसके मन में अब कोई भय नहीं रहा। राज्यमुक्ति का समय आया। पुत्र को राज्यासीन बना स्वयं अरण्यवास के लिए चल पड़ा। वह अरण्यवास राजप्रसाद से भी अधिक सुखद और आकर्षक था। वहां रहने को बड़े-बड़े लोग ललचाने लगे। जो भयारण्य था, वह अभयारण्य में बदल गया।

वर्तमान की जागरूकता

मनुष्य के सामने कितने भयारण्य होते है। बहुत लोग उनमें अपना संकटमय जीवन जीने को विवश होते हैं। कितना अच्छा हो, कोई नयी कल्पना और नयी योजना बना उस भयारण्य को अभयारण्य बना दे। वर्तमान का मूल्यांकन होने पर ही इसकी संभावना की जा सकती है। वर्तमान की जागरूकता ही जीवन की सफलता का सूत्र है। उसी के आधार पर उज्ज्वल भविष्य के देवालय का शिलान्यास किया जा सकता है। केवल अतीत की गाथा गाने वाला धर्म चिरकाल तक आकर्षित नहीं कर सकता। केवल भविष्य के सुनहले सपने दिखाने वाला धर्म भी चिरजीवी नहीं रह सकता। वही धर्म स्थायी आकर्षण पैदा कर सकता है, जो वर्तमान की समस्या को सुलझाता है।

जीवन है समन्वय

वर्तमान काल की एक अजस्र धारा है। जीवन भी एक शाश्वत प्रवाह है। वह जिया जा रहा है, समझा नहीं जा रहा है। शरीर अपना काम करता है। इन्द्रियां, प्राण, मन और चेतना— ये सब अपना-अपना काम करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम कार्य को समझते हैं, उसके समन्वय को नहीं समझते । शरीर, इन्द्रियां, प्राण, मन और चेतना के समन्वय का नाम है जीवन । इनमें से कोई एक जीवन तत्त्व नहीं है ।

क्या शरीर जीवन है ?

नहीं ।

क्या इन्द्रियां जीवन है ?

नहीं ।

क्या प्राण, मन और चेतना जीवन है ?

उत्तर होगा नहीं ।

फिर जीवन क्या है ?

जीवन है समन्वय । शरीर इन्द्रिय, प्राण, मन और चेतना इनका समवाय है जीवन । पहिया कार नहीं है । इंजिन भी कार नहीं है । एक्सीलेटर और ब्रेक भी कार नहीं है । इन सबका योग है कार ।

जीवन का लक्ष्य

बहुत लोग पूछते हैं— जीवन का लक्ष्य क्या है ? इसका उत्तर बहुत सीधा भी है और बहुत जटिल भी है । व्यवहार नय की भाषा में लक्ष्य है विकास, आनन्द या सुख । निश्चय नय की भाषा में लक्ष्य है स्वतंत्रता । मनुष्य बुद्धिमान् प्राणी है । वह अपने लक्ष्य का निर्धारण करता है, उसकी पूर्ति के लिए साधन-सामग्री जुटाता है । शरीर, इन्द्रियां, प्राण और मन— ये लक्ष्य की पूर्ति के साधन हैं । साध्य है चेतना, चेतना का विकास, चेतना की स्वतंत्रता । अपने आप में होना, अपने आपको जानना और अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखना, यह वस्तुगत लक्ष्य है । इसी आधार पर मनुष्य की स्वतंत्रता सुरक्षित है । निर्धारित लक्ष्य में अव्यवस्था हुई है । मनुष्य ने शरीर और इन्द्रियों की तृप्ति को लक्ष्य बनाया इसीलिए जीवन का मुख्य लक्ष्य बन गया— सुख ।

जीविका : जीवन

सुखवाद आचारशास्त्र का एक बहुचर्चित वाद है । सुख पाने के लिए नैतिक या धार्मिक जीवन जरूरी है । किन्तु सुख को शरीर और इन्द्रिय तक सीमित कर दिया गया इसीलिए नैतिकता जरूरी नहीं रही, जीविका उससे अधिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जरूरी बन गई। आज पूरे समाज में जीवन और जीविका का संघर्ष चल रहा है। जीविका अच्छी हो, इसकी चिन्ता माता-पिता को भी है और विद्यार्थी को भी है। जीवन अच्छा हो, इसकी चिन्ता माता-पिता को भी शायद कम है और विद्यार्थी को भी कम है। इस परिस्थिति में एक व्यवसायी मनोवृत्ति का विकास हुआ है।

कहा जाता है— एक व्यवसायी मृत्यु के बाद यमराज के पास पहुंचा। यमराज ने उसके जीवन का लेखा-जोखा कर पूछा— 'तुम कहां जाना चाहते हो— स्वर्ग में या नरक में। व्यवसायी बोला— 'हुजूर ! जहां दो पैसे की पैदा हो। मुझे स्वर्ग या नरक से कोई मतलब नहीं है।' इस मनोवृत्ति का विकास जीवन-विकास की सबसे बड़ी बाधा है। पदार्थ और पैसे की होड़ इसी मनोवृत्ति का परिणाम है। इस मनोवृत्ति ने और भी न जाने कितनी समस्याएं पैदा की हैं। क्या आज का चिन्तनशील युवा जीवन और जीविका के बीच कोई भेद-रेखा खींचने की बात सोचेगा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. मनुष्य की प्रकृति है शाकाहार

नवभारत टाइम्स (५ मई ९०) में 'ईसाइयत और शाकाहार' शीर्षक एक संवाद पढ़ा। उसे पढ़कर लगा पश्चिमी देशों में शाकाहार कुतूहल, आश्चर्य या विवाद का विषय बना हुआ है। आहार मनुष्य की जरूरत है इसलिए वह निर्विवाद होना चाहिए पर विवाद मनुष्य की प्रकृति है इसलिए वह किसी भी क्षेत्र को विवाद-मुक्त नहीं रहने देता। विवाद है अनाज और मांस के बीच। अनाज और सागभाजी खाना मनुष्य का प्राकृतिक भोजन माना जाता है और चिरकाल से माना जाता रहा है।

जॉन ब्रूमर का कथन

ब्रिटेन के कृषि, खाद्य एवं कृषिपालन मंत्री जान ब्रूमर ने कहा— 'शाकाहार सर्वथा अप्राकृतिक है।' मंत्री महोदय के सामने अन्न की समस्या रही होगी अथवा मत्स्य पालन का उद्योग लड़खड़ाता होगा इसलिए वे प्राकृतिक आहार को अप्राकृतिक और अप्राकृतिक आहार को प्राकृतिक बतलाकर आहार के विषय में अवांछनीय वकालात करते हैं। बाइबिल के आधार पर उनका कहना है— 'हम आकाश की चिड़ियों और जमीन के जानवरों के मालिक हैं इसलिए उन्हें खाते हैं।' यह उक्ति एक गर्वोक्ति है। मालिक वह हो सकता है, जो दूसरों की रक्षा करे। उनके प्राण लूटने वाला दुश्मन हो सकता है, मालिक कभी नहीं। सच तो यह है कि मनुष्य अपने शरीर का भी मालिक नहीं है। यदि वह मालिक होता तो उसे रोगग्रस्त—बीमार नहीं होने देता, बूढ़ा नहीं होने देता और मौत के जबड़े में नहीं जाने देता। अहिंसा का दर्शन मालिक होने का दर्शन है। हम आकाश की चिड़ियों और जमीन के जानवरों को अपने समान समझें, उनके प्राण न लूटें तो हम मालिक कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न धर्म और नैतिकता का

मंत्री महोदय को इसमें आपत्ति है कि खाने-पीने की सामग्री को धर्म और नैतिकता से जोड़ा जा रहा है, यह आपत्ति सही है। खाने-पीने की सामग्री को धर्म और नैतिकता से नहीं जोड़ना चाहिए और नहीं जोड़ा जा रहा है। धर्म जुड़ा हुआ है खाने वाले के साथ। खाने वाला क्या खाता है और उसका परिणाम क्या होता है, यह प्रश्न धर्म और नैतिकता से जुड़ा हुआ है। बाजार में खाने-पीने की प्रचुर सामग्री पड़ी है। उससे धर्म और नैतिकता का कोई संबंध नहीं है। दुकानदार बेचते समय प्रामाणिकता बरतता है या अप्रामाणिकता? वहां धर्म और नैतिकता का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। आहार के विषय में भी यही बात है।

मांसाहार : धर्म और नैतिकता

मांस का धर्म और नैतिकता से कोई संबंध नहीं है किन्तु मांसाहार का उनसे संबंध स्थापित हो जाता है। मांसाहार के साथ जीव-हिंसा की क्रूरता जुड़ी हुई है। लोभ और हिंसा—ये दोनों क्रूरता के जनक हैं। मांसाहार न करने वाला जीव-हिंसा-जनित क्रूरता से सहज ही बच जाता है। इसका स्वयंभू प्रमाण है जैन समाज। वह अनेक अपराधों से इसीलिए दूर है कि वह मांसाहारी नहीं है। हिंसा स्वयं अपराध है। वह अनेक अपराधों को जन्म देती है। मांसाहार न करने वाला उन सबसे अपने आपको बचा लेता है। आहार या पोषण के वैज्ञानिक—आहार और व्यवहार में पर्याप्त संबंध बतलाते हैं। उनके अनुसार आहार मनुष्य के स्वभाव को बदल सकता है। आहार से बनने वाले न्यूरोट्रांसमीटर हमारे व्यवहार को नियंत्रित करते हैं इसलिए आहार के विषय में धर्म और नैतिकता के दृष्टिकोण से विचार करना अस्वाभाविक नहीं है।

आहार के चयन का आधार

शाकाहार स्वास्थ्य के लिए अधिक अनुकूल है, यह स्वास्थ्य का पहलू है। उसका आध्यात्मिक पहलू भी है। आध्यात्मिक विकास के लिए इसका और अधिक मूल्य है। जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा—'मेरा पेट कब्रिस्तान नहीं हैं इसलिए मैं मांस नहीं खाता'। मांसाहारी लोगों को ध्यान में रखकर उन्होंने लिखा—'हम मारे गए जानवरों की जीवित कब्रें हैं।' जानवर पेट में जाएगा, क्या उसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कार साथ नहीं जाएंगे ? मनुष्य में पाशविक वृत्तियां हैं। यह सर्वसम्मत सचाई है। क्रूरता पाशविक वृत्ति है। आध्यात्मिक व्यक्ति का पहला लक्षण है करुणा। मांसाहार उस पर एक आघात है इसलिए आध्यात्मिक व्यक्ति भूख मिटाने के लिए जो कुछ मिलता है, वही नहीं खाता किन्तु विवेकपूर्वक खाता है। उसके सामने आहार के दो वर्ग बन जाते हैं—खाद्य और अखाद्य। जो आध्यात्मिक विकास में बाधक न बने, वह खाद्य। जो उसमें बाधक बने, वह अखाद्य। मनुष्य केवल शरीर नहीं है, जो केवल भूख बुझाने की चिन्ता करे। वह चेतनामय आत्मा भी है। वह चैतन्य जागरण की भी चिन्ता करता है इसलिए हम आहार का चयन भूख के शमन और चेतना के जागरण—दोनों दृष्टिकोणों को सामने रखकर करते हैं।

शाकाहार की लहर

मनुष्य प्रकृति से शाकाहारी है। शरीर-संरचना और शरीर -क्रिया के आधार पर जानवरों को दो श्रेणियों में बांटा गया है। गाय, घोड़ा हाथी—ये शाकाहारी जानवर हैं। बिल्ली, कुत्ता, शेर—ये मांसाहारी प्राणी हैं। दोनों की शरीर-संरचना और शरीर-क्रिया में जो अंतर है, उसके कुछ पहलू ये हैं—

शाकाहारी	मांसाहारी
● पानी जीभ निकाल कर नहीं पीते बल्कि पानी में मुंह डुबोकर पीते हैं।	पानी जीभ से चाटकर पीते हैं।
● दांत और नाखून सपाट होते हैं।	दांत और नाखून नुकीले होते हैं।
● पाचन मुंह से शुरू होता है।	पाचन आमाशय से शुरू होता है।
● पेट की आंतें लम्बी होती हैं।	पेट की आंतें छोटी होती हैं।

मनुष्य की तुलना शाकाहारी जानवरों से की जा सकती है इसलिए प्रकृति से वह मांसाहारी नहीं है। मांसाहार उसने अभ्यास से सीखा है। जैन धर्म ने शाकाहार का आंदोलन शुरू किया था। उसका प्रभाव व्यापक हुआ। आज समूचे संसार में वह एक लहर के रूप में चल रहा है। संभव है—कुछ समय बाद यह आहार की मुख्य धारा बन जाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. संत की कसौटी

भारतवर्ष में संतों की परम्परा बहुत पुरानी है, बहुत महत्त्वपूर्ण है । चक्रवर्ती सम्राटों और महान् शासकों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है । सम्राट बाहरी जगत् में ही जीते थे और उसी में रहते थे इसीलिए वर्तमान में उनका सिक्का चला, अतीत के गहन विचार में वे विलीन हो गए । संत बाहरी जगत् में जीते थे और रहते थे अपने अंतर्जगत् में । जो अन्तर्जगत् में रहता है, उसे दिव्यता प्राप्त हो जाती है, वह मरकर भी अमर बन जाता है ।

नियम और चमत्कार

संत अन्तर्जगत् में रहता है इसलिए अंतर के रहस्य उसे ज्ञात हो जाते हैं । बाह्य जगत् के लोगों के लिए वे चमत्कार बन जाते हैं । चमत्कारों की कहानी बहुत लम्बी और चौड़ी है । अन्तर्जगत् में एक नियम और बाह्य जगत् में एक चमत्कार । जो नियम को जानता है, उसके लिए चमत्कार कुछ नहीं है । घटना है तीस वर्ष पहले की । आचार्यश्री तुलसी बंगाल की यात्रा पर थे। कलकत्ता में चातुर्मास सम्पन्न कर शांति निकेतन की ओर लौट रहे थे । रास्ते में एक बंगाली दंपति मिला । कार रोकी । पति-पत्नी दोनों नीचे उतरे । पति इंजीनियर था । वह बोला— आचार्यप्रवर मेरी पत्नी राजयक्ष्मा (टी. बी.) की बीमारी से पीड़ित थी । औषधोपचार चल रहा था फिर भी स्वस्थ नहीं हो रही थी । उसने कहा— आचार्यश्री की चरण-धूलि लाओ । वे बहुत बड़े संत हैं। उनकी चरणधूलि का सेवन कर मैं स्वस्थ हो जाऊंगी । उसके आग्रह पर मैंने अपनी चरण-रज लाकर उसे दी । उसने चरण-धूलि का सेवन किया । अब वह बिल्कुल स्वस्थ है । उन दोनों ने बड़ी श्रद्धा के साथ वंदना की और चले गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्य से खिलवाड़ न करें

इस घटना ने मेरे मन में दो प्रश्न खड़े कर दिए—क्या यह कोई चमत्कार है अथवा नियम है ? मैं नियमों की खोज में रहता इसलिए चमत्कार मुझे नहीं घेर पाते। श्रद्धा परिवर्तन का एक शक्तिशाली सूत्र है। उससे मनुष्य के शरीर में एक एन्डोरफिन शृंखला के अनेक रसायन उत्पन्न होते हैं, वे पीड़ा को कम करते हैं, रोगों का निवारण करते हैं, मानसिक प्रसन्नता की अभिवृद्धि करते हैं। भावित होना भी एक नियम है। एक व्यक्ति के शरीर से निकलने वाले परमाणु-पुञ्ज से भूमि, जल, वायुमण्डल— ये सभी भावित होते हैं।

तपस्वी का आभामण्डल बहुत शक्तिशाली, निर्मल और पवित्र बन जाता है। उससे विकीर्ण आभा-रश्मियां परिपार्श्व को भी पवित्र और निर्मल बनाती हैं। आचार्यश्री की तपस्या प्रबल है। उनमें सहज सिद्ध योग का दर्शन होता है। उनका आभामण्डल तेजोवलय से संवलित है। कोई आश्चर्य नहीं है कि उनके चरण जिस भूमि पर टिकें, वह भूमि भी तपोबल से भावित हो जाए। उक्त घटना की श्रद्धा से व्याख्या करें तो वह भी एक नियम है। भावना योग से उसकी व्याख्या करें तो वह भी एक नियम है।

नियम के जगत् में चमत्कार जैसा कोई शब्द ही नहीं है। जो जानता है, उसके लिए नियम नियम है। जो नहीं जानता, उसके लिए नियम एक चमत्कार है। हमारे कुछ संत, बाबा और संन्यासी ऐसे हैं, जो चमत्कार प्रदर्शित कर अपने आपको भगवान के रूप में प्रस्तुत करने की आकांक्षा में पल रहे हैं। मेरी दृष्टि में वे सत्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। सत्य नियमों के साथ चलता है, चमत्कार के साथ नहीं। अन्तर्जगत् में जीने वाला संत नियम को कभी चमत्कार का रूप नहीं देगा। जो नियम को चमत्कार में बदल देते हैं, उन सन्तों को दूर से ही प्रणाम।

चमत्कार आक्रोश में बदल गया

तेरापंथ के प्रवर्तक आचार्य भिक्षु गृहस्थ जीवन में भी संत का जीवन जीते थे। उनकी वैराग्य-साधना अद्‌भुत थी, उनकी अन्तर्दृष्टि जागृत थी। वे सत्य या नियम के लिए समर्पित थे। वे चमत्कार के भ्रम जाल में नहीं फंसते थे। उनका ग्राम कंटालिया (जिला-पाली) था। वहां किसी के घर चोरी हो गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोर का पता लगाने के लिए प्रयत्न शुरू हए । पार्श्ववर्ती बोरनदी ग्राम में एक कुम्हार रहता था । वह अंधा था । लोग मानते थे— उसके मुंह देवता बोलता है । चोर का पता लगाने के लिए उसे बुलाया गया । कुम्हार आचार्य भिक्षु की समझ से परिचित था । वह उनके पास आया । औपचारिक बातें की । बातचीत के प्रसंग में उसने कहा— कल रात गांव में चोरी हो गई, आपको पता होगा । आपका संदेह किस पर है ? आचार्य भिक्षु उसकी ठग विद्या को समाप्त करना चाहते थे । आपने कहा मेरा संदेह तो मजने पर है ।

रात का समय । चोरी वाले घर पर अनेक लोगों का जमाव । सबके मन में रहस्योद्घाटन की जिज्ञासा । कुम्हार के शरीर में देवता का आवेश । वह आविष्ट मद्रा में बोला— 'डाल दे रे, डाल दे ! गहने डाल दे ।' लोगों ने कहा— 'ऐसे कौन डालेगा ? आप चोर का नाम प्रकट करें ।' कुम्हार ने आवेश की मुद्रा में कहा— 'चोर है मजना । उसी ने गहने चुराये हैं ।' पास में एक फकीर बैठा था । उसने कहा— 'मजना तो मेरे बकरे का नाम है । वह क्या गहने चुराएगा ?' चमत्कार जनता के आक्रोश में बदल गया ।

कसौटी है अध्यात्म

संत की कसौटी है अध्यात्म । आत्मा में होना संत की परिभाषा है । भारत वर्ष में इस कसौटी वाले संतों का महिमा-मंडित गुरु-पीठ रहा है । चमत्कारी संत भी उस परम्परा के साथ-साथ चले हैं । प्राचीन काल में चमत्कार के साथ अध्यात्म (केवल नाम का अध्यात्म) चलता था । आज का युग वैज्ञानिक है । वैज्ञानिकों ने बहुत नियम खोज लिये हैं, इसलिए अध्यात्म की विशुद्ध परम्परा संतों के साथ जुड़ी रहे, इसमें अध्यात्म का गौरव है और जनता की भलाई है । संत का काम होता है—अपना कल्याण और समूचे जगत् का कल्याण । वह सत्य की साधना के द्वारा ही संभव है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. अहिंसा का कालजयी आलेख

'दुनिया के यहूदियो हमें क्षमा करो' यह उदात्तवाणी सच होते हुए भी एक कल्पना जैसी, एक सपने जैसी प्रतीत हो रही है। एक ओर पूरी दनिया में हिंसा और आतंक का ज्वार आ रहा है, दूसरी ओर अहिंसा का ज्वार आए, क्या यह सचमुच आश्चर्य नहीं है?

जर्मन-संसद का प्रस्ताव

पूर्वी जर्मनी की निर्वाचित संसद ने (१२ अप्रैल १९९०) जो प्रस्ताव पारित किया था, वह अहिंसा के उस शिखर को छू रहा है, जिसमें अतीत की धुलाई करने का विधान है। प्रस्ताव की भाषा यह है—

'हम पहली बार स्वतंत्र रूप से निर्वाचित पूर्वी जर्मनी के सांसद जर्मन होने के नाते पूर्व जर्मनी के गत इतिहास और उसके भविष्य के प्रति अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करते हुए संसार के समक्ष यह घोषणा करते हैं—राष्ट्रीय समाजवाद के काल में जर्मनों द्वारा अकूत पीड़ा पहुंचाई गई। राष्ट्रवाद एवं जातीय पागलपन ने सम्पूर्ण यूरोप में विशेषकर यहूदियों का निर्मम संहार किया। इसके शिकार सोवियत रूस, पोलिश एवं जिप्सी लोग भी हुए। यहूदी महिलाओं, पुरुषों और बच्चों के अपमान, बहिष्कार एवं हत्याकर्म की जिम्मेदारी, यह संसद सामूहिक रूप से स्वीकार करती है। जर्मन इतिहास के बोझ को हम स्वीकार करते हैं तथा दुःख एवं शर्मिंदगी महसूस कर रहे हैं।'

'हम संसार के यहूदियों से क्षमा-याचना करते हैं। १९४५ के बाद भी हमारे देश में यहूदी नागरिकों को प्रताड़ना दी गई एवं उनका अपमान किया गया। हम इजराइल से उसके लिए क्षमा-प्रार्थना करते हैं कि पूर्वी जर्मनी की सरकार ने इजराइल के प्रति शत्रुतापूर्व एवं ढोंगी नीति अपनायी। हम अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्छा का इजहार करते हैं कि हम उत्तरजीवी यहूदियों के मानसिक व भौतिक घावों को सहलाना चाहते हैं। उनकी आर्थिक क्षति का उन्हें मुआवजा देकर, यथासंभव क्षतिपूर्ति करना चाहते हैं। उत्पीड़ित यहूदियों को पूर्वी जर्मनी में शरण देने के हम हिमायती हैं।'

नया प्रस्थान

प्रस्ताव की भाषा प्रश्न उपस्थित करती है—क्या यह प्रस्ताव हृदय-परिवर्तन से उपजा है अथवा ग्लासनोस्त (खुलापन) और पेरेस्त्रोइका (पुनर्रचना) की प्रभाव-भूमि में उपजा है ? उत्तर कुछ भी हो। जो परिर्वतन परिलक्षित हो रहा है, वह हिंसा से अहिंसा की दिशा में एक नया प्रस्थान है। अतीत की आलोचना आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। राजनीति के क्षेत्र में उसकी अनिवार्यता नहीं है। महाभारत का एक प्रसिद्ध सूत्र है—

न कश्चिद् कस्यचिद् मित्रं, न कश्चिद् कस्यचिद् रिपुः ।
कारणादेव जायन्ते, मित्राणि रिपवस्तथा ॥

राजनीति में कोई किसी का मित्र नहीं होता और कोई किसी का शत्रु नहीं होता। कारणवश ही कोई किसी का मित्र बन जाता है और कोई किसी का शत्रु।

नया सूर्योदय

उस राजनीति के क्षितिज में अकारण मैत्री का सूर्य उगता है, क्या यह असंभव जैसी घटना नहीं है ? पूर्वी जर्मनी के सांसदों ने जो चरण आगे बढ़ाया है, वह उस जगत् के लिए भी अभिनंदनीय है, जो अहिंसा में आस्था रखता है और उसकी छत्र-छाया में विश्वशांति की स्थापना करने को उत्सुक है।

सत्ता, धन और अधिकार के साथ क्रूरता का योग मिलता है, अघटित घटनाएं घट जाती है। इस शताब्दी में निरंकुश तानाशाहों को दुनिया ने देखा है, उसके अतिचारों को झेला है और उनके द्वारा प्रदत्त उत्पीड़नों को भोगा है। सत्ता हथियाने और उस पर अपनी पकड़ मजबूत बनाने के लिए क्या-क्या नहीं किया गया ? इस वातावरण में सत्ता के पद पर बैठे लोग ऐसी क्षमायाचना करें, इसे एक नया सूर्योदय न मानें तो क्या मानें ?

क्रान्तिकारी कदम

उत्पीड़न की कहानी बहुत पुरानी है। क्रूरता के बिना वह संभव नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रूर मनुष्य दूसरे मनुष्यों को कीट-पतंगा जैसा मानता है इसलिए उन्हें यातना देने में उसे कोई हिचक नहीं होती । अहिंसा के क्षेत्र में करुणा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया और सबको अपने समान समझने की बात कही गई । लोकतंत्र अहिंसा का व्यावाहारिक या सामाजिक प्रयोग है । इस प्रणाली में शासक क्रूर हो सकता है पर वह निरंकुश तानाशाह नहीं बन सकता, साठ लाख यहूदियों की यातना शिविरों में बलि नहीं चढ़ा सकता ।

सोवियत रूस के राष्ट्रपति गोर्बाच्योव ने ग्लासनोस्त की नीति का विकास कर तानाशाही और क्रूरता की ओर जाने वाली अधिनायकवादी प्रणाली को मृत्यु की ओर ढकेला है । यह एक क्रान्तिकारी कदम है ।

विरल घटना

समाज में नियन्त्रण जरूरी होता है, माना जाता है किन्तु इतना नियन्त्रण नहीं कि आदमी उसकी जकड़न में अपना अस्तित्व गंवा बैठे, वह नियंता के हाथ की कठपुतली मात्र बन जाए । लोकतंत्र पर यह आरोप है कि उसकी कार्य-प्रणाली में वह स्फूर्ति और तत्परता नहीं होती, जो अधिनायकवादी प्रणाली में होती है । कुछ अंशों में इसे सही भी कहा जा सकता है । लोकतंत्र के शासक मनचाहा अनिष्ट नहीं कह सकते तो इष्ट करने में भी प्रक्रियागत शिथिलता हो सकती है । एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के प्रति अन्याय न कर सके; यह अनिवार्यता शासनतंत्र के साथ जुड़ी रहे तभी समाज स्वस्थ रह सकता है । समय का चक्र घूमता रहता है, उसमें कछ अतिमहत्त्वाकांक्षी व्यक्ति अपनी शक्ति बढ़ाने में जुट जाते है । सेना पर अपनी पकड़ मजबूत बना तानाशाह बन बैठते हैं । इस शताब्दी के तानाशाहों ने मनुष्य जाति के साथ जो निर्मम व्यवहार किया है, वह अतीत को पीछे छोड़ चुका है । हिटलर का दर्प भी अपने ढंग का अनोखा था । उसका आतंकवादी पंजा जहां भी पड़ा, वह राष्ट्र अमानवीय कृत्य का शिकार हो उठा । केवल यहूदी ही नहीं, अन्य अनेक राष्ट्र इससे प्रताड़ित, उत्पीड़ित और आतंकित हुए हैं । पूर्वी जर्मनी की संसद ने उन सबके प्रति विनम्र संवेदना व्यक्त की है और क्षमायाचना का स्वर उदात्त किया है । यह इतिहास की एक विरल घटना है । क्या ऐसा कुछ सोचा जा सकता है, जिससे इक्कीसवीं शताब्दी में कोई तानाशाह पैदा न हो, इस काले इतिहास की पुनरावृत्ति न हो ? यह क्षमायाचना ऐसे वातावरण का निर्माण कर सके तो मनुष्य जाति का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल होगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. क्या राजनीतिज्ञ के लिए आध्यात्मिक प्रशिक्षण जरूरी है ?

सपना सपना ही रह गया

हिंसा, दमन और बल प्रयोग के आधार पर खड़ा किया गया प्रासाद अपने आप ढह जाता है। उसका उदाहरण है— साम्यवाद। साम्यवाद का दर्शन मानवीय चिंतन का एक उत्तुंग शिखर है। उसका आरोहण यदि अहिंसा, लोकतंत्र और साधन शुद्धि के विचार के साथ होता तो धरा पर स्वर्ग उतर आता। आरोहण इस विधि से नहीं हुआ इसीलिए जो एक सपना था, वह सपना बनकर ही रह गया। गरीब के प्रति करुणा, सहयोग की भावना कठोरता और क्रूरता में बदल गई। अधिनायकवादी शिकंजा इतना मजबूत बना कि प्रतिपक्ष का स्वर दूसरी बार उठ नहीं सका। जिसने विरोध किया, परिवर्तन की मांग की, वह प्राणों से हाथ धो बैठा। सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाच्योव ने ग्लानोस्त और पेरोस्त्रोइका के जो मंगलपाठ दिए हैं, वे कोई आकस्मिक जल-कण नहीं है। उनकी पृष्ठभूमि में कितने अग्नि-कणों का इतिहास छिपा हुआ है।

अधिनायक की दुर्बलता

प्रतिक्रिया को हम क्रिया की भाषा में नहीं बदल सकते। सत्तर वर्ष की लम्बी कालावधि तक हिंसा का साम्राज्य पनपता गया। यह अपने आप में एक आश्चर्य है। इस भैरवचक्र को बदलने का प्रयत्न उससे भी बड़ा आश्चर्य है। हिंसा या दमन का एक दिन निश्चित पर्यवसान होता है, इस सचाई को इतिहास के संदर्भ में परखा जा सकता है। जिस प्रणाली में एक अधिनायक में हजारों-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाखों लोगों के प्राण लेने की शक्ति हो, वह मानवीय प्रणाली नहीं हो सकती। अधिनायक की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि वह प्रतिपक्ष, प्रतिविचार और प्रत्यालोचना को सहन नहीं कर सकता। इस समस्या बिन्दु पर हृदय-परिवर्तन, मस्तिष्कीय परिवर्तन या आध्यात्मिकता की अनिवर्यता अनुभूत होती है। यदि कार्लमार्क्स और एंगेल्स को साम्यवाद के साथ आध्यात्मिकता को जोड़ने का अवसर मिलता तो साम्यवाद वरदान सिद्ध होता। वह अधिनायकवाद के साथ नहीं जुड़ता। उसकी गति राज्यविहीन राज्य की दिशा में होती। इसे विधि की विडम्बना ही माना जाए कि मार्क्स ने मंजिल माना राज्यविहीन राज्य को और उसका प्रयोग हुआ दमन, जकड़न और तानाशाही की दिशा में।

प्रश्न है सत्तासीन व्यक्तियों का

प्रश्न साम्यवाद या प्रजातंत्र का नहीं है। प्रश्न है उन व्यक्तियों का, जो प्रणाली का संचालन करते हैं और सत्ता के सिंहासन पर विराजमान होते हैं। व्यक्ति सत्ता के सिंहासन पर बैठे और उसमें उन्माद न जागे, यह तभी संभव है, जब हाथी पर अंकुश बना रहे, लगाम किसी दूसरे के हाथ में रहे। एक राजा ने हाथी पर बैठने से इन्कार कर दिया। चढ़ने से पहले उसने महावत से कहा— 'लगाम लाओ।' महावत बोला— 'इसके लगाम नहीं होती।' राजा ने कहा— 'जिसकी लगाम मेरे हाथ में नहीं होती, उस पर मैं चढ़ना नहीं चाहता।'

लोकतंत्र में जनता अंकुश है इसलिए सिंहासन पर बैठने वाला निरंकुश शासक नहीं हो सकता। तानाशाही में कोई अंकुश नहीं होता इसलिए यहां उन्माद की संभावना को टाला नहीं जा सकता। चाऊशेस्कू जैसा राष्ट्रपति एक बार ही जन्म नहीं लेता।

जरूरी है आध्यात्मिक प्रशिक्षण

'गरीबों की भलाई के लिए या गरीबी का उन्मूलन करने के लिए हम काम कर रहे हैं, राजनीति के मंच पर जब जब यह स्वर सुनता हूं, एक वैचारिक आघात लगता है। क्या राजनीति के कार्यकर्ता ने आध्यात्मिकता के साथ राजनीति में प्रवेश किया है अथवा केवल गरीबों की भलाई के लिए किया है ? यदि आध्यात्मिकता के साथ किया है तो वह गांधी की दिशा में चलेगा और यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवल गरीबों की भलाई के लिए किया है तो सत्ता पर हावी होते ही भलाई की बात गौण हो जाएगी, वैभव और विलासिता का दिवास्वप्न सामने आ जाएगा। फिर उसकी गति होगी चाऊशेस्कू की दिशा में।

क्या एक राजनीतिज्ञ के लिए, क्या एक प्रशासक और शासक के लिए आध्यात्मिक प्रशिक्षण लेना आवश्यक है। केवल राजनीतिज्ञ के लिए ही क्यों ? आध्यात्मिक प्रशिक्षण प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है ? यह किसी संप्रदाय या उपासना पद्धति का प्रशिक्षण नहीं है। यह आंतरिक शक्ति के जागरण का प्रशिक्षण है। अध्यात्म का अर्थ—आंतरिक स्व का विकास (Inner self development)। इसके बिना कोई भी कार्य प्रामाणिकता और पारमार्थिकता के साथ नहीं हो सकता। शासक या प्रशासक को एक निश्चित सीमा तक संयमी, त्यागी और जितेन्द्रिय होना ही चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं है तो जनता को उससे भलाई की आशा नहीं करनी चाहिए।

पटाक्षेप कब होगा?

हम अधिनायकवाद की बात छोड़ दें। लोकतंत्र में भी यदि आध्यात्मिक प्रशिक्षण नहीं चलता है तो इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा ? लोकतंत्र में तानाशाही नहीं पनप सकती पर जो सत्ता की कुर्सी पर आता है, उसके हाथ में असीम अधिकार आ जाते हैं। विशाल तंत्र, विशाल धन-सम्पदा और कार्य नियोजन की अपार क्षमता—इन सबका उपयोग निर्वाचित व्यक्ति सही ढंग से करेंगे, इसका आश्वासन क्या है ? इसका नियामक तत्त्व कौन है ? चुनाव के समय उन्हें बदलने का अधिकार जनता के हाथों में है पर पांच वर्ष की अवधि कोई कम है क्या ? उस अवधि में कोई चाहे जैसा अर्थ-अनर्थ या कदर्थना कर सकता है। इस समस्या का समाधान आचार्यश्री तुलसी द्वारा जयाचार्य शताब्दी पर प्रदत्त घोष है—'निज पर शासन, फिर अनुशासन', पर जिनके पास पैसे का बल है, वोटों को खरीदने की शक्ति है, जो राजनीतिक दांवपेंच खेलने में कुशल हैं, वे इस घोष पर क्यों ध्यान देंगे? राजनीति के रंगमंच पर कुछ ऐसा ही अभिनय हो रहा है। पता नहीं इसका पटाक्षेप कब होगा?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. हिन्दू सम्प्रदाय नहीं, राष्ट्रीयता है

चिन्तनीय प्रश्न

हमारा जगत् मिश्रण का जगत् है। शब्द भी तीन प्रकार के होते हैं— रूढ़, यौगिक, और मिश्र। मनुष्य का चिन्तन भी एक प्रकार का नहीं होता, धारणाएं भी एक प्रकार की नहीं होती। कुछ यथार्थ होता है और कुछ अयथार्थ। कुछ ऐसा भी होता है कि अयथार्थ यथार्थ रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इसका उदाहरण है हिन्दू नाम का धर्म-सम्प्रदाय। दो सम्प्रदाय आमने-सामने खड़े कर दिए— एक हिन्दू सम्प्रदाय और दूसरा मुस्लिम सम्प्रदाय। ये प्रतिष्ठित और स्वीकृत भी हो गए। क्या हिन्दू नाम का कोई सम्प्रदाय है? है तो कब से? कौन है उसका प्रवर्तक? क्या किसी प्रवचन ग्रन्थ में हिन्दू सम्प्रदाय का उल्लेख है? यदि नहीं है तो इसे स्वीकृति कैसे मिली?

हिन्दू सम्प्रदाय नहीं है

हिन्दू का सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय के साथ नहीं है। उसका सम्बन्ध समाज, संस्कृति, राष्ट्रीयता अथवा भारतीयता के साथ है। प्राचीन भारत में दो सांस्कृतिक धाराएं प्रचलित थीं— द्रविड़ संस्कृति और आर्य संस्कृति। उसके उत्तरकाल में उन दोनों के परिवर्तित नाम— श्रमण संस्कृति और ब्राह्मण संस्कृति हो गए। जैन, आजीवक बौद्ध, सांख्य, तापस, परिव्राजक आदि श्रमण संस्कृति के अंतरवर्ती सम्प्रदाय थे। मीमांसक, नैयायिक, वैशेषिक, आदि ब्राह्मण संस्कृति के अंतरवर्ती सम्प्रदाय थे। इन सम्प्रदायों में परस्पर संघर्ष भी चलता था किन्तु भारतीयता पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगा। साम्प्रदायिक दृष्टि से विभक्त होते हुए भी वे भारतीयता की दृष्टि से अविभक्त थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या जैन हिन्दू हैं ?

हिन्दू को सम्प्रदाय मानकर हमने भारतीयता या राष्ट्रीयता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। आज वैदिक धर्म के अनुयायी अपने आपको हिन्दू कहलाने में गौरव का अनुभव करते हैं। बौद्ध और सिख अपने आपको हिन्दू नहीं मानते। जैन स्वयं को हिन्दू मानते भी हैं और नहीं भी जानते। पूना के विद्वान् ने आचार्य तुलसी से पूछा— क्या जैन हिन्दू हैं या नहीं ? आचार्यश्री ने इसका उत्तर सापेक्ष दृष्टिकोण से दिया। आचार्यवर ने कहा— यदि हिन्दू का वैदिक सम्प्रदाय है तो जैन हिन्दू नहीं है और यदि हिन्दू का अर्थ भारतीयता अथवा राष्ट्रीयता है तो जैन हिन्दू हैं। इस्लाम का अनुयायी होने के कारण मुस्लिम सम्प्रदाय का स्वतन्त्र अस्तित्व है, किन्तु जहां राष्ट्रीयता का प्रश्न है, क्या वहां मुसलमान हिन्दू नहीं है ? चीन में बौद्ध, कन्फ्युशियस आदि सम्प्रदाय के अनुयायी हैं, वहां इस्लाम के अनुयायी भी हैं किन्तु राष्ट्रीयता की दृष्टि से शेष चीनी और इस्लाम के अनुयायियों में कोई अंतर दिखाई नहीं देता।

प्रश्न राष्ट्रीयता का

हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुसलमान— इन दो शब्दों के अंतराल में कितने पहाड़ हैं, कितनी दरारें और कितनी खाइयां हैं। राष्ट्रीयता भी एक नम्बर और दो नम्बर में बंटी हुई है। यह असम्भव नहीं है कि मुसलमान के मन में अपनी राष्ट्रीयता का बिम्ब कोई दूसरा है और हिन्दू भी उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक माने हुए हैं। इस स्थिति का निर्माण इसलिए हुआ कि हिन्दू को एक सम्प्रदाय बना दिया गया। वास्तव में ही हिन्दू कोई सम्प्रदाय नहीं है, वह एक राष्ट्रीयता है। सिन्धु नदी से उपलक्षित भू-खण्ड हिन्दू राष्ट्र है। इस प्रदेश का निवासी किसी भी सम्प्रदाय का हो, वह हिन्दू ही कहलाता है। वैदिक, जैन, बौद्ध, पारसी, सिख, ईसाई, इस्लाम, शैव— सब सम्प्रदाय हैं। सम्प्रदाय का सम्बन्ध अपनी-अपनी धार्मिक मान्यता से जुड़ा हेता है। मातृभूमि या राष्ट्रीयता से उसका सम्बन्ध नहीं है।

नई मानसिकता

राजनीति की धारा ने एक नयी मानसिकता का निर्माण किया है। हर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्प्रदाय अपने लिए स्वतन्त्र राष्ट्र या स्वायत्त शासन की कल्पना संजोए हुए है। यदि यह मानसिकता आकार ले ले तो किसी विशाल राष्ट्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आज का हिन्दुस्तान चालीस से अधिक खंडों में विभक्त हो तब यह कल्पना साकार होती है। क्या यह राष्ट्र के लिए हितकर होगा? क्या एक बड़ी शक्ति खण्डों में बंटकर कमजोर नहीं हो जाती ? हिन्दुस्तान पहले छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था, फिर भी एक छोटे राज्य में अनेक सम्प्रदायों का अस्तित्व विद्यमान था। उस समय साम्प्रदायिक संघर्ष अधिक थे। कभी-कभी राजा के निरंकुश शासन में सम्प्रदायों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता था। लोकतन्त्र में सारी परिस्थिति बदल गई। अब किसी भी सम्प्रदाय को कोई खतरा नहीं है। सम्प्रदाय निरपेक्ष राज्य में सब सम्प्रदायों को अपना-अपना विकास करने का अवसर उपलब्ध है। चिन्तन की गहराई में उतरकर देखें तो समस्या सम्प्रदाय की नहीं है, समस्या सम्प्रदाय के मुखिया लोगों की है। उनकी अपनी महत्त्वाकांक्षा समस्या बन रही है। यमन में मुसलमानों का राज्य है। वहां एक लाख हिन्दू भी रहते हैं। वहां हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई टकराव नहीं है, होड़ और संघर्ष नहीं है। यह संघर्ष हिन्दुस्तान उपमहाद्वीप में ही क्यों ? इसका कारण यही है कि यहां हिन्दू एक सम्प्रदाय मान लिया गया और दो सम्प्रदायों में विरोध की कल्पना स्थिर-रूढ़ हो गई। हिन्दू को केवल समाज या राष्ट्रीयता के साथ जोड़े बिना इस समस्या का समाधान दिखाई नहीं देता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. धर्म निरपेक्ष शब्द से उलझी समस्या

भाव और भाषा की दूरी एक जटिल समस्या है । भाव बोलते नहीं और भाषा के पास अनुभूति नहीं । दोनों का गठबन्धन है । अंतर्जगत् की अभिव्यक्ति के लिए भाषा आवश्यक है । इस आधार पर वह गठबंधन चल रहा है । मानव समाज का सारा व्यवहार शब्दों के सहारे चल रहा है । ये विनिमय के सर्वाधिक सशक्त माध्यम हैं ।

धर्म और राजनीति

धर्म अंतर्जगत् की अनुभूति या प्रक्रिया है । कुछ शब्दों ने धार्मिक जगत् में काफी उलझनें पैदा कर रखी हैं । उनमें एक शब्द है धर्म निरपेक्ष । संविधान-निर्माताओं की अंतरात्मा कहना चाहती थी— लोकतन्त्र में किसी एक धर्म की सम्प्रभुता नहीं होगी । राज्य सब धर्मों को विकास का समान अवसर देगा । वह किसी के साथ पक्षपात नहीं करेगा । अंतरात्मा के साथ शब्दात्मा जुड़ी नहीं। धर्म-निरपेक्षता का अर्थ नास्तिकता या धर्म-विमुखता किया जाने लगा ।

प्रश्न है— धर्म या राज्य या राजनीति से कोई सम्बन्ध हो या न हो ? यदि कोई सम्बन्ध न हो तो वह राज्य या राजनीति निरंकुश होगी, जनता का उत्पीड़न बढ़ेगा । यदि राज्य और राजनीति के साथ धर्म का सम्बन्ध हो तो किस धर्म का ? धर्म एक नहीं है । उसकी संख्या सैकड़ों में है । इस बिन्दु पर पहुंचकर हमारा चिन्तन एक मोड़ लेता है— धर्म सैकड़ों नहीं है, सैकड़ों हैं धर्म के सम्प्रदाय, धर्म की व्याख्याएं ।

धर्म और सम्प्रदाय

सामान्यतया हम धर्म और सम्प्रदाय को समानार्थक मानकर चल रहे हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए बहुत बार धर्म के स्थान पर सम्प्रदाय का प्रयोग करते हैं और सम्प्रदाय के स्थान पर धर्म का प्रयोग करते हैं। यदि हम धर्म को सम्प्रदाय से पृथक् मानें तो हमारा दृष्टिकोण काफी सुलझ जाता है। प्रश्न समाप्त नहीं होता। नया तर्क उभरकर सामने आता है— धर्म क्या है ? सम्प्रदाय जिस धर्म की व्याख्या देता है, वही हमारे लिए धर्म बनता है इसीलिए बहुत सारे चिन्तक धर्म और सम्प्रदाय को पृथक्-पृथक् नहीं मानते। वे राजनीति और धर्म को भी पृथक् नहीं मानते। उनका तर्क वही है— यदि राज्य धर्म से अनुप्राणित नहीं होगा तो वह कल्याणकारी नहीं होगा। उनकी कल्पना में वही धर्म कल्याणकारी है, जिसकी व्याख्या उनका सम्प्रदाय दे रहा है।

यह कोई समस्या का समाधान नहीं है। समस्या का समाधान सम्प्रदाय विहीन अथवा निर्विशेषण धर्म के द्वारा हो सकता है। जिस धर्म के साथ सम्प्रदाय जुड़ा हुआ है, उसे यदि राज्य प्राथमिकता दे तो धर्म का महत्त्व कम बढ़ेगा, सम्प्रदाय का अधिक बढ़ेगा। समाधान कम मिलेगा, समस्याएं अधिक पैदा होंगी।

लोकतन्त्र और धर्म

राज्य धर्म सापेक्ष होना चाहिए किन्तु सम्प्रदाय से प्रतिबद्ध धर्म से निरपेक्ष होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि ऐसा न हो तो वह राजतंत्रीय राज्य हो सकता है, लोकतन्त्रीय राज्य कभी नहीं हो सकता। राजतन्त्र के युग में राजा जिस धर्म को स्वीकार करता है, उसी धर्म को मानने के लिए प्रजा विवश हो जाती है। लोकतंत्र निरंकुश शासन प्रणाली नहीं है इसलिए उसमें राजतन्त्रीय निरंकुश प्रवृत्ति की पुनरावृत्ति नहीं की जा सकती।

साधना प्रधान धर्म वैयक्तिक होता है। उससे राज्य का संबंध नहीं होता। धर्म का एक अंग है नैतिकता। समाज और राज्य से उसी का संबंध होता है। नैतिकता की आचार संहिता को मूल्य देना लोकतन्त्रीय शासन के लिए अत्यन्त अनिवार्य है। उसे लोकतन्त्र के प्रशिक्षण का एक भाग बनाया जाए तो धर्म निरपेक्षता की पृष्ठभूमि बदल जाती है।

लोकतन्त्र और नैतिकता

आश्चर्य की बात है— हिन्दुस्तान विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है फिर भी लोकतन्त्र के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है। क्या नैतिक विकास के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिना लोकतन्त्र के उन्नयन की कल्पना की जा सकती है ? लोकतन्त्र में हिंसा, बल प्रयोग, गोलीबारी की घटनाएं नहीं होनी चाहिए अथवा उनमें कमी आनी चाहिए किन्तु उनमें कमी नहीं आ रही है। इसका मुख्य हेतु है— प्रशिक्षण का अभाव। लोकतन्त्र के लिए चेतना का जो निर्माण होना चाहिए, वह कहां हो रहा है ?

धर्म निरपेक्ष शब्द को हम उलझन का बिन्दु न बनाएं। लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली को साम्प्रदायिकता से प्रतिबद्ध धर्म से मुक्त रखना अत्यन्त आवश्यक है, साथ-साथ उसे नैतिक आचार संहिता से प्रतिबद्ध करना भी उतना ही आवश्यक है। एक पहलू को छुआ गया, दूसरे की उपेक्षा कर दी गई। उसका परिणाम है धर्म निरपेक्ष शब्द समस्या को सुलझाने की अपेक्षा अधिक उलझा रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. नए शब्द की खोज करें

सत्य का एक अर्थ है ऋजुता, सरलता। शरीर की ऋजुता, भाषा की ऋजुता, भाव की ऋजुता और अविसंवाद। प्रवंचना असत्य है। धर्म का क्षेत्र सत्य की साधना का क्षेत्र है। साथ-साथ यह भी पूछा जा सकता है—क्या धर्म की भूमि पर प्रवंचना के बीज नहीं उगे हैं? क्या उनसे धर्म का कोई कल्याण हुआ है? क्या सांप्रदायिक संघर्ष में कोई कमी आई है? इन प्रश्नों का उत्तर 'हां' में नहीं दिया जा सकता।

सर्वधर्म-समभाव : अर्थ-मीमांसा

सर्वधर्म-समभाव, सर्वधर्म समानत्व, सर्वधर्म सद्भाव आदि अनेक शब्द प्रचलित हैं। इनमें यथार्थता कम है, औपचारिकता अधिक है। महात्मा गांधी ने लिखा—'जैसे हम अपने धर्म को आदर देते हैं, ऐसे ही दूसरे धर्म को दें —मात्र सहिष्णुता पर्याप्त नहीं है।' (बापू के आशीर्वाद, पृ० ८)

सर्वधर्म समभाव का अर्थ क्या है? तात्पर्य क्या है? साधारण आदमी इसका अर्थ नहीं जानता। समभाव का एक अर्थ हो सकता है तटस्थ भाव। दूसरा अर्थ हो सकता है समानता का भाव। यदि सब धर्मों के प्रति हमारी तटस्थता हो—किसी के प्रति पक्षपात न हो तो हमारी स्थिति मात्र द्रष्टा की बन जाती है, किसी भी धर्म के प्रति हमारा कर्त्तव्य प्रस्फुटित नहीं होता। हमें कम-से-कम एक धर्म की प्रणाली को आचरणीय बनाना ही चाहिए।

समानता की भूलभुलैया

सर्वधर्म समभाव का अर्थ सब धर्मों के प्रति समानता का भाव करें तो क्या यह हमारा चिन्तन प्रवंचना से मुक्त होगा? एक व्यक्ति अहिंसा को धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानता है। दूसरे व्यक्ति की धारणा उसके विपरीत है। उसे हिंसा में भी धर्म मानने का सूत्र मिला है। क्या अहिंसा धर्म को मानने वाला हिंसा धर्म को भी उसके समान मानेगा ? धर्म की अनेक धारणाएं एक-दूसरे के सर्वथा विपरीत हैं फिर उन्हें समान मानने की बात कैसे फलित होगी ? यदि सब धर्मों के प्रति समानता का भाव रखने का सिद्धान्त उपादेय हो तो भेद कहां होगा ? यदि भेद नहीं है तो इसका अर्थ होगा— विचार की स्वतन्त्रता नहीं है। यदि वैचारिक स्वतन्त्रता है तो भेद अवश्य होगा क्योंकि सबका सोचने का ढंग एक समान नहीं हो सकता। धार्मिक दृष्टिकोण में असमानता है फिर सब धर्मों के प्रति समानत्व की भावना कैसे पैदा होगी ? इस समानता की भूलभुलैया में आदमी को भटकाना क्या अच्छी बात है ?

नए शब्द की खोज करें

सब धर्मों में समानता के कुछ तत्त्व मिल सकते हैं। उन्हें खोजना आवश्यक है। असमानता के तत्त्वों को खोजना भी उतना ही आवश्यक है। उन्हें खोजे बिना हम धर्म या दर्शन के विचार-विकास का क्रम ही नहीं समझ पाएंगे। दार्शनिक युग में खंडन-मंडन का क्रम बहुत चला। जैन, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य और वेदान्त— ये सब एक-दूसरे की मीमांसा करते रहे, पर यह सब विद्वानों के स्तर पर या बौद्धिक भूमिका पर चलता था ? सांप्रदायिक आवेश फैलाने और परस्पर सांप्रदायिक दंगे करवाने की बात उसके साथ जुड़ी हुई नहीं थी। हिन्दू और मुसलमान के कोई वैचारिक भेद की मीमांसा नहीं है, कोई दार्शनिक मीमांसा का प्रश्न नहीं है। इस संघर्ष को धार्मिक या सांप्रदायिक कहना भी उचित नहीं लगता। यह विशुद्ध अर्थ में जातीय संघर्ष है। हिन्दू और मुसलमान— ये दो जातियां बन गईं और दोनों अपने-अपने हितों या स्वार्थों की रक्षा के लिए जब तब मैदान में उतर आती हैं। इस मैदानी टकराहट को मिटाने के लिए सर्वधर्म समभाव या समानत्व जैसे शब्दों की व्यूह-रचना की गई। वह प्रयत्न सार्थक नहीं हुआ। यह उपयुक्त समय है, इस व्यूह-रचना को तोड़ यथार्थ की धरती पर अपने चरण टिकाएं। किसी नए शब्द की खोज करें जो लुभावना न हो, मोहक न हो, भ्रामक न हो, वास्तविकता को उजागर करता हो।

यथार्थ को छूने वाली भाषा

सब धर्मों के प्रति सापेक्षता का दृष्टिकोण। हमारी दृष्टि में यह यथार्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को छूने वाली भाषा है। प्रत्येक धर्म ने जो कुछ कहा है, वह अपनी अपेक्षा से कहा है। हम उसकी अपेक्षा को समझने का प्रयत्न करें किन्तु अपनी अपेक्षा को उस पर लादने का प्रयत्न न करें। आचार्य सिद्धसेन ने कहा— जितने बोलने के प्रकार हैं, उतने ही दृष्टिकोण हैं। यह सापेक्षता का सिद्धान्त उपाय है विवाद के परिसमापन का। कोई भी व्यक्ति सम्पूर्ण सत्य का प्रतिपादन नहीं कर सकता। वह कुछ सापेक्ष सत्यों का ही प्रतिपादन करता है। हम निरपेक्ष होकर उस सत्यांश का मूल्यांकन न करें। सब धर्मों के विचार समान हों, यह आवश्यक नहीं है, सम्भव नहीं है। यह भिन्नता चिन्तन की स्वतंत्रता का प्रतिफलन है इसलिए हम वैचारिक स्वतन्त्रता का सम्मान करें और सहिष्णुता का विकास करें। घृणा की आदत को बदलने का अभ्यास करें। इतना-सा होता है तो धर्म या संप्रदाय के नाम पर हिंसा फैलाने का सिलसिला बंद हो सकता है। हम यथार्थ को सर्वोपरि मूल्य दें। हमारी यथार्थ की चेतना कल्पनाजनित अनेक समस्याओं का समाधान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. स्वस्थ समाज-रचना में हमारी सहभागिता

स्वस्थ समाज रचना : पहला आधार

स्वस्थ समाज के संयोजन का पहला आधार है— आत्मानुशासन। जब आत्मानुशासन जागता है तब आदमी में अहिंसा के भाव प्रबल होते हैं। हिंसा समस्या का समाधान नहीं है, यह श्रद्धा प्रकट होती है। लड़ाई भी होती है तो आखिर उसकी एक सीमा होती है। आदमी अनन्त काल तक नहीं लड़ सकता। पिछले पांच हजार वर्षों में महाभारत से लेकर आज तक छः-सात हजार युद्ध लड़े गये हैं। क्या इतिहास में ऐसा कोई युद्ध मिलता है, जो सौ वर्ष तक लड़ा गया हो ? यदि इतना लम्बा युद्ध चले तो अदमी भूखे मर जाएं। उसे खाने को रोटी ही नहीं मिले। कुछ लोग हजार वर्ष तक लड़ने की बात करते हैं पर यह समझदारी की बात नहीं है। युद्ध में लगने से अन्य विकास रुक जाते हैं। अंत में थककर आदमी को समझौता करना पड़ता है। इससे हम समझ सकते हैं— समस्या का असली समाधान हिंसा है या अहिंसा ?

समाधान है अहिंसा

प्रवृत्ति काल में आदमी में एक आवेग-उन्माद होता है, अतः वह कुछ भी कर गुजरता है। उस समय वह परिणाम की ओर नहीं देखता पर परिणाम की ओर देखना भारतीय चिन्तन का महत्त्वपूर्ण सूत्र रहा है। प्रवृत्तिवाद आपाद-भद्र लगता है। प्रारम्भ में अच्छा लगता है पर परिणाम में विरस हो जाता है। आदमी को खाना-पीना, भोग करना अच्छा लगता है। इन्द्रियों को भी वह रुचता है इसीलिए जब आदमी खाने बैठता है तो बहुत सारा भोजन खा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गरिष्ठ भोजन भी खा लेता है पर उसका परिणाम यह होता है कि उसे डॉक्टर की शरण में जाना पड़ता है । यह प्रवृत्तिवादी दर्शन है । परिणामदर्शी आदमी वैसा नहीं कर सकता । वह जानता है कि हिंसा समस्या का समाधान नहीं हो सकती । गोली, तोड़-फोड़ आदि समस्या का समाधान नहीं हो सकता । समाधान तो अहिंसा हो सकती है ।

मानवीय एकता में विश्वास

स्वस्थ समाज की परिकल्पना का दूसरा सूत्र बनेगा— मानवीय एकता में विश्वास । आदमी में अपना अहं है इसीलिए वह घृणा को महत्त्व दे देता है। घृणा भी एक बार अच्छी लगती है पर उसका परिणाम क्या होता है, यह भी किसी से छिपा नहीं है । घृणा की भावना के कारण ही मनुष्य जाति कई भागों में बंट गई है । अमुक लोग छोटे हैं, अछूत हैं, काले हैं इसीलिए हमारे पास नहीं बैठ सकते, हमारे साथ एक वाहन में भी नहीं चल सकते, हमारी बस्ती में नहीं बस सकते— आदि कुछ ऐसी अहं वृत्तियां हैं, जिनसे आज भी आदमी ग्रसित है । दक्षिणी अफ्रीका इसी भयानक व्याधि से ग्रसित है । नीग्रो लोगों को लेकर यहां कितना भेदभाव बरता जा रहा है । महात्मा गांधी को इसीलिए वहां कितना कष्ट झेलना पड़ा था । आज भी वह समस्या पूरी नहीं सुलझी है ।

विजातीय व्यवहार

आदमी ने आदमी को कितना बांट दिया है । यदि कोई पशु आदमी के साथ ऐसा व्यवहार करता तो हम मान सकते थे कि यह एक विजातीय व्यवहार है । पर आदमी ऊपरी आवरण के कारण, चमड़ी के कारण आदमी के साथ, अपनी जाति के साथ ऐसा व्यवहार करता है तो हम कैसे मान सकते हैं कि आदमी शिक्षित है, प्रबुद्ध और वैज्ञानिक है । अगर आदमी की दृष्टि वैज्ञानिक होती तो वह ऐसा कभी नहीं सोचता । आत्मानुशासन के अभाव में ही यह सब कुछ होता है । जो समाज आत्मानुशासन से भावित होता है, वह शांतिपूर्ण सहअस्तित्व में विश्वास करता है । उसे हम चाहें तो अहिंसक समाज कह दें, शांतिवादी समाज कह दें, चाहें शोषणमुक्त समाज कह दें, वह वास्तव में स्वस्थ समाज है । समाजवादियों तथा साम्यवादियों ने भी ऐसे ही समाज की परिकल्पना की है । आत्मानुशासन के प्रशिक्षण के बिना, दूसरे शब्दों में अणुव्रत के प्रशिक्षण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बिना ऐसा समाज कभी संभव नहीं है।

नियन्त्रण की चेतना जागे

आवश्यकता यही है कि आदमी-आदमी में नियन्त्रण की चेतना जागे, वह पशु की तरह दूसरों से हांका न जाए। यदि दण्डनीति आदमी को हांकती रही तो प्रबुद्ध समाज का निर्माण नहीं हो सकेगा। जब भी समाज में प्रबुद्धता जागती है, मनुष्य-मनुष्य में दूरी मिट जाती है, मानवीय एकता की भावना प्रबल हो जाती है। स्वस्थ समाज में ही संवेदनशीलता, सहानुभूति तथा करुणा का विकास होता है।

मनुष्य के लिए आजीविका आवश्यक है पर सवाल यह है कि वह आजीविका पवित्र है या अपवित्र। स्वस्थ समाज-संरचना के लिए यह आवश्यक है आजीविका अपवित्र अर्थात् अप्रामाणिक न हो। जब भी आदमी अप्रामाणिक होता है तो उसके मन में बहने वाला करुणा का स्रोत सूख जाता है। वह थोड़े लोभ या लाभ के कारण ऐसी अप्रामाणिकता कर बैठता है, जो दूसरों के लिए खतरनाक भी हो सकती है। मिलावट का धन्धा एक इसी प्रकार की अप्रामाणिकता है।

अप्रामाणिकता का स्रोत

अप्रामाणिकता का दूसरा स्रोत है शोषण। अप्रामाणिक आदमी ही दूसरे के श्रम का शोषण करता है। बल्कि अपनी अप्रामाणिकता के कारण कभी-कभी तो आदमी इस हद तक आगे बढ़ जाता है, जो सर्वनाश को छूने लगता है। नशीली दवाइयों का धन्धा एक ऐसा ही धन्धा है। जो लोग नशीली दवाइयां बेचते हैं, पहले वे लोगों को निःशुल्क दवाइयां बांटते हैं। जब उनको दवाइयों की आदत पड़ जाती है तब हर हालत में उन्हें खरीदना पड़ता है। ऐसे लोगों की स्थिति यहां तक पहुंच जाती है कि अपने चरित्र को बेचकर भी उन्हें अपनी आदत का शोषण करना पड़ता है, अंत में उनकी दर्दनाक मृत्यु तक हो जाती है। सचमुच यह शोषण की चरम सीमा का उदाहरण है। शस्त्रों का व्यापार भी एक इसी प्रकार का व्यापार है। कुछ लोग इतना नहीं भी करते तो भी गरीबी की मजबूरी का फायदा उठाकर अपनी तिजोरियां भरने की कोशिश करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानवीय सम्बन्धों का विकास

पवित्रता का तीसरा सूत्र है— मानवीय सम्बन्धों का विकास। आज ऐसा लगता है कि मानवीय सम्बन्धों में बहुत नीरसता-कटुता आ गई है। आज मिल मालिक और मजदूरों के सम्बन्ध कैसे हैं, यह सब जानते हैं। पारस्परिक संबंधों में जब समानता की अनुभूति नहीं होती है तभी यह स्थिति बनती है। अधिकारी और कर्मचारी, मालिक और नौकर— इन दोनों के बीच में खाई पड़ जाती है। हड़ताल, तालाबन्दी आदि उसी के परिणाम हैं। यदि मानवीय सम्बन्ध अच्छे हों तो ऐसी स्थिति ही पैदा न हो।

क्रूरता कम हो

यह मजदूर और मिल मालिकों का ही सवाल नहीं है। आज शिक्षक, पानी देने वाले कर्मचारी, बिजली देने वाले कर्मचारी, यहां तक कि डॉक्टर भी हड़ताल कर देते हैं। इसका कारण यही है कि मानवीय सम्बन्धों की जो मिठास होनी चाहिए, समानता की जो अनुभूति होनी चाहिए, वह नहीं है। हम हड़ताल को अच्छा नहीं मानते पर उसके पीछे असमानता का जो कारण है, उसे भी इन्कार नहीं किया जा सकता।

आज आदमी में इतनी क्रूरता पनप गई है कि वह हजारों मार्गों से फूटती रहती है। इसी से वह हाथियों, शेरों, मृगों, खरगोशों की हिंसा करने में भी संकोच नहीं करता। आदमी अधिक दूध निकालने के लिए गायों को इन्जेक्शन लगवाता है। बछड़ा तड़प-तड़पकर मर जाता है पर गाय का सारा दूध निकाल लेता है। क्रूरता के ऐसे-ऐसे रूप हैं कि उनकी व्याख्या भी कठिन है। ऐसी क्रूरता जहां होती है, वहां व्यापार की पवित्रता नहीं रह सकती।

व्यक्ति स्वस्थ बने

जिस व्यक्ति ने जीवन का मूल्यांकन किया है वह केवल आजीविका नहीं कमाएगा, उसके साथ पवित्रता को भी जोड़ेगा। अणुव्रत-आंदोलन से पवित्रता को उभारने का ही एक प्रयत्न है।

स्वस्थ व्यक्ति ही स्वस्थ समाज का निर्माता होता है। व्यक्ति की स्वस्थता उसके आहार पर भी बहुत कुछ निर्भर करती है। यह देखा गया है— जिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्तियों का आहार शुद्ध और सात्विक होता है, उनका विचार और व्यवहार भी सात्विक होता है। तामसिक आहार करने वालों के विचार स्वाभाविक रूप से क्रूर होते हैं। इसी प्रकार नशा भी आदमी को गलत राह पर ले जाता है। थोड़े से शुरू होने वाली नशे की मात्रा बड़े-बड़े अपराधों तक ही सीमित नहीं रहती है अपितु आत्महत्या तथा नृशंस हत्याओं की मंजिल तक पहुंच जाती है। इसीलिए नशा आज दुनिया की समस्या नम्बर एक बन गई है। इस दृष्टि से सात्विक आहार तथा व्यसनमुक्त जीवन स्वस्थ समाज व्यवस्था के प्रमुख अंग हैं।

सचेतन समाज

स्वस्थ समाज वह होता है जहां अंधविश्वासों तथा अंधरूढ़ियों को आदर नहीं मिलता। आदिम मनुष्य अंधविश्वासों से ग्रस्त था। जब अंधविश्वास परम्परा बन जाते हैं तब अंधरूढ़ियों का रूप ग्रहण कर लेते हैं। स्वस्थ समाज व्यवस्था सचेतन समाज व्यवस्था होती है। वहां किसी बात का मूल्य परम्परा नहीं होती अपितु उसकी गुणवत्ता होती है। रूढ़ियों से मुक्त समाज-व्यवस्था ही स्वस्थ समाज-व्यवस्था हो सकती है।

स्वस्थ समाज-व्यवस्था में आदमी को विचार की पूरी स्वतन्त्रता रहती है पर इसके साथ-साथ विचारों की सहिष्णुता का भी वही मूल्य होता है। वहां अपनी विचार की स्वतन्त्रता के साथ-साथ दूसरों के विचारों एवं अधिकारों की भी पूर्ण सुरक्षा रहती है।

ऐसी समाज-व्यवस्था में धन एवं सत्ता का अपने आप विकेन्द्रीकरण हो जाता है। यह ठीक ही कहा गया है—

शांति बीन बज सकती तब तक
नहीं सुनिश्चित स्वर में
स्वर की शुद्ध प्रतिध्वनि जब तक
उठे नहीं उर-उर में।

जब एक-एक व्यक्ति के हृदय में स्वस्थता जागृत होती है तभी स्वस्थ समाज का निर्माण होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. अणुव्रत की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता

दो ध्रुव हैं। उत्तरी ध्रुव है संयम और दक्षिणी ध्रुव है आकांक्षा। आकांक्षा सकारात्मक है। जहां आकांक्षा, वहां जीवन। जहां आकांक्षा वहां विकास। जहां आकांक्षा वहां आसक्ति। आकांक्षा की धुरी पर समूची प्रवृत्तियां गतिशील हो रही हैं। संयम नकारात्मक है। जहां संयम, वहां चैतन्य। जहां संयम, वहां सत्य की अनुभूति। जहां संयम, वहां अनासक्ति।

जीवन जीने के लिए आवश्यक है प्रवृत्ति, विकास और आसक्ति। जीवन को पवित्र बनाने के लिए आवश्यक है— निवृत्ति, चैतन्य की अनभूति, सत्यनिष्ठा और अनासक्ति।

आकांक्षा : खतरे के बिन्दु पर

एक सामाजिक व्यक्ति में आकांक्षा और आसक्ति न हो, यह सम्भव नहीं। उसमें केवल आकांक्षा और आसक्ति हो, उस पर नियन्त्रण करने की क्षमता न हो तो वह अपने लिए और दूसरों के लिए खतरनाक बन जाता है। इस खतरे से सावधान होने का नाम है अणुव्रत। नदी का जलस्तर खतरे के बिन्दु तक पहुंच जाता है तब सब सावधान हो जाते हैं। आकांक्षा एक महानदी है। उसका जलस्तर खतरे के बिन्दु तक पहुंच जाते हैं फिर भी मनुष्य सावधान नहीं होता। उस स्थिति में जन्म लेते हैं अपराध, आतंक, हत्या और अनैतिकता। जो खतरे से सावधान नहीं होते, उन्हें खतरे से सावधान करने का नाम है अणुव्रत आंदोलन।

एक मनुष्य सुख चाहता है, सुविधा चाहता है, भोग चाहता है, दूसरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी चाहता है और तीसरा भी चाहता है। हर आदमी चाहता है। सुख चाहने का अर्थ है सुख के साधन को चाहना। सुख के साधन को चाहना है, इसका अर्थ है, वह उनको पाना चाहता है। सबके सब लोग सुख के साधनों को पाना चाहते हैं। इस अवस्था में टकराव या संघर्ष होना अनिवार्य है। इसी अवस्था में स्पर्धा, होड़ अथवा दौड़ बढ़ती है। इसी बिन्दु पर अनैतिकता का जन्म होता है।

मूल को पकड़ें

अणुव्रत का दर्शन है—सुख की चाह को सीमित करना, सुविधावादी दृष्टिकोण को बदलना। सुख और सुविधा के साधनों पर अनधिकार अधिकार न करना। क्या यह सब आज के मनुष्य को मान्य है? यदि आज का आदमी समाज में भ्रष्टाचार नहीं चाहता, अनैतिकतापूर्ण व्यवहार नहीं चाहता तो उसकी मान्यता का कोई विकल्प नहीं है, वह अनिवार्य है। अनैतिकता का मूल स्रोत प्रवाहित रहे और उसकी एक धार को हम सुखाना चाहें तो उसकी सार्थकता कितनी हो सकती है ? हम पत्तों और फूलों के सिंचन पर ज्यादा विश्वास करते हैं, जड़ के अभिसिंचन की ओर कम ध्यान देते हैं इसलिए पत्र और पुष्प भी मुरझा जाते हैं। आधुनिक चीन के निर्माता माओ ने अपनी मां से एक बोधपाठ पढ़ा था। मां की रुग्णावस्था में फूलों की सार-सम्भाल का दायित्व माओ ने लिया। फूलों पर पानी सींचा। पौधे कुम्हाला गए। मां स्वस्थ होकर वहां आई। कुम्हलाए हुए पौधों को देखकर कहा—'तुमने इन पौधों को सींचा नहीं, ऐसा लगता है।' माओ का उत्तर था— 'मैंने बहुत बुद्धिमानी से इसे सींचा है। मैंने प्रत्येक फूल को सींचा है।' मां ने कहा— 'बेटा तुम समझते नहीं हो। मूल को सींचा जाता है तो फूल खिल उठते हैं और फूलों को सींचा जाता है तो सब मुरझा जाते हैं।' माओ ने लिखा— 'इससे मैंने एक पाठ पढ़ा कि समस्या के मूल को पकड़े बिना उसे सुलझाया नहीं जा सकता।' भ्रष्टाचार की समस्या का जो मूल है, उसे पकड़े बिना हम उसे सुलझाना चाहते हैं। यह हमारा प्रयत्न कभी सार्थक नहीं होगा।

अणुव्रत का घोष

संयम ही जीवन है, यह अणुव्रत का घोष है। मनुष्य को पसन्द है असंयम, खुला रहना। अपनी कामना पर, इन्द्रियों पर कौन चाहता है नियन्त्रण ? पुलिस का या दण्डशक्ति का नियन्त्रण भले हो जाए, अपने आप अपने पर नियन्त्रण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना आदमी नहीं चाहता । अपराध, हिंसा— ये सब असंयम के परिणाम हैं इसलिए असंयम को मृत्यु कहा जाता है । कोई आदमी भूख से मरता है तो विपक्ष सरकार की नींद को हराम कर देता है । असंयम से अथवा अधिक खा-खाकर हजारों लोग अकाल मृत्यु से मरते हैं । उस ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता । मादक वस्तु का सेवन कितने लोगों को बेमौत मार रहा है ! फिर असंयम मृत्यु है, यह समझने में कठिनाई नहीं होती । यदि संयम का मूल्यांकन हुआ होता तो राज्यतन्त्र और शासक वर्ग पर भ्रष्टाचार का आरोप कभी नहीं होता । असंयम है और वह व्यापक है तभी इन सब घटनाओं की पुनरावृत्तियां होती रहती है ।

सीमाकरण की स्थिति बने

अपने से अपना अनुशासन, अणुव्रत की परिभाषा

इस परिभाषा का तात्पर्य हृदयंगम किया होता तो समाज आज की कालरात्रि को नहीं भोगता । अणुव्रत दर्शन का महत्त्वपूर्ण सूत्र है—इन्द्रिय और मन के स्वामी बनो, दास मत बनो । इसकी क्रियान्विति के लिए सीमाकरण की स्थिति बनती है । हिंसा और परिग्रह से सर्वथा मुक्त समाज की कल्पना करना सम्भव नहीं है । हिंसा और परिग्रह की सीमा से मुक्त रहना समाज के हित में नहीं है । आज निरपराध मनुष्य और प्राणी मारे जा रहे हैं, यदि हिंसा की सीमा होती तो ऐसा नहीं होता । मनुष्य मनुष्य को अछूत मान रहा है, यदि हिंसा की सीमा होती तो ऐसा नहीं होता ।

तेईस करोड़ आदमी गरीबी की रेखा के नीचे का जीवन जी रहे हैं । यदि व्यक्तिगत स्वामित्व की सीमा होती तो ऐसा नहीं होता । अट्टालिकाओं और झोंपड़ियों का संगम नहीं होता यदि संग्रह की सीमा नहीं होती । असीम केवल आकाश हो सकता है । असंयम असीम हो, यह अवांछनीय है व्यक्ति के लिए भी और समाज के लिए भी । समाज का अर्थ है सीमा की स्वीकृति । वह हार्दिक नहीं होती, राज्यशासन-कृत होती है । अणुव्रत का अर्थ है— सीमा की स्वीकृति । वह हार्दिक होती है, व्यवस्थाकृत नहीं होती ।

अणुव्रत एक अनिवार्यता है । नैतिकता विहीन समाज कभी स्वस्थ समाज नहीं हो सकता । आप चाहें या न चाहें, यदि स्वस्थ समाज का निर्माण करना है तो अनिवार्य है **'संयम ही जीवन है'**, का घोष और अनिवार्य है अणुव्रत की स्वीकृति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. निष्काम कर्म और गीता

पटना विश्वविद्यालय में आचार्यप्रवर का स्वागत हो रहा था। स्वागत में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रामधारीसिंह दिनकर बोल रहे थे। उन्होंने अपने भाषण में कहा— 'आज की एक बहुत बड़ी समस्या है। वह समस्या है प्रवृत्ति की। आज प्रवृत्ति-बहुल-युग है। प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि उससे मानसिक तनाव, मानसिक कुंठा और मानसिक बीमारियां पैदा हो रही हैं।'

प्रवृत्ति : जीवन की अनिवार्यता

जहां प्रवृत्ति अपनी सीमा से परे जाती है, वहां समस्या पैदा होती है। केवल निवृत्ति से काम नहीं चलता। एक प्रश्न आज से नहीं, बहुत पुराने काल से मनुष्य के सामने रहा है कि वह प्रवृत्ति करे या निवृत्ति ? दोनों में से किसको महत्त्व दे ? धर्म ने निवृत्ति की बात कही, किन्तु जीवन की कहानी ऐसी है कि प्रवृत्ति के बिना काम नहीं चलता। शरीर प्रवृत्ति के बिना काम नहीं देता। मन अपने आप में प्रवृत्ति करता रहता है और वाणी की भी प्रवृत्ति होती है। प्रवृत्ति हमारे जीवन की चर्या के साथ जुड़ी हुई है और निवृत्ति की बात एक अपेक्षा के साथ आई है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति, सक्रियता और निष्क्रियता, कर्म और अकर्म— यह द्वंद्व बराबर चलता रहता है। धर्म की दो धारणाएं बन गईं। एक है प्रवर्तक धर्म और दूसरा है निवर्तक धर्म। प्रवर्तक धर्म के साथ निवर्तक धर्म नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। निवर्तक धर्म के साथ प्रवर्तक धर्म नहीं है, यह भी नहीं कहा जा सकता। समस्या यह है— कोई भी आदमी प्रवृत्ति को छोड़ नहीं सकता। वह जीवन की अनिवार्यता है। इस स्थिति में वह क्या करे ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न है फलश्रुति का

प्रवृत्ति की फलश्रुति क्या है और निवृत्ति की फलश्रुति क्या है ? यह प्रश्न बहुत चर्चित रहा दार्शनिक जगत् में। इस पर कुछ लोग एकांगी दृष्टि से कहने लगे— आदमी को निवृत्त हो जाना चाहिए, प्रवृत्ति को छोड़ देना चहिए। यह भी एक धारा रही है। कुछ परम्पराओं में चिंतन इतना आगे बढ़ गया कि आंख देखती है तो विकार पैदा होता है इसलिए आंख को फोड़ देना चाहिए। अनेक साधकों ने आंखें फोड़ी हैं। यह कोई कहानी नहीं है, यह एक परम्परा रही है। कान पर भी रोष किया गया, कान से सुनना भी नहीं चाहिए। इस अवधारणा का मंतव्य था— इन्द्रियों की कोई प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए। हिन्दुस्तान में ऐसे संन्यासी हैं जो वहां नहीं जाते जहां स्त्रियां सामने होती हैं और यदि वे जाते हैं तो पहले स्त्रियों को वहां से हटा देते हैं। एक ओर यह विकास हुआ तो दूसरी ओर अति प्रवृत्तिवाद भी चला।

गीता में कर्म, अकर्म और विकर्म— इन तीनों की मार्मिक विवेचना प्राप्त होती है। उसने निष्काम कर्म का बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया। यह सिद्धांततः स्वीकार किया गया कि दुनिया में कोई भी आदमी ऐसा नहीं होता, जो अकर्म बन सके। यह सम्भव नहीं है। तो फिर बंधन से मुक्त कैसे हुआ जा सकता है ? और कैसे मानसिक शांति प्राप्त हो सकती है ? इसके समाधान में एक नया सूत्र खोजा गया। कहा गया— कर्म करते हुए भी अकर्म रहा जा सकता है। यह प्रसिद्ध बात है— करता हुआ भी नहीं करता, सुनता हुआ भी नहीं सुनता, देखता हुआ भी नहीं देखता। यह नया प्रतिपादन था।

कठिन है निवृत्ति

एक जैन साधक था जापान में। उसके पास एक व्यक्ति आया और बोला, 'आपकी साधना क्या है ?'

वह बोला, 'भूख लगती है तब खा लेता हूं और नींद आती है तब सो जाता हूं। बस, यही मेरी साधना है।'

'यह तो मैं भी करता हूं फिर आप कौन-सी नयी बात करते हैं ?'

'तुम नहीं करते। तुम ऐसा कर नहीं सकते।'

'कैसे नहीं कर सकता ?'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों बैठे। खाना शुरू किया। खाते-खाते न जाने उस व्यक्ति का मन कहां से कहां चला गया।

साधक ने पूछा— 'क्या तुम खा रहे हो ?'

हां, खा तो रहा हूं।

केवल खा रहे हो ? और कुछ तो नहीं कर रहे हो ?

यह कैसे हो सकता है ? मैं सोच भी रहा हूं।

इसीलिए तो मैंने कहा था— तुम यह नहीं कर सकते।

साधना यही है कि भूख लगे तब खा लेना और नींद आए तब सो जाना। कौन आदमी वास्तव में सोता है ? नींद सोते ही आती नहीं और आती है तो वह सपनों की नींद बन जाती है, वास्तविक नींद का पता ही नहीं चलता। सपने ही सपने आते हैं। निःस्वप्न नींद, कोरी नींद लेना और कोरा खाना बड़ा कठिन है।

महत्त्वपूर्ण खोज

यही बात ताओ धर्म के प्रवर्तक से पूछी गई— 'गुरुदेव ! साधना क्या है ?' उन्होंने एक शब्द में उत्तर दिया— 'साधना है केवल सुनना।' बड़ा कठिन है केवल शब्द सुनना। सुनना साधारण बात है पर जब 'केवल' लग जाता है, तब बहुत कठिन स्थिति प्रस्तुत हो जाती है। कोरा सुनना और कुछ न करना, जब यह स्थिति बनती है तब गीता का निष्काम कर्म फलित हो जाता है।

कर्म भी करना और अकर्म बने रहना, यह बहुत महत्त्वपूर्ण खोज है। ऐसा सूत्र खोजा गया, जिससे न तो काम छूटता है और न काम का बंधन साथ में रहता है। हम गीता के शब्दों में पढ़ें— जो व्यक्ति कर्म के फल को छोड़ देता है, आसक्ति को छोड़ देता है, फलाशंसा नहीं करता, वह कृतकृत्य है, वह कर्ता है, कर्म में व्याप्त होता हुआ भी वह कुछ भी नहीं कर रहा है। वह करता भी है और नहीं भी कर रहा है, यह अनेकान्त है। वह इसलिए नहीं कर रहा है कि कर्मफल की आसक्ति उसमें नहीं है। आसक्ति उसने छोड़ दी। वह अपने आपमें तृप्त है, अतृप्त नहीं है। राग नहीं है, प्रियता का भाव नहीं है, मात्र अनिवार्यता का कर्म कर रहा है। उसकी कामना छूट गई, कर्म बंधता है कामना से। जहां कामना छूट गई, फलाशंसा छूट गई, केवल अनिवार्यता के लिए काम किया जा रहा है वहां कर्म अकर्म बन जाता है, निष्काम बन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है ।

विरति : निष्काम कर्म

आज की जो बड़ी समस्या है, वह है सकाम कर्म की । आदमी कर्म करता है और कर्म के साथ अनेक कामनाओं से बंधता जाता है । चाहे कोई मोक्ष की दृष्टि से विचार करे या न करे, यह दूसरा प्रश्न है । पहला प्रश्न है—मानसिक शांति का, मानसिक सुलझाव का । मन शान्त रहे, स्थिर रहे, मन में आवेग न बढ़े, बुरे विचार न आएं, बुरी भावनाएं न पनपें, इसके लिए कामना से मुक्त होना बहुत जरूरी है ।

व्यक्ति के भीतर बंधन का एक ऐसा बीज है कि वह काम नहीं करता हुआ भी बंधता चला जा रहा है । काम करता है तब तो बंधता ही है और काम नहीं करता है तब भी बंधता चला जाता है । भीतर में कामना बराबर काम करती रहती है । मनोविज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में तनाव की चर्चा बहुत होती है । मेंटल टेंशन जो बढ़ता है, वह एक साथ नहीं बढ़ता । भीतर-ही-भीतर एक प्रकार की आग जलती रहती है और वह तपाती रहती है । उसकी गर्मी निरन्तर बनी की बनी रहती है । वह गर्मी कभी शान्त नहीं होती । वह है आन्तरिक कामना की गर्मी । उसे जैन परिभाषा में अविरति कहा गया । वह सोते-जागते, शयनकाल में भी बराबर सक्रिय रहती है, तनाव को निरन्तर पैदा करती रहती है । इस तनाव से मुक्त होने का महत्त्वपूर्ण सूत्र है—विरति । गीता की भाषा में यही है—निष्काम कर्म ।

समस्या का मूल

एक बार जोधपुर में कुछ डॉक्टरों की कान्फ्रेंस थी । कुछ लोग प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में मिले । उन लोगों ने कहा—'यदि एक मानसिक तनाव की समस्या को ही लिया जाए और उसका भी थोड़ा बहुत प्रतिकार हो सके तो यह सारे संसार के लिए बहुत बड़ा वरदान होगा ।' बात सही है, तनाव ही सभी समस्याओं का मूल है । तनाव बढ़ता है आकांक्षा से, कामना से ।

भीतर में कामना का इतना तीव्र प्रवाह रहता है कि आदमी उसे पार नहीं कर पाता । जब तक अविरति या कामना का द्वार बंद नहीं होता, संवर नहीं होता, पानी आने का मार्ग खुला-का-खुला रहता है तब तक तनाव से छुटकारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं पाया जा सकता। प्रश्न है दरवाजे को बंद करने का। दरवाजा बंद कैसे करें ? उसका सूत्र है—काम करते हुए भी निष्काम रहना, अकाम रहना।

कृष्ण का अवदान

कृष्ण का यह एक महत्त्वपूर्ण अवदान है भारतीय चिन्तन को कि कर्म में अकर्म और काम में निष्काम रहा जा सकता है। किन्तु प्रश्न फिर वही आ जाता है कि भारतीय चिन्तन को इतना बड़ा सूत्र मिला, जो बंधनमुक्ति और मानसिक तनाव की समस्या के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इतना होते हुए भी न तो बंधन-मुक्ति की बात सामने है और न मानसिक तनाव-मुक्ति की बात ही सामने है। यह क्यों ? यह इसलिए कि वाक् मात्र से कोई निष्काम नहीं बनता। कोई आदमी किसी कारणवश काम करे और कहे कि मैं निष्काम भाव से काम कर रहा हूं, यह कभी सम्भव नहीं होता। यह एक ऐसा बहाना हाथ में आ गया कि आदमी चाहे जैसा काम करता है और कोई कहे कि यह काम ठीक नहीं है तो वह कहेगा— तुम समझते नहीं हो, मेरी इसमें कोई आसक्ति नहीं है। मैं तो बिलकुल निष्काम भाव से कार्य कर रहा हूं। कई लोग बुरे-से-बुरे तरीकों से धन कमाते हैं। उनसे जब कहा जाता है कि तुम ऐसे तरीकों से धन कमाते हो ? वे कहते हैं— हमारी धन के प्रति कोई लालसा ही नहीं है। बस, हम तो कमा रहे हैं, हमारी कोई आसक्ति नहीं है। पुण्य कार्य में धन लगाने की इच्छा है।

मन की आवाज : आत्मा की आवाज

संत फ्रांसिस ने लिखा— जीवन में कुछ क्षुद्रता के क्षण आते हैं। उन्होंने अपने बारे में लिखा— मेरे जीवन में क्षुद्रता के नौ क्षण आए। एक क्षुद्रता थी— मन की आवाज को मैंने आत्मा की आवाज मान ली। बहुत लोग कहते हैं कि यह मेरी आत्मा की आवाज है। है तो मन की आवाज और मान ली जाती है आत्मा की आवाज। कितना अन्तर होता है ! मन की आवाज बहुत क्षुद्र होती है, बहुत खतरनाक होती है, दूसरों को धोखा देने वाली होती है और उस आवाज को आत्मा की आवाज मानकर दुहाई दे दी जाती है—यह मेरी अन्तरात्मा की आवाज है। अरे ! तुम अन्तरात्मा को तो पहचानते ही नहीं ? कहां से आत्मा की आवाज आ रही है ? महात्मा गांधी ने इस पर बहुत अच्छा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिन्तन दिया है। उन्होंने कहा 'कभी-कभी ऐसा होता है कि हर आदमी आत्मा की आवाज की दुहाई दे देता है किन्तु जो व्यक्ति राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या आदि-आदि से आक्रान्त है और वह कहता है कि मेरी आत्मा की आवाज है, यह भ्रान्ति है। उसके आत्मा होती ही नहीं। आत्मा की आवाज आएगी ही कहां से ? जो वीतराग बन चुका, राग-द्वेष से परे जा चुका, जिसका चित्त निर्मल हो चुका, वह आदमी कह सकता है— यह मेरी अन्तरात्मा की आवाज है।

प्रश्न है प्रयोग का

इसी प्रकार गीता के इस सिद्धान्त का भी दुरुपयोग हो रहा है। हर कोई कह देता है— मैं अनासक्त भाव से कर्म कर रहा हूं। यह दुहाई दे दी जाती है किन्तु अनासक्त भाव आएगा कहां से ? उसके पीछे कितनी साधना चाहिए ? जितना बड़ा सिद्धान्त है, उतनी ही बड़ी साधना चाहिए। जब तक वह साधना नहीं होती, जीवन में अनासक्ति नहीं आती और ऐसी स्थिति में काम करते हुए भी निष्काम बन जाए, अकर्म बन जाए, यह सम्भव नहीं है।

एक बार अहमदावाद में गीता-प्रेमी लोग बैठे थे, बातचीत हो रही थी। बातचीत के दौरान मैंने कहा— 'आज गीता पर बहुत प्रवचन हो रहे हैं, व्याख्याएं भी होती हैं। गीता के प्रवचनकार तो हैं पर गीता का प्रयोगकार मुझे कोई नहीं मिला। यह सिद्धान्त दे दिया कि तुम कर्म करते हुए भी अकर्म बन सकते हो। निष्काम कर्म फलाशंसा छोड़ने से हो सकता है। इतना महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त तो दे दिया किन्तु होगा कैसे ? हमने आधी बात को पकड़ लिया, आधी बात को छोड़ दिया। केवल जानने मात्र से कोई अनासक्त नहीं बन जाता। प्रयोग करना होता है पर आज प्रयोग कौन करता है ? बहुत लोग कहते जानते भी नहीं। गीता में साधना के महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं। उन पर ज्ञानेश्वरी ने काफी प्रकाश डाला है, प्रयोगों की भी सुन्दर चर्चा की है और भी कुछ व्याख्याओं में प्रयोगों की चर्चा है किन्तु साधारणतया वे सारे प्रयोग छूट गए।

यज्ञ का अर्थ

प्राण में अपान का होम करना और अपान में प्राण का होम करना यज्ञ है ? **द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ**— ये सारे यज्ञ थे। ज्ञानयज्ञ छूट गया, स्वाध्याययज्ञ छूट गया, तपोयज्ञ छूट गया। जो प्राण और अपान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में यज्ञ करना था, वह सारा छूट गया और यज्ञ का अर्थ सामने आ गया— होम। होम का अर्थ हो गया, अग्नि में घृत डाल देना, आहुति दे देना। मूल बात थी प्राण में अपान का होम करना और अपान में प्राण का होम करना, वह छूट गई।

आयुर्वेद में प्राणधारा को पांच भागों में विभक्त किया गया है। हठयोग में भी प्राण पांच भागों में विभक्त हैं— प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। ये पांच प्राण हैं, जो हमारी जीवन की यात्रा को संचालित करते हैं। जब तक प्राण में अपान का और अपान में प्राण का योग नहीं होता तब तक अनासक्ति की बात फलित नहीं हो सकती। इसे चाहे दूसरी भाषा में कहें कि जब तक कुंडलिनी का जागरण नहीं होता तब तक अनासक्ति की बात जीवन में नहीं आती। मेडिकल साइंस की भाषा में कहें तो जब तक प्राणऊर्जा का केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान में ऊर्ध्वारोहण नहीं होता, तब तक अन्तर्मुखता नहीं आती। जब तक ऊर्जा सुषुम्ना से ऊपर की ओर नहीं जाती, ग्रे मेटर को भावित नहीं किया जाता, तब तक अनासक्ति की बात जीवन में नहीं उतरती, अन्तर्मुखता का मार्ग नहीं खुलता। आदमी बहिर्मुखी बना रहता है। उसका मुंह बाहर की ओर होता है। उसे पदार्थ ही अच्छा लगता है। उसकी कामना और आसक्ति बनी रहती है। वह उस कामना और आसक्ति को छोड़ ही नहीं सकता। हम सिद्धान्त को चाहे कितना ही जान लें, कामना नहीं छूटती। कामना तब छूटती है, जब भीतर का मार्ग खुल जाता है।

कठिन है कामना को छोड़ना

जब काम-ऊर्जा ऊपर की ओर जाती है, उसका ऊर्ध्वारोहण होता है, वह ऊर्जा केन्द्र से हटकर मेरुदंड, सुषुम्ना या उससे ऊपर मस्तिष्क में पहुंच जाती है, ज्ञानकेन्द्र में कामकेन्द्र की ऊर्जा आ जाती है तब आदमी की दिशा बदलती है, आसक्ति छूटती है। इसी बात को गीता में कहा गया— प्राण में अपान का होम और अपान में प्राण का होम। इससे मनुष्य अनासक्त बन सकता है।

कठिनाई यही है कि हमने सिद्धान्त को पकड़ा और प्रयोग को छोड़ दिया। जब तक हम इस बात का समाधान नहीं करेंगे, तब तक निष्काम कर्म की दुहाई या निष्काम कर्म की चर्चा केवल वाणी का विलास मात्र होगा, वह जीवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की बात नहीं बनेगी ।

कामना को छोड़ना कठिन और जटिल काम है । यह इतनी भीतर में धंसी हुई है कि आदमी कामना को छोड़ नहीं पाता । किन्तु यदि प्रयोग की भूमि पर आएं तो बंधन अपने आप टूटने शुरू हो जाते हैं ।

केवल चाबी से काम नहीं चलता

कभी-कभी हम लोग धोखे में रह जाते हैं और मान लेते हैं कि निष्काम कर्म का इतना बड़ा सिद्धान्त हमारे पास है फिर चिन्ता क्या है ?

सेठ के घर में चोरी हो गई । सेठ ने पहरेदार से पूछा, 'रात को तुम क्या कर रहे थे ? क्या नींद ले रहे थे ?' वह बोला— 'नहीं, नींद नहीं ले रहा था । बिलकुल जाग रहा था ।' 'क्या तुम्हें चोरी का पता नहीं चला ?' पहरेदार ने कहा— 'चोर आया, यह भी मुझे पता चल गया, वह पेटी लेकर गया, यह भी मैंने देख लिया । मैंने उसे इसलिए नहीं रोका कि उस पेटी की चाबी तो आपके पास थी ।'

सचमुच कभी-कभी हम भी इस भाषा में सोचने लग जाते हैं कि चाबी तो हमारे पास है । गीता हमारे पास है, उत्तराध्ययन हमारे पास है । फिर चिन्ता की क्या बात है ? किन्तु केवल चाबी से ही काम नहीं चलता ।

हम मूल बात पर ध्यान दें, प्रयोग पर ध्यान केन्द्रित करें । अनासक्ति का सिद्धान्त जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण है उसकी साधना का प्रयोग । ग्रन्थ या पंथ का धर्म बड़ा नहीं होता । धर्म बड़ा वह होता है, जो हमारे जीवन के व्यवहार में उपलब्ध होता है ।

गीता का अनासक्ति का सिद्धान्त बहुत बड़ा है किन्तु हमारे लिए वह बड़ा तब होगा जब जीवन में अनासक्ति का सिद्धान्त उतर आएगा और यह तभी सम्भव है जब हम उसके प्रयोग अपने जीवन में करेंगे । सिद्धान्त और प्रयोग—इन दोनों बातों को साथ में समझें तो सचमुच हम एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त के साथ न्याय करेंगे और अपने साथ भी न्याय करेंगे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. अहिंसा की आस्था

सुविधावादी दृष्टिकोण और हिंसा

आज यह सुना जा रहा है कि हिंसा बहुत बढ़ रही है। कारण की खोज में जाएं और गहरे में उतरें तो पता चलेगा—सुविधावादी दृष्टिकोण के कारण हिंसा बढ़ रही है। बात तो बहुत दूर की-सी लग्रती है सुविधावाद और हिंसा का क्या सम्बन्ध है? किन्तु कभी-कभी बहुत दूर की बात बहुत निकट की बात हो जाती है।

वस्तुतः सुविधावादी मनोवृत्ति और हिंसा—इन दोनों में गहरा सम्बन्ध है। जैसे-जैसे कष्ट सहने की हमारी क्षमता घटेगी, हमें हिंसा का सहारा लेना पड़ेगा। हम सहन नहीं कर पाते। आज का पूरा वातावण ऐसा है कि कोई किसी को सहन नहीं कर पाता, कोई किसी की बात को सहन नहीं करता। असहिष्णुता ने हिंसा को काफी आगे बढ़ाया है। शारीरिक असहिष्णुता और मानसिक असहिष्णुता, कष्ट को न सहना, मानसिक भावों को न सहना—ये दोनों हिंसा के बहुत बड़े निमित्त बनते हैं।

एक व्यक्ति किसी घटना को सह नहीं सकता और वह आत्महत्या तक की स्थिति में चला जाता है। दूसरे के द्वारा थोड़ी-सी कोई अप्रिय स्थिति पैदा होती है व्यक्ति उसे सहन नहीं कर सकता, शारीरिक कष्टों को बिल्कुल सहन नहीं कर सकता। उस स्थिति में हम अहिंसा की कल्पना नहीं कर सकते।

अहिंसा और कायरता

अहिंसा एक शक्ति है, एक पराक्रम है, एक वीर्य है। भ्रमवश ऐसा मान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिया गया कि अहिंसा कायर के लिए है। यह बहुत बड़ी भ्रांति है। कायरता और अहिंसा का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। कायर आदमी को अहिंसा नहीं छूती और अहिंसा को कायर आदमी नहीं छूता। दोनों में जैसे अस्पृश्य भाव है। अहिंसा आंतरिक ऊर्जा का विकास है। परम पराक्रमी व्यक्ति ही अहिंसा की बात सोच सकता है, कर सकता है। जब दृष्टि बदलती है, पराक्रम स्वतः स्फूर्त हेता है, अहिंसा प्रकट होती है। अगर हम कष्ट-सहिष्णुता को छोड़कर अहिंसा की कल्पना करें तो वह हमारी मात्र भ्रांति ही होगी। इन दोनों को कभी पृथक् नहीं किया जा सकता। दोनों में बहुत गहरा सम्बन्ध है।

स्थिरता का निदर्शन

प्राचीन काल की घटना है। एक व्यक्ति के मन में ज्ञान की गहरी पिपासा थी। उसने बहुत ज्ञान प्राप्त किया था। फिर भी गहरी प्यास थी। उसे पता चला कि चालीस कोस की दूरी पर एक लुहार रहता है। वह बहुत बड़ा ज्ञानी है। वह उसके पास पहुंचा और अपनी प्रार्थना प्रस्तुत की कि मैं ज्ञान-प्राप्ति के लिए आया हूं। लुहार ने कहा— 'बैठो। इस धौंकनी की रस्सी को पकड़ लो।' लुहार धौंकनी धौंक रहा है,वह रस्सी पकड़े बैठा है। बैठा रहा। दिन पूरा हो गया। कुछ भी नहीं बताया। दूसरा दिन बींता, तीसरा दिन बीता, दिन ही नहीं बीते, वर्ष बीत गया। वह बार-बार कहता रहा— मैं धौंकनी चलाने के लिए नहीं आया हूं, ज्ञान की प्यास लिये हुए आया हूं। लुहार बात को सुनी-अनसुनी करता रहा। दस वर्ष बीत गए। लुहार ने एक दिन उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा— 'तुम अपने घर चले जाओ। जो पाना था, वह तुम पा चुके। तुम्हारी कसौटी हो गई। तुम पात्र हो, इतनी सहिष्णुता है कि तुम दस वर्ष का समय ज्ञान-प्राप्ति के लिए लगा सकते हो। अब कुछ भी मिलना शेष नहीं है, तुम्हें जो कुछ मिलना चाहिए था, वह मिल गया।'

यह कल्पना जैसी बात लगती है। आज किसी विद्यार्थी से अध्यापक कहे कि यह झाडू लो और दस वर्ष तक सफाई करो तो दस वर्ष तो क्या, दस घंटा भी हो जाए तो बड़ी मुश्किल लगती है। वह सोचेगा पूरा दिन निकम्मा चला गया, कुछ पढ़ाया ही नहीं। आज इतनी अस्थिरता है आदमी में।

वर्तमान दृष्टि

जब दृष्टिकोण प्रतिबद्ध हो जाता है तब व्यक्ति यह नहीं देखता कि यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्ग है या नरक । उसे तो दो पैसे चाहिए । ठीक यही बात, आज का मनुष्य 'कहां अच्छाई है और कहां बुराई है', इस बात की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं समझता । वह केवल इतना जानता है कि जहां अधिकतम सुविधा, अधिकतम भोग मिले, वहीं कल्याण है । यह एक दृष्टि बन गई । इस परिस्थिति में और क्या कल्पना की जा सकती है ? सम्भावना भी नहीं की जा सकती । इस स्थिति में संघर्ष का बढ़ना अनिवार्य है ।

अहिंसा और सुविधावाद

हम दोनों बातों को साथ लेकर न चलें । दो घोड़ों की सवारी एक साथ नहीं की जा सकती । एक पर ही चढ़ा जा सकेगा । सुविधावाद पर चले तो जो हिंसा होती है, उसे स्वीकार करें क्योंकि यह इसका निश्चित परिणाम है। हम फिर क्यों घबराएं और क्यों कष्ट का अनुभव करें ? यदि हम यह चाहते हैं कि सामाजिक जीवन में अधिकतम अहिंसा या शांति हो, उपद्रव न हो, अपराध न हो, आक्रामक मनोवृत्तियां न हों, आतंकवाद न हो तो सुविधावादी दृष्टिकोण को बदलना होगा । दोनों बातें साथ नहीं चल सकतीं । हमें एक का चुनाव करना पड़ेगा । अधर में त्रिशंकु की स्थिति बन जाती है । यह समय है चुनाव करने का । मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सुविधा न भोगें । यह कैसे कहा जा सकता है ? एक सामाजिक प्राणी, समाज में जीने वाला व्यक्ति सुविधा का अनुभव न करे, यह कैसे संभव है ? सुविधा को भोगना एक बात है और सुविधावादी दृष्टिकोण होना दूसरी बात है । जो सुविधा प्राप्त है, उसका उपयोग करने में अनर्थ जैसा मझे कुछ नहीं लगता, किन्तु जब येन-केन-प्रकारेण सुविधा ही प्राप्त करने का दृष्टिकोण बन जाता है तब समस्याएं पैदा होती हैं ।

वैज्ञानिक युग

इस वैज्ञानिक युग ने मनुष्य के लिए सुविधा के बहुत साधन जुटाए हैं। यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है । विज्ञान ने सुविधा के साधन जुटाए हैं तो साथ-साथ में उद्दण्डता, उच्छृंखलता और अपराध के साधन भी जुटाए हैं । दोनों बातें साथ-साथ चल रही हैं ।

एक व्यक्ति के पास फ्रीज है, पंखा है, वातानुकूलन है । ये सारी सुविधाएं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसे प्राप्त हैं। एक व्यक्ति के मोटरकार है, रेडियो है, टेलीविजन है, सब कुछ है तो दूसरा व्यक्ति भी ललचाएगा। वह सोचेगा कि इसको इतनी सुविधा प्राप्त है तो मुझे क्यों नहीं होनी चाहिए। एक वह जमाना था कि यदि किसी बड़े आदमी को सुविधा प्राप्त होती तो वह यह सोचता— मैं तब तक उस सुविधा का भोग नहीं करूंगा जब तक यह सर्वसुलभ न बन जाए। जो बड़ा आदमी है, जिसे सब कुछ प्राप्त है। वह उसको त्यागेगा और संयम में रहेगा तो दूसरों के मन में एक निष्ठा पैदा होगी।

संदर्भ महामात्य चाणक्य का

महामात्य चाणक्य का संदर्भ लें। मुद्राराक्षस ग्रंथ में चाणक्य का जो वर्णन किया गया है, वह हृदयवेधी और मार्मिक है—

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां
वटभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः।
शरणमपि समिद्भिः, शुष्यमाणाभिराभि-
रुपनतपटलानां दृश्यते जीर्णकुड्यम ॥

चाणक्य कुटिया में रहता था। वहां कुछ उपले पड़े थे। कुछ पत्थर पड़े थे। कुछ चीजें पड़ी थीं। इतनी साधारण कुटिया, इतने साधारण उपकरण कि जिसके बारे में सोचा ही नहीं जा सकता। वह एक बड़े साम्राज्य का प्रधानमंत्री, सर्वेसर्वा, संचालक था। वह इतनी साधारण स्थिति में रह सकता है, कल्पना नहीं की जा सकती।

अकाल का मौसम। सर्दी आई। सर्दी में गरीबों की बुरी हालत थी। जनता के द्वारा कंबल इकट्ठे किए गए। कंबलों का ढेर लगा है कुटिया के पास और महामात्य चाणक्य अपनी कुटिया में सो रहा है। चोरों का मन कंबल चुराने के लिए ललचा गया। चोरों ने सोचा— चोरी का अच्छा अवसर है। अवसर को खोना भी समझदारी की बात नहीं है। कुछ चोर आए। उन्होंने कंबल उठा लिये। फिर उन्होंने भीतर देखा। जब आदमी भीतर देखता है तब मनःस्थिति बदल जाती है। भीतर कुटिया में देखा— महामात्य चाणक्य सो रहे हैं और एक पुराना कंबल ओढ़े हुए हैं। यह देख चोरों का दिल भी बदल गया। उन्होंने सोचा— इतने सारे कंबल पड़े हैं, फिर भी महामात्य मात्र एक पराना कंबल लपेटे सो रहे हैं और हम चोरी करके ले जा रहे हैं। दिल बदल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया। सारे कंबल वहीं छोड़ कर चले गए।

ये बातें कहानी जैसी लगती है। आज हमारी समझ में नहीं आतीं कि ऐसा भी हो सकता है क्या ? आज के चिंतन में ये बातें फिट नहीं बैठती। कोई फ्रेम बनाना होगा, जिसे विचारों की खिड़की से फिट किया जा सके।

प्रश्न है अहिंसा की आस्था का

आज सांस्कृतिक मूल्यों का अन्तर आ गया और वह आया है हमारे ही दृष्टिकोण के कारण। इन सारी घटनाओं के संदर्भ में हम फिर विचार करें कि यदि सुख और शांति से जीना है तो अहिंसा की आस्था पैदा करनी होगी। अहिंसा की आस्था पैदा करनी है तो सुविधावादी व पदार्थवादी दृष्टिकोण को बदलना होगा। पदार्थ का भोग करते हुए भी, सुविधा का भोग करते हुए भी दृष्टिकोण सुविधावादी और पदार्थवादी न रहे। इस 'संकरी गली' में से हमें गुजरना होगा। यह बहुत संकरी गली है पर इसमें से गुजरे बिना हम सामाजिक मूल्यों के विकास की बात या शांतिपूर्ण जीवन जीने की बात सोच ही नहीं सकते। इसलिए हमें कष्ट सहिष्णुता या सहिष्णुता का विकास करना ही होगा।

अहिंसा : स्व-नियंत्रण

अहिंसा का मुख्य तत्त्व है— स्व-नियंत्रण, अपने आप पर नियंत्रण। अपने आवेशों पर नियंत्रण किए बिना अहिंसा की कल्पना ही नहीं की जा सकती। हमारे अनियन्त्रित आवेश ही हमारी वृत्तियों को हिंसक बना रहे हैं।

जीवन विज्ञान का प्रयोग स्व-नियंत्रण का प्रयोग है, इसके द्वारा व्यक्ति अपने आवेगों पर नियंत्रण प्राप्त करने की कला सीख सकता है। स्व-नियंत्रण का लाभ है— अपने प्रति अहिंसक होना।

मैं सोचता हूं कि हमें जागतिक अहिंसा— सार्वभौम अहिंसा की बात एक बार छोड़ देनी चाहिए। हमारा सीधा प्रयत्न विश्वशांति, विश्वबंधुता के लिए होता है। हमें पहले यह सोचना चाहिए कि अपने में शांति और अपने में बंधुता है या नहीं ? अपने भाई के साथ तो बंधुता का व्यवहार नहीं है और श्लोक दोहराया जाता है— **'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकं।'** यह कितनी बड़ी विडम्बना हो जाती है। यह बात समझ में नहीं आती। हम इस बात में बहुत विश्वास करते हैं कि अपनी अहिंसा सबसे पहले होनी चाहिए। मैं दूसरे के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रति अहिंसक बनूं, इससे पहले अपने प्रति अहिंसक बनूं, इसका विश्वास होना जरूरी है।

खतरा है अपने आप से

हम बहुत लंबी चौड़ी बातों में न उलझें। पूरे राष्ट्र की समस्या, विश्व की समस्या, मानवजाति की समस्या ये घोष बड़े अच्छे लगते हैं, कानों को प्यारे लगते हैं, एक बार दिमाग को झंकृत भी करते हैं, किन्तु बहुत अर्थवान् नहीं होते। हमारे लिए सबसे ज्यादा अर्थवान् बात यह होगी कि हम अपते प्रति अहिंसक बनें। जो व्यक्ति अपने प्रति अहिंसक है वह दूसरे के लिए अभयंकर है और अपने आप में अभयंकर है। किसी के लिए वह खतरा पैदा नहीं करता। 'अणुबम खतरा है', यह स्वीकारते हुए भी हम इस बात को न भूलें कि वह कब खतरा होगा, नहीं कहा जा सकता। और होगा तो सारे संसार को होगा फिर चिन्ता की बात ही क्या है? किन्तु खतरा तो अपने आप से हो रहा है।

महत्त्वपूर्ण है स्वनियंत्रण

अहिंसा के सिद्धान्त की चर्चा को जीवन विज्ञान के संदर्भ में एक नया मोड़ दिया गया—तुम दूसरे की बात छोड़ो, अपने प्रति अहिंसक बनो; अगर तुम अपने प्रति अहिंसक बनोगे तो इसका पहला परिणाम होगा—तुम आत्महत्या से बच जाओगे।

विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हो जाता है तो मरने की बात सोच लेता है। थोड़ा-सा पारिवारिक झंझट हो जाता है तो मरने की बात सोच लेता है। मनचाही बात नहीं होती है तो घर से भाग जाता है, आत्महत्या तक कर लेता है। यह सारा अपने पर नियंत्रण न कर सकने के कारण होता है इसीलिए स्वनियन्त्रण की बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। हम अपने पर नियंत्रण कर सकें, अपने आवेगों पर नियन्त्रण कर सकें, यह बहुत मूल्यवान् बात है। जिसने अपने आवेगों पर नियन्त्रण करना सीख लिया, वह अपने प्रति अहिंसक बन गया। जो अपने प्रति अहिंसक बन गया, वह दूसरों के प्रति भी अहिंसक बन गया। हम केवल दूसरों के प्रति उसे अहिंसक बनाएंगे तो वह बन नहीं पाएगा। क्योंकि भीतर में तो आग लग रही है, भट्ठी जल रही है और बाहर से शांति की बात करें, यह कैसे संभव है? पहले अपने भीतर की आग को शांत करना है, उस भट्ठी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को बुझाना है। वह बुझेगी तो अपने आप शांति हो जाएगी। शांति के लिए अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा।

बाधा है धारणा

अहिंसा की आस्था उत्पन्न करने में बाधाएं भी कमजोर नहीं है, बहुत प्रबल हैं। जब तक उन बाधाओं पर हम विचार नहीं करेंगे, केवल आस्था उत्पन्न करने की बात ज्यादा सार्थक नहीं बनेगी। सबसे पहली बाधा है— हमारी धारणा। हम मान बैठे हैं कि समाज की इस प्रतिकूल परिस्थिति में, प्रतिकूल वातावरण में, आर्थिक वैषम्य वाले वातावरण में, अहिंसा की बात कैसे सोची जा सकती है ? कब तक सोची जा सकती है ? और इसीलिए कुछ राजनीतिक प्रणालियों में हिंसा का समर्थन किया गया।

एक सामाजिक व्यवस्था, समतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक समानता वाली सामाजिक व्यवस्था लाने के लिए हिंसा का सहारा भी लिया जा सकता है। इस विचारधारा ने काफी लोगों को आकृष्ट भी किया है पर समय के साथ यह बात बहुत स्पष्ट होती गई कि स्व-नियन्त्रण का विकास हुए बिना, हिंसा के द्वारा नियंत्रित सामाजिक प्रणाली भी बहुत अच्छी नहीं हो सकती और उसका रूप भी सामने आया। इतने नियंत्रण में भी आदमी जैसा चाहिए वैसा नहीं बना। समस्याएं हैं उनके सामने और ऐसी टिप्पणियां देखने को मिलती हैं कि इतने नियंत्रण के बाद भी आदमी का हृदय नहीं बदला, मस्तिष्क नहीं बदला। इसका कारण यही है कि बदलने की बात है भीतर और नियंत्रण की बात है बाहर। बाहर से आदमी को बांधकर रख दें किन्तु भीतर में उसका प्रभाव नहीं होता। जैसे ही हाथ खुलते हैं वह वैसा ही करने को तैयार हो जाता है। यह कोई बदलाव की स्थिति नहीं है। यह तो एक निरोध की स्थिति है। किसी को कारावास में डाल दिया गया, वह चोरी कैसे करेगा ? किन्तु कारावास में ऐसे बहुत से लोग हैं कि जो अनेक बार अपराध कर-कर कारावास में आते हैं। उनमें परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता।

शक्तिशाली कौन ?

एक प्रश्न है परिस्थिति शक्तिशाली है या चेतना शक्तिशाली है ? यदि परिस्थिति शक्तिशाली है तो फिर उसे बदलने का कोई उपाय नहीं है। जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिस्थिति है, जैसी है, वैसी ही रहेगी। उसे हम बदल ही नहीं सकते। किन्तु चेतना बहुत शक्तिशाली है। परिस्थिति को बदलती कौन है और परिस्थिति का निर्माण कौन करता है? मनुष्य की चेतना ने ही परिस्थिति का निर्माण किया है और मनुष्य की चेतना ने ही परिस्थिति को बदला है। यह स्पष्ट है— हमारी चेतना अधिक शक्तिशाली है। प्रश्न है— हम परिवर्तन कहां से शुरू करें? चेतना से शुरू करें। चेतना में आस्था का बीज बोना है और मुझे इसमें बहुत विश्वास है। यदि एक बच्चे में सही ढंग से आस्था उत्पन्न की जाए तो वह प्रतिकूल परिस्थिति के बावजूद अच्छे मार्ग पर चल सकता है। ऐसी घटनाएं हमारे सामने बहुत बार आती है कि माता-पिता का आचरण अनैतिकतापूर्ण है। पिता व्यापार करता है अनैतिकतापूर्ण किन्तु उसका बच्चा बिल्कुल नैतिकता में निष्ठा रखने वाला है और वह पिता को साफ-साफ कहता है— 'पिताजी, दूसरों को धोखा देकर, छलनापूर्ण व्यवहार कर आप इतना धन कमाते हैं, क्या धन को साथ में ले जाएंगे? मुझे ऐसा धन नहीं चाहिए। आप किसलिए करते हैं? यह अन्तर क्यों आता है? यह चेतना का अन्तर है। प्रतिकूल परिस्थिति में भी चेतना का विकास किया जा सकता है, यह सही सत्य है।

जैसी आस्था वैसा व्यक्ति

हमारी यह प्रतिबद्धता नहीं होनी चाहिए कि जैसी परिस्थिति होगी, वैसा आदमी होगा। हमारा यह घोष होना चाहिए— जैसी आस्था होती है, वैसा आदमी होता है। जैसा संकल्प होता है वैसा आदमी बनता है। समाजशास्त्र का एक सूत्र बना दिया गया— जैसी परिस्थिति होती है, वैसा आदमी होता है। आदमी परिस्थिति की उपज है। मुझे लगता है— इस सूत्र ने बहुत भ्रांतियां पैदा कर दी हैं।

अध्यात्म का या भारतीय चिन्तन का सूत्र है कि जैसी आस्था, जैसा संकल्प होता है, वैसा आदमी होता है। अगर यह नहीं होता तो प्रतिकूल परिस्थिति में ईमानदार आदमी पैदा ही नहीं होता। उसे बदलने का प्रयत्न ही नहीं होता। एक संकल्प लेने की जरूरत है, एक आस्था पैदा करने की जरूरत है और उससे पहले हमारी धारणाओं को स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

प्रश्न है हिंसा के संस्कार का

हिंसा के निरोध में और अहिंसा के विकास में सबसे पहली बाधा है— गलत मान्यता और धारणा। दूसरी बाधा है— हिंसा का संस्कार। हिंसा के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने संस्कार हैं। हम परिवर्तन की, बदलने की बात सोचते हैं किन्तु इस बात से अनभिज्ञ नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने कर्मजनित संस्कार होते हैं। यह कोई जादू का खेल नहीं है कि थोड़ा-सा कुछ किया और सबके सब बदल गए। ऐसा कोई जादू का डंडा नहीं है कि घुमाया और सब कुछ बदल गया। हिंसा के अपने-अपने संस्कार हैं। एक व्यक्ति में हिंसा के तीव्र संस्कार होते हैं, दूसरे व्यक्ति में हिंसा के संस्कार कम होते हैं। संस्कारों में तारतम्य है और इतना तारतम्य है कि हम सोच ही नहीं सकते। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी-अपनी योग्यता का तारतम्य है। हम ऐसा तो नहीं कर सकते कि एक राजकीय अधिकारी या राष्ट्रपति का अध्यादेश निकाला और वह लागू कर दिया। हमें इस सचाई को मानकर चलना पड़ेगा कि यह एक वैयक्तिक विशेषता है। अपने-अपने संस्कार हैं इसलिए सबसे हम यह आशा नहीं कर सकते कि सबमें यह आस्था उत्पन्न हो जाएगी। फिर भी हम निराश न हों। हमारी अपनी आस्था यह होनी चाहिए कि प्रयोग के द्वारा, प्रयत्न के द्वारा, अभ्यास के द्वारा— संस्कार को भी परिष्कृत किया जा सकता है।

आस्था के बीज बोएं

हम सर्वथा परतंत्र नहीं है। संस्कार हैं, यह हम स्वीकार करें और संस्कार हमें संचलित कर रहा है, इसे भी हम अस्वीकार नहीं करें किन्तु हम यह भी स्वीकार करें— हम केवल परतंत्र नहीं हैं, संस्कार की कठपुतली नहीं है। हम प्रयत्न के द्वारा, अभ्यास के द्वारा संस्कार को बदल सकते हैं, उसमें परिष्कार ला सकते हैं। यह क्षमता भी हमारे भीतर है। अपेक्षा है— एक नये संकल्प व नयी आस्था का निर्माण हो और वह बचपन से हो, शिक्षा के क्षेत्र में हो, धर्म के क्षेत्र में हो और अध्यापक या धर्मगुरु के द्वारा हो। मुझे लगता है कि आज दो ही स्थान ऐसे हैं जहां से कुछ आशा की जा सकती है। एक है— धर्म का क्षेत्र और दूसरा है शिक्षा का क्षेत्र। इसके अतिरिक्त तीसरा क्षेत्र कोई दिखाई नहीं दे रहा है। किन्तु धर्म के क्षेत्र से भी आज अधिक मूल्यवान् बन गया है शिक्षा का क्षेत्र और इस दृष्टि से आज का विद्यार्थी जितना शिक्षा से जुड़ा हुआ रहता है उतना धर्म से नहीं। पहले घर के वातावरण में माता-पिता बच्चे को धर्म का पाठ पढ़ाते थे पर आज वह भी छूट गया है। इसलिए यह चिन्तन किया गया शिक्षा के क्षेत्र में ही यदि आस्था के कुछ बीज बोने की बात सोची जाए तो शायद सामाजिक मूल्यों के विकास की बात आगे बढ़ सकती है, उसका सुपरिणाम आ सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. अहिंसा का विकास

हम जिसे चाहते हैं और जिसे नहीं चाहते हैं— ये दोनों बातें दुनिया में चल रही हैं। अहिंसा को चाहते हैं, उसका विकास कम हो रहा है। हिंसा को नहीं चाहते, उसका विकास अधिक हो रहा है। हमारी चाह पर सब बातें निर्भर नहीं है।

अहिंसा : सात विघ्न

आज हिंसा का विकास हो रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अहिंसा के विकास में विघ्न उपस्थित हो रहे हैं। विघ्न सात हैं—

१. हिंसा का संस्कार
२. कर्म का संस्कार या जीन
३. परिस्थिति या वातावरण
४. शरीरगत रसायन
५. अनास्था
६. अप्रयत्न
७. प्रशिक्षण और अनुसंधान की कमी।

जीन या कर्म संस्कार

पहला विघ्न है— हिंसा का संस्कार। इसने अहिंसा की आस्था को ही प्रभावित कर दिया है। दूसरा विघ्न है, आज जो माना जाता है, वह है 'जीन'। जीनेटिक इंजिनियरिंग में मानव व्यवहार के लिए जीन को उत्तरदायी बतलाया गया। जिस प्रकार का जीन होता है, जैसा संस्कार-सूत्र होता है, आदमी वैसा ही व्यवहार करता है। व्यवहार का उत्तरदायित्व जीन पर आरोपित किया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें तो कर्म-शास्त्रीय भाषा में कर्म का संस्कार और विज्ञान की भाषा में या आनुवंशिकी भाषा में 'जीन'— ये दोनों बहुत निकट आ जाते हैं। इन दोनों को परिवर्तित करना कठिन माना जाता है। कर्म-संस्कार को बदलना और जीन को बदलना सरल काम नहीं है।

एक व्यक्ति बहुत अच्छा व्यवहार करता है, दूसरा बुरा व्यवहार करता है। तीसरा उससे अधिक बुरा व्यवहार करता है और चौथा उससे भी अधिक बुरा व्यवहार करता है। यह अन्तर इसीलिए आता है कि सबके कर्म-संस्कार भिन्न-भिन्न हैं या आनुवंशिकी भाषा में सबके जीन भिन्न-भिन्न हैं। इसीलिए सबका व्यवहार एक जैसा नहीं होता। इसे बदलना बहुत प्रयत्न-साध्य है, सरल नहीं है। जो व्यक्ति साधना के क्षेत्र में बहुत प्रयत्नशील होता है, वही इन्हें बदल सकता है। बदलना संभव है पर उतना परम पुरुषार्थ करना हर व्यक्ति के वश की बात नहीं है और हर कोई व्यक्ति उतना पुरुषार्थ करना भी नहीं चाहता।

वातावरण

अहिंसा के विकास का तीसरा विघ्न है— परिस्थिति या वातावरण। यह विघ्न कर्म-संस्कार या जीन जैसा प्रबल नहीं है। इन दो का पार पाना कठिनतर कार्य है। हम इनकी सीमा पार कर चुके हैं। अब दूसरे सारे जो विघ्न हैं वे बदले जा सकते हैं और उन्हें बदलना सरल कार्य है। आज परिस्थिति है हिंसा की, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आदमी जिस दुनिया में जीता है उसमें हिंसा का वातावरण भी है, हिंसा की परिस्थितियां भी हैं। परिस्थितियां हिंसा के लिए उत्तेजना पैदा कर रही हैं। एक व्यक्ति शांत है किन्तु दूसरा व्यक्ति भड़काने वाली प्रवृत्तियां करता है तो जो शांत है, वह भी हिंसोन्मुख बन जाता है। ऐसा बहुत बार होता है। पड़ोसी यदि दुष्ट स्वभाव वाला है, हिंसा में विश्वास करने वाला है और वह अवांछनीय प्रवृत्ति करता है तो जो अच्छा व्यक्ति है, अच्छे स्वभाव वाला है, उसमें भी उत्तेजना के बीज अंकुरित हो जाते हैं।

प्रतिक्रियात्मक हिंसा

एक पड़ोसी ने अपने घर से कूड़ा-कचरा निकाला और पास वाले घर के सामने डाल दिया। सामने वाले व्यक्ति ने कहा— 'भाई ! ऐसा क्यों करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो ? ऐसा करना अच्छा नहीं है । थोड़ा आगे जाओ और कचरा वहां डालो, जहां किसी का मकान न हो । तुम अपने घर से निकले और मेरे घर के सामने कचरा डाल गए, इससे क्या लाभ हुआ ?' उसने कहा— 'जहां स्थान मिला, वहां डाल दिया । मैं क्या कर सकता हूं ?' एकदम रूखा उत्तर दिया । उसे एक बार समझाया, दो बार समझाया, तीन बार समझाया । वह नहीं माना । उस स्थिति में प्रतिक्रिया पैदा होना या प्रतिक्रियात्मक हिंसा का भाव पैदा होना स्वाभाविक है ।

एक है क्रियात्मक हिंसा और दूसरी है प्रतिक्रियात्मक हिंसा । प्रतिक्रिया का सिद्धांत है— ईंट का जवाब पत्थर से दो । यह क्रियात्मक सिद्धांत नहीं है, प्रतिक्रियात्मक सिद्धांत है । जब व्यक्ति के मन में प्रतिक्रिया पैदा हो जाती है तब वह इस प्रकर के सिद्धांत का निर्माण करता है ।

उस व्यक्ति के मन में भी प्रतिक्रिया पैदा हो गई । उसने सोचा, यह ऐसे नहीं मानेगा । उसने भी कूड़े-करकट के साथ अपने घर की सारी गंदगी उसके घर के सामने डाल दी । यह हिंसा के प्रति हिंसा है । यह है परिस्थिति से उत्पन्न विवशताजनित हिंसा, प्रतिक्रियात्मक हिंसा ।

हिंसा : प्रति हिंसा

परिस्थिति से पैदा होनेवाली प्रतिक्रिया अहिंसा के सामने बहुत बड़ा विघ्न है । सामाजिक जीवन में इस प्रकार की स्थितियां बहुत बनती हैं । साम्यवाद की कल्पना या क्रियान्विति सामने आई, तब नक्सली बने । अन्यान्य भी जो रक्त-क्रांतियां या हिंसक घटनाएं हुईं, उन सबके पीछे प्रतिक्रियात्मक स्थिति हो रही है । सामाजिक जीवन में जहां इतनी विषमता होती है कि एक व्यक्ति बहुत शानदार ढंग से जीवन जीता है, फिजूलखर्ची करता है, अनावश्यक भोग करता है और धन का अतिरिक्त ढेर लगा लेता है और दूसरे व्यक्ति को खाने को रोटी नहीं मिलती, उस स्थिति में प्रतिक्रियात्मक हिंसा को बल मिलता है । यह बहुत स्वाभाविक बात है । जहां भी विश्व के किसी भी कोने में, किसी भी अंचल में, इस प्रकार की घटनाएं घटित हुई हैं, उन सबकी पृष्ठभूमि में प्रतिक्रियात्मक हिंसा काम करती रही है ।

एक व्यक्ति के साथ बहुत अन्याय हुआ । उसकी कहीं सुनवाई नहीं हुई और वह डाकू बन गया । इतना क्रूर डाकू बना कि उसने पचासों व्यक्तियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को मौत के घाट उतार दिया, न जाने कितनी डकैतियां कीं। डाकू बनने के पीछे भी बहुत सारी प्रतिक्रियात्मक परिस्थितयां होती हैं और ऐसी घटनाएं सामने आती भी हैं। ये सामाजिक परिस्थितियां अहिंसा के विकास में बहुत बाधक हैं। यदि परिस्थिति, वातावरण और व्यवस्था समतापूर्ण नहीं होती है, ज्यादा असंतुलित होती है तो हिंसा को बहुत बल मिलता है।

शारीरिक कारण

अहिंसा के विकास में चौथा विघ्न है—शरीरगत रसायन। प्रश्न परिस्थिति की जटिलता में हिंसा को उत्तेजना मिलती है किन्तु ऐसे लोग भी हिंसा करते हैं जिनके सामने कोई परिस्थिति नहीं, कोई हिंसा नहीं, कोई वातावरण नहीं, फिर भी हिंसा में बहुत रस लेते हैं। ऐसा क्यों होता है? इस पर हम चिंतन करें। कोई भी बात एकांगी दृष्टि से सही नहीं है और किसी घटना का एक ही कारण नहीं होता। हिंसा की जितनी घटनाएं हैं, उनका एक ही कारण नहीं है, अनेक कारण हैं। इसीलिए विश्लेषण करते समय हमें बहुत सूक्ष्मता से ध्यान देना होता है कि किसके पीछे क्या कारण रहा है?

हिंसा का एक कारण तंत्रिका के रसायन का असंतुलन भी है। हमारी तंत्रिकाओं में पैदा होने वाले रसायन असंतुलित होते हैं, तो व्यक्ति हिंसक बन जाता है, आक्रामक बन जाता है। आक्रामक वृत्ति में शरीर की क्रिया का भी बहुत बड़ा भाग है।

असंतुलित रसायन

एक संपन्न व्यक्ति है। उसके कोई कमी नहीं, कोई असंतोष नहीं, सर्वथा सुखी, फिर भी उसमें हिंसा की वृत्ति जाग जाती है। एक व्यक्ति न चोर है, न डकैत है, कुछ भी नहीं। वह आदमी को मारने में रस लेता है। आदमी मिलता है और वह उसकी कनपटी को दबाकर मार डालता है। यह घटित घटना है। उसे न कोई लेना है, न देना है। वह न धन लूटता है और न कुछ। उसका केवल इतना ही नशा है कि आदमी को मार डालना।

ऐसा क्यों होता है ? तंत्रिका के रसायन असंतुलित बन जाते हैं और उस असंतुलन के कारण हिंसा में आदमी का रस पैदा हो जाता है। यह असंतुलन शरीरगत कारण है। आज शारीरिक तत्त्वों के कारण भी हिंसा को बल मिल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहा है। इसका सम्बन्ध हमारे भोजन से भी है और पैदा होने वाले रसायनों से भी है।

आक्रामकता का कारण

वर्तमान में फास्फोरस की मात्रा शरीर में ज्यादा जा रही है और मेग्नेशियन की मात्रा कम हो रही है। यह भी आक्रमक-वृत्ति का एक कारण है। शीशे की, तांबे की, जस्ते की मात्रा शरीर में ज्यादा जाती है, व्यक्ति को आक्रामक बना देती है। आज के जो बर्तन हैं, वे देखने में अच्छे लगते हैं। लोग उन बर्तनों में खाना पकाते हैं, दूध गर्म करते हैं। पर वे नहीं जानते कि जस्ते से पुते हुए वर्तनों की चीजें पेट में जाकर कितना नुकसान करती हैं। आज किसी से कहा जाए—हांडी में दूध गर्म करो, हांडी में खिचड़ी पकाओ। लोग कहेंगे—किस शताब्दी की बात है। यह तो पिछड़ेपन की बात है। आज की शिष्टता में, सभ्यता में ऐसी चकाचौंध चाहिए, जिसको देखते ही मन ललचा जाए। पर इस बात का पता नहीं है कि हांडी में गर्म किया हुआ दूध, खिचड़ी, कढ़ी बिल्कुल नुकसान नहीं करती और इन बर्तनों में पकाये हुए खाद्य या पेय पदार्थ पेट में जाकर बहुत नुकसान करते हैं, भड़काने वाली वृत्तियां पैदा करते है। कलह की वृत्ति, संघर्ष की वृत्ति, उत्तेजना की वृत्ति और असहिष्णुता की वृत्ति जो बनी है, उसके पीछे यह भी एक कारण है।

स्वाद में भी अन्तर रहेगा। कडाही में गर्म किए दूध का जो स्वाद होगा वह कलई चढ़े बर्तन में गर्म किए दूध में कभी नहीं होगा।

हिंसा के निमित

दैनिक उपयोग में आने वाले अनेक पदार्थ हमारी वृत्तियों को प्रभावित करते हैं। किन्तु सभ्यता या सुविधा के विकास के लिए स्थितियां इतनी बदल गईं और मांग इतनी बढ़ गई कि इन स्थितियों में पीछे लौट आना सम्भव नहीं लगता। आदमी जानते हुए भी इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं है कि हम लौट जाएं और फिर से मिट्टी के बर्तनों में रसोई पकाएं। यह मात्र कल्पना जैसी बात होगी। किन्तु फिर भी हमें इस सचाई को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि ये परिस्थितियां भी हमारी बदली हुई भावनाओं के कारण पैदा हुई हैं।

समग्र दृष्टि से देखें तो शरीर की क्रिया शरीर में पैदा हुए रसायन और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर में जाने वाली धातुएं भी अपना परिणाम जताती हैं और हिंसा का निमित्त बनती हैं। यदि हमारे नाड़ीतन्त्र का दायां भाग अधिक सक्रिय होता है तो उद्दण्डता और उच्छृंखला की वृत्ति पैदा होती है। इस प्रकार शारीरिक कारण भी अहिंसा के विकास में बाधा पहुंचा रहे हैं।

अनास्था

अहिंसा के विकास का पांचवां विघ्न है—अनास्था। हमारी अहिंसा में आस्था नहीं है। किसी भी व्यक्ति से पूछें, वह कहेगा, अहिंसा से कोई काम नहीं चल सकता। डंडे से ही काम चलेगा। यह मान लिया गया कि अणु अस्त्रों का विकास शक्ति-संतुलन के लिए, विश्व-शांति के लिए है। लोग खतरा महसूस करते हैं कि अणु अस्त्रों से विश्व का विनाश होगा किन्तु जिन राष्ट्रों के पास अणु अस्त्र हैं वे इसका समाधान देते हुए कहते हैं कि अणु अस्त्रों का अम्बार शक्ति-संतुलन के लिए है। अगर एक राष्ट्र के पास अणु अस्त्र है और दूसरे के पास नहीं है तो जिसके पास है, वह सारे संसार को नष्ट कर सकता है। किन्तु जब दो के पास होता है तो कोई यह साहस नहीं कर सकता कि एक-दूसरे पर आक्रमण करें। ऐसा पागलपन करने में उसे संकोच होगा। यह सारा शक्ति-संतुलन के लिए है।

वास्तव में आदमी में अहिंसा के प्रति कोई आस्था नहीं है। उसकी आस्था है दंड के प्रति, शस्त्र के प्रति। यह अनास्था भी अहिंसा के विकास में बहुत बड़ा विघ्न है। आदमी ने कृत्रिम मान्यताएं बना लीं और उन्हीं के कारण वह अहिंसा की बात सोच ही नहीं सकता। उसका बहुत सारा जीवन कृत्रिम मान्यताओं के आधार पर ही चलता हैं।

यथार्थता : कृत्रिमता

यदि कभी हम एकांत के क्षणों में विचार करें तो हमें स्वयं पता चलेगा कि यथार्थ कितना है और कृत्रिमता कितनी है। बिना गहरे में उतरे इसका पता नहीं चल सकता, भ्रम बना रहता है। उस भ्रम का निरसन तभी हो सकता है जब सचाई सामने आए।

एक व्यक्ति विदेश-यात्रा पर जा रहा था। अधिकारी ने कहा—तुम्हारा पासपोर्ट नकली है। उसने पूछा—कैसे? अधिकारी बोला—पासपोर्ट में लगे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फोटो में तुम्हारा सिर गंजा है, और अभी तुम्हारे सिर पर काफी बाल हैं। इसलिए यह पासपोर्ट नकली है। वह बोला—महाशय, फोटो नकली नहीं है, मेरे बाल नकली हैं।

आज मूल स्थिति को पकड़ने में बड़ी समस्या हो रही है। अधिकारी भी भ्रम में आ जाते हैं। हमने भी अपने जीवन के आस-पास इतने कृत्रिम सिद्धांतों का एक जाल बिछा रखा है, एक ऐसा ताना- बाना बुन रखा है कि सचाई को समझना बहुत कठिन हो रहा है।

अप्रयत्न

अहिंसा के विकास का छठा विघ्न है—अप्रयत्न। अहिंसा के विकास की दिशा में हमारा कोई प्रयत्न ही नहीं है। आस्था बने, तब प्रयत्न हो सकता है। आस्था ही नहीं है तो प्रयत्न भी नहीं होगा। हिंसा के लिए कितना प्रयत्न हो रहा है? सारे संसार में शस्त्रों पर कितना खर्च हो रहा है। यदि शस्त्रों पर होने वाला खर्च मानव-कल्याण पर होने लगे तो कोई भी आदमी भूखा नहीं रहे। सारी गरीबी समाप्त हो जाए। फिर न स्वास्थ्य की चिन्ता, न रोटी की चिन्ता, न मकान की चिन्ता और न कपड़े की चिन्ता। यदि एक पंचवर्षीय योजना की राशि, जो शस्त्रों पर खर्च होती है, उतनी राशि मानव-कल्याण में लगे, गरीबों की समस्या को सुलझाने में लगे तो पांच वर्ष में शायद संसार गरीबी से मुक्त हो जाए। हिंसा के अभ्यास का कितना प्रयत्न हो रहा है। पूर्वाभ्यास होता है, फौजियों की ट्रेनिंग रोज चलती रहती है। एक दृष्टि से ये सारे प्रयत्न हिंसा के लिए हैं।

अतीन्द्रिय अस्त्रों का विकास

अनेक वैज्ञानिक नये-नये शस्त्रों की खोज में लगे हुए हैं। हिंसा के नए तरीकों को खोज रहे हैं। अणु अस्त्र भी बहुत पीछे रह गए हैं। अतीन्द्रिय शक्ति के अस्त्रों का विकास हो रहा है। अस्त्रों के क्षेत्र में बड़ी विचित्र स्थिति आ गई है। हम सुनते हैं, प्राचीन काल में एक ऐसी विद्या का प्रयोग किया जाता, जिससे शत्रु की सारी सेना नींद में सो जाती। यह प्राचीन कहानी है किन्तु आज के वैज्ञानिकों ने भी ऐसे अस्त्र खोज निकाले हैं, जिनके प्रयोग से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शत्रु की सेना कर्त्तव्य-विमूढ़ बन जाती है, वह कुछ भी नहीं कर सकती, निकम्मी हो जाती है। एक पक्षीय जो करना होगा, वह हो जाएगा। यह भी स्थिति आविष्कृत हो गई है कि किसी को रणक्षेत्र में जाने की जरूरत नहीं। प्रयोगशाला में बैठा-बैठा वैज्ञानिक सब कुछ घटित कर देता है। आज अतीन्द्रिय अस्त्रों की होड़ भी शुरू हो गई है। इसमें अमरीका, रूस आदि देशों ने काफी विकास कर लिया है। अन्तरिक्ष युद्ध की स्थिति भी बन गई है। इतना तीव्र और बहुआयामी प्रयत्न हो रहा है हिंसा के क्षेत्र में। अहिंसा के क्षेत्र में कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है। अहिंसा को मानने वाले तो स्वयं लड़ रहे हैं। धर्म का क्षेत्र अहिंसा का क्षेत्र है पर उसे भी आज अहिंसा का क्षेत्र नहीं कहा जा सकता। उसमें आज इतनी साम्प्रदायिक कसाकसी, तनातनी है कि वह स्वयं युद्ध के अखाड़े जैसा बन गया है। आज अहिंसा स्वयं दयनीय स्थिति में है। फिर भी उसके लिए कोई प्रयत्न ही नहीं हो रहा है। उसके प्रति न आस्था है और न उसके विकास का प्रयत्न हो रहा है।

अप्रयोगात्मक भूमिका

अहिंसा के विकास का सातवां विघ्न है— अप्रयोगात्मक भूमिका। आज अहिंसा का कोई प्रयोग नहीं हो रहा है। प्रयोग हो तो किसी भी चीज का विकास हो सकता है। जब तक नया अनुसंधान नहीं होता, नयी खोज नहीं होती, उसका कोई प्रयोग और प्रशिक्षण नहीं होता तब तक किसी चीज का विकास नहीं हो सकता।

अहिंसा के लिए न कोई अनुसंधान हो रहा है, न कोई नया प्रयोग हो रहा है और न कोई प्रशिक्षण दिया जा रहा है। हमने कहीं नहीं देखा कि सौ आदमी अहिंसा की ट्रेनिंग ले रहे हों अथवा पूरे हिन्दुस्तान में अहिंसा के प्रशिक्षण का कोई केन्द्र हो।

प्रयोग और प्रशिक्षण के बिना, अनुसंधान या रिसर्च के बिना किसी भी चीज का विकास हो नहीं सकता। हमारे पास ज्यादा से ज्यादा है तो अहिंसा का सिद्धांत है या कुछ महापुरुषों के जीवन की घटनाएं और जीवनियां हैं। उनसे कभी-कभी थोड़ी प्रेरणा मिलती है, मस्तिष्क झंकृत होता है और मन में यह भाव जागता है कि अहिंसा अच्छी है या उन-उन महापुरुषों ने इस प्रकार का अहिंसा का जीवन जिया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेरक घटना

पंजाब के राजा रणजीतसिंह जा रहे थे। अचानक एक पत्थर आया और महाराजा के सिर पर लगा। चारों ओर छानबीन शुरू हुई कि किसने पत्थर फेंका? पता लगाते-लगाते एक पेड़ के नीचे पहुंचे, जहां बुढ़िया खड़ी थी। वे उसे पकड़ लाए और महाराज के पास लाकर बोले— 'महाराज! यही है जिसने आपके सिर पर पत्थर की चोट की है। इसी ने पत्थर फेंका है और कोई नहीं मिला।' बुढ़िया बेचारी कांपने लगी। बड़ी विचित्र स्थिति थी। महाराजा ने उससे पूछा— 'तुमने पत्थर फेंका?' उसने कांपते स्वर में कहा—हां महाराज! क्यों फेंका—महाराज ने पूछा? वह बोली—'बड़ी गरीब हूं। दो दिन हो गए, खाने को कुछ मिला नहीं। ऐसी गरीबी में जी रही हूं। छोटा लड़का है। मैंने सोचा—कुछ तो लाकर लड़के को दूं। पेड़ के नीचे खड़ी थी। फल तोड़ने के लिए पत्थर फेंका, अचानक योग मिल गया कि वह पत्थर उधर नहीं गया, इधर आ गया और आपके सिर पर चोट लग गई। यह सही घटना है, अब आप जो चाहें सो करें।'

महाराजा ने तत्काल अपने सैनिक अधिकारियों से कहा—'इसे कुछ अशर्फियां दो और तत्काल छोड़ दो।' सब दंग रह गए। यह कैसा दण्ड? यह भी कोई दंड होता है? इसे तो फांसी की सजा होनी चाहिए। महाराजा के सिर पर चोट लगाने वाले को यह इनाम? वे बोले नहीं। महाराजा ने कहा— 'तुम नहीं जानते, पेड़ पर पत्थर फेंकने से पेड़ मीठा फल देता है। जब पेड़ भी मीठा फल देता है तो मैं क्या कड़वा फल दूंगा? यह कभी नहीं हो सकता। इसे इनाम देकर मुक्त कर दो।'

यह कितनी प्रेरक घटना है। जिसका दिमाग शान्त और संतुलित होता है वह किस प्रकार का निर्णय लेता है और किस प्रकार अहिंसा का विकास करता है। अगर दिमाग असंतुलित होता तो सीधा दण्ड दिया जाता— जाओ, फांसी पर लटका दो, मार डालो। संतुलित दिमाग वाले का निर्णय अहिंसा से ओत-प्रोत होता है। ऐसी घटनाएं अहिंसा के लिए आदमी को प्रेरित करती है।

अहिंसा के सिद्धान्त : वर्तमान मानस

अहिंसा के सिद्धान्त अहिंसा के लिए प्रेरित करते हैं। अहिंसा का सिद्धान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है जो तुम स्वयं नहीं चाहते, दूसरों के लिए वैसा मत करो । तुम्हें सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय है तो दूसरों को भी तुम दुःख मत दो, कष्ट मत दो, मत सताओ । यह सिद्धान्त अहिंसा के लिए प्रेरित करता है । ये सिद्धान्त और ये घटनाएं हमारे मस्तिष्क को झंकृत करती हैं, हमें अच्छी लगती हैं, किन्तु हमारा बहुत साथ नहीं । एक बार सुना, मन में प्रेरणा जागी और सामने परिस्थिति आई, घुटने टेक दिए, अहिंसा को विस्मृत कर बैठे । समस्या यह है कि आदमी केवल श्रवण-प्रिय है । प्राचीन भाषा में श्रवण और आज की भाषा में पठन— दोनों एक ही बात है । पुराने जमाने में पढ़ने की स्थिति नहीं थी, कोरा सुना जाता था गुरु कहता और शिष्य सुन लेता । लिखना नहीं होता था, इसलिए पढ़ने की बात नहीं थी । पुराने जमाने की सुनना और आज का पढ़ना—दोनों सम हैं ।

रचनात्मक परिवर्तन आए

श्रवण की अगली भूमिका है— मनन । श्रवण और पठन— दोनों स्थितियों में जितना श्रवण होता है, उसका बीस प्रतिशत भी मनन नहीं होता, दस प्रतिशत भी नहीं होता । तीसरी भूमिका है निदिध्यासन । उससे तो आज मुक्ति ही मिल गई है । इन तीनों का योग ही यथार्थ स्थिति तक पहुंचा सकता है । जीवन विज्ञान की प्रक्रिया में इस फार्मूले पर ध्यान दिया गया कि अच्छे सिद्धान्त को जानना, उस पर मनन करना यानी उसकी अनुप्रेक्षा करना और उसका अनुशीलन करना, निदिध्यासन करना, ये तीनों बातें होती हैं तब किसी नयी आस्था का निर्माण होता है । केवल इस स्थिति को बदलना है । ज्ञान और आचरण की जो दूरी है वह तब तक नहीं मिट सकती जब तक ये तीनों बातें नहीं आतीं। इन तीनों का समन्वय हुए बिना वह परिवर्तन नहीं किया जा सकता । हम खामी तो बहुत निकाल सकते हैं । शिक्षा प्रणाली के बारे में अनेक खामियां निकाली गईं । आज से नहीं, स्वतंत्र भारत के आदिकाल से ही यह कथन चल रहा है कि हमारी शिक्षा प्रणाली अच्छी नहीं है किन्तु उसमें क्या सुधार होना चाहिए, क्या रचनात्मक परिवर्तन होना चाहिए, यह बहुत कम सामने आया ।

सृजन का सूत्र सीखें

एक चित्रकार ने बाजार में अपना चित्र टांगकर नीचे लिख दिया— इसे देखें और जहां-जहां कमी हो, वहां चिह्न लगा दें । सायंकाल चित्रकर ने देखा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूरा चित्र चिह्नों से भर गया है। उसने सोचा, बड़ा अनर्थ हो गया।

दूसरे दिन उसने एक चित्र फिर टांगा, लिख दिया जहां कोई खामी है, सुधार दें। सांझ को जाकर देखा तो चित्र वैसा का वैसा मिला, कोई परिवर्तन नहीं था उसमें।

हम कमियां बहुत निकाल सकते हैं, त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान जा सकता है, बिन्दु लगा सकते हैं, किन्तु जहां सुधारने वाली बात आती है ? वहां कुछ भी नहीं होता। हम केवल खामी की बात न पकड़े, कुछ सृजन करें।

परिवर्तन की प्रक्रिया

दो शब्द हैं— थियोरेटिकल और प्रेक्टिकल। सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक। प्रत्येक क्षेत्र में ये दोनों अपेक्षित हैं। धर्म का क्षेत्र हो या शिक्षा का क्षेत्र, हम सैद्धान्तिक बात को भी समझें और उसका प्रयोगात्मक पक्ष भी समझें। क्या आदत का बदलना और नयी आस्था का पैदा करना इसका अपवाद हो सकता है ? आस्था को पैदा करने में भी हमें दोनों बातों का सहारा लेना पड़ेगा। पहला पक्ष है सैद्धान्तिक, जिसमें दो बातें आती हैं— श्रवण और मनन। सिद्धान्त को जानना और उस पर मनन करना, उसकी अनुप्रेक्षा करना, उसका अनुचिन्तन करना।

दूसरी बात है— प्रयोगात्मक, निदिध्यासन, अभ्यास करना। सुनो, ज्ञान करो, विवेक करो और प्रत्याख्यान करो। जो छोड़ने योग्य है, उसका प्रत्याख्यान करो और जो उपादेय है, उसका अभ्यास करो। यह एक पूरी प्रक्रिया है— परिवर्तन की। इस प्रक्रिया को अपनाए बिना आस्था को बदलने की बात कभी संभव नहीं बनेगी।

स्वस्थ समाज रचना : महत्त्वपूर्ण आधार

अहिंसा का विकास स्वस्थ समाज की रचना का एक महत्त्वपूर्ण आधार है। उसका महत्त्वपूर्ण प्रयोग है— श्रवण, मनन और निदिध्यासन। जब तक शिक्षा के साथ या धर्म की आराधना के साथ ज्ञान और क्रिया— दोनों का योग नहीं होगा तब तक नहीं लगता कि इस समस्या का समाधान हो जाए। इस योग के बिना न तो धार्मिक अच्छा धार्मिक बन सकता है और न विद्यार्थी अच्छा विद्यार्थी बन सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज के विकास के लिए, नैतिकता के विकास के लिए दो बातें जरूरी हैं— ज्ञान भी हो और अच्छा मानवीय व्यवहार भी हो। मानव मानव के प्रति सद्व्यवहार करे, बुरा व्यवहार न करे। यह तभी संभव है जबकि यह पूरा सिद्धान्त— श्रवण, मनन और निदिध्यासन चले और इनका अभ्यास भी हो। आज सिद्धान्त की बात तो चल रही है पर अभ्यास वाली बात नहीं चल रही है।

जीवन विज्ञान का मूल सिद्धांत है कि धर्म और विद्या— दोनों क्षेत्रों में सिद्धान्त और प्रयोग का योग होना चाहिए। इस योग का उपयोग कर हम अहिंसा के विकास को नई दिशा दे सकते हैं, नया आयाम और गति दे सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आरोग्य मन का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. शरीर, मन और मनोबल

शरीर बड़ा है या मन ?

मैंने एक विद्यार्थी से पूछा— 'बताओ, शरीर बड़ा है या मन ? दोनों में बड़ा कौन है ?'

विद्यार्थी उलझन में फंस गया। जहां दो में से एक का चुनाव करना होता है, वहां समस्या खड़ी हो जाती है। विद्यार्थी मौन रहा। दो क्षण सोचने के पश्चात् वह बोला— 'बड़ा तो मन है।'

मैंने कहा— 'देख ! मन शरीर में रहता है। छोटी चीज बड़ी चीज में समाती है। मन शरीर में समा जाता है, इसलिए मन छोटा और शरीर बड़ा होना चाहिए। शरीर नहीं होगा तो मन रहेगा कहां ?'

उसने कहा— 'यह बात तो ठीक है।'

मैंने कहा— 'फिर बड़ा कौन हुआ ?'

उसने कहा— 'शरीर ही बड़ा हुआ।'

मैंने उसको समझाते हुए कहा— 'शरीर भी बड़ा है और मन भी बड़ा है। दोनों बड़े हैं। छोटा कोई नहीं है। जहां प्रश्न है अस्तित्व का, वहां शरीर बड़ा है। यदि वह नहीं होगा तो मन भी नहीं होगा, कुछ भी नहीं होगा। जहां प्रश्न है सफलता का, वहां मन बड़ा है। शरीर है, पर मन ठीक नहीं है तो सफलता नहीं मिलेगी। अनेक व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनका शरीर बलिष्ठ होता है, पर मन बहुत कमजोर होता है। जो व्यक्ति मन से दुर्बल है, उसका बलिष्ठ शरीर भी क्या काम आएगा ? जो मानसिक दृष्टि से शक्तिशाली होता है, वही जीवन में सफल होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सफलता : घटक तत्त्व

प्रत्येक मनुष्य सफल जीवन जीना चाहता है, विफलता का जीवन जीना कोई नहीं चाहता। सफलता का जीवन मूल्यवान होता है। पशु के जीने में और आदमी के जीने में अन्तर ही क्या है ? अन्तर है सफलता का। मनुष्य सफलता को प्राप्त करता हुआ इतना आगे बढ़ जाता है कि वह अपनी अलग पहचान बना लेता है। पशु यह नहीं कर पाता। हजारों वर्ष बीत गए। किसी भी पशु ने अपनी अलग पहचान नहीं बनाई। परन्तु मनुष्य कितना आगे बढ़ गया। आज भी वह निरन्तर आगे कदम बढ़ाता जा रहा है। वह नई-नई सफलताओं को प्राप्त कर विकास के शिखर को छू रहा है।

प्रश्न होता है, सफलता के घटक तत्त्व क्या हैं ? सफलता कब मिलती है ? सफलता के दो घटक तत्त्व हैं—शरीर-बल और मनोबल। जब इन दोनों की संयुति होती है तब व्यक्ति जीवन में सफल हो सकता है। ऐसे व्यक्ति भी मिलते हैं जिनमें शरीर-बल ज्यादा नहीं है, पर मनोबल से वे भरे हैं। वैसे व्यक्ति जीवन में सफल होते हैं, किन्तु जिनमें मनोबल नहीं, केवल शरीर-बल है, वे ज्यादा सफल नहीं होते। शरीर-बल और मनोबल—दोनों का संयोग होने पर ही पूर्ण सफलता मिलती है। हमें दोनों पर ही विचार करना है।

आयुर्वेद का दृष्टिकोण

भारत में आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धति प्रचलित रही है और इसमें अनेक नये-नये आविष्कार और प्रयोग हुए हैं। यह विश्व की प्राचीनतम चिकित्सा-पद्धतियों में से एक है। इसने मनुष्य के शरीर और मन—दोनों पर गहराई से चिन्तन किया है। इसने शरीर-बल और मनोबल—दोनों पर प्रकाश डाला है और स्वास्थ्य के लिए दोनों की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया है।

हम आयुर्वेद के आधार पर शरीर-बल और मनोबल—दोनों पर विचार करें। साधना में भी दोनों बलों की आवश्यकता होती है। साधक की सफलता इन दोनों पर निर्भर करती है। शरीर बल के अभाव में एक घंटा तक आसन में नहीं बैठा जा सकता। दस मिनट के बाद ही पैरों में शून्यता आ जाती है। मनोबल न हो तो भी साधना में सफलता नहीं मिलती। शरीर-बल के बिना दस दिन तक साधना की जा सकती है, पर मनोबल के बिना एक दिन भी टिका नहीं जा सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल तत्त्व है प्राण

आयुर्वेद में जीवन की एक प्रणाली प्रतिपादित है। उसमें जीवन के मुख्य तत्त्वों का अति सूक्ष्मता से विवेचन है।

जीवन का मूल तत्त्व है—प्राण। प्राण हमारी शक्ति का स्रोत है। मेडिकल सांइस में अभी तक प्राण पर कोई विशेष काम नहीं हुआ है। परन्तु आयुर्वेद में प्राण का सूक्ष्म विवेचन प्राप्त है। उसका यह विशिष्ट अवदान है। प्राण के पांच प्रकार हैं—प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान। ये पांचों प्राण शरीर में काम करते हैं। इनके अवान्तर प्रकार अनेक हैं। प्राण के द्वारा सारा जीवन संचालित होता है। अंगुली हिलती है। उसका संचालक कौन है? क्या शरीर अंगुली को हिला रहा है? यदि हां, तो मुर्दे की अंगुली भी हिलनी चाहिए। पर अंगुली को शरीर नहीं, प्राण हिला रहा है। इसीलिए जीवनधारी का एक नाम है—'प्राणी।' जिसमें प्राण होता है, वह प्राणी कहलाता है। जीवन का पूरा संचालन प्राण के हाथों में है। प्राण समाप्त तो जीवन भी समाप्त। प्राण है तो जीवन है।

श्वास : श्वास-प्राण

श्वास लेना जीवन का लक्षण माना जाता है। आहार करना भी उसका एक लक्षण है। श्वास कौन लेता है? शरीर श्वास नहीं लेता। भोजन कौन ले रहा है? शरीर भोजन नहीं लेता। शरीर एक प्राण है, श्वास एक प्राण है, आहार एक प्राण है। जब तक ये प्राण हैं तब तक शरीर चलता है, श्वास आता है और आहार का ग्रहण होता है।

श्वास और श्वास-प्राण एक नहीं हैं। श्वास भिन्न है और श्वास-प्राण भिन्न है। श्वास है हमारे शरीर से होने वाली क्रिया। श्वासतंत्र से श्वास की क्रिया निष्पन्न होती है, किन्तु श्वास-प्राण एक भिन्न शक्ति है। एक आदमी मर गया तो क्या उसका श्वसनतंत्र समाप्त हो गया? क्या श्वसनलिका समाप्त हो गई? ये अवयव विद्यमान हैं किन्तु उन्हें जो शक्ति संचालित करती थी वह प्राणशक्ति चुक गई, समाप्त हो गई। जब प्राण चला जाता है तब शरीर का कोई भी अवयव काम नहीं करता। हमारे सारे अवयव— हाथ, पैर, सिर पाचनतंत्र आदि प्राण के द्वारा ही काम करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न है प्राणशक्ति का

प्रेक्षाध्यान पद्धति का महत्त्वपूर्ण अंग है—प्राणशक्ति का विकास। हम दीर्घश्वास का प्रयोग करते हैं। इसका एक प्रयोजन है मन को एकाग्र करना। इसका दूसरा प्रयोजन है—प्राणशक्ति का सम्यक् नियोजन करना, उसका विकास करना, उसको पुष्ट करना। प्राण को बाहर से पोषण मिलता है आहार के द्वारा, श्वास के द्वारा। दीर्घश्वास के साथ ऑक्सीजन अधिक मात्रा में भीतर जाता है। प्राणवायु ज्यादा होती है तो प्राण को सुपोषण मिलता है। यदि श्वास सम्यक् प्रकार से नहीं लिया जाता है तो प्राणशक्ति को ठीक पोषण नहीं मिलता। अधिकांश बीमारियां भी प्राणशक्ति की दुर्बलता के कारण होती हैं। जब वायटल एनर्जी (प्राणशक्ति) कम हो जाती है तब रोगों के आगमन की संभावना बढ़ जाती है।

यदि प्राण पर अधिकार हो जाता है तो सफलता के क्षेत्र में व्यक्ति आगे बढ़ जाता है। जिस व्यक्ति का प्राण पर अधिकार नहीं होता, वह जीवन में कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। पहली बात है—प्राण पर अधिकार हो। आयुर्वेद में पांच प्राणों की चर्चा है, पर आज के आयुर्विज्ञान (मेडिकल साइन्स) में प्राणों की नहीं, केवल चार प्रकार के गैसों की चर्चा है। उसकी मान्यता के अनुसार शरीर के निर्माण में चार गैस और चौदह रसायनों का उपयोग होता है। ऑक्सीजन, कार्बन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन—ये चार प्रकार की गैसें हमारे शरीर में होती हैं। इनके द्वारा शरीर की शक्तियों का संचालन होता है।

पहला है— ऑक्सीजन, प्राण। इसके द्वारा बल बनता है। बल के तीन प्रकार हैं— मनोबल, वचनबल और कायबल। जैन साहित्य में दस प्राणों की चर्चा है। उनमें तीन को बल कहा गया है— मानेबल, वचनबल और कायबल। हम शरीर बल की भी उपेक्षा नहीं कर सकते और मनोबल को भी उपेक्षित नहीं कर सकते।

बल : तीन प्रकार

प्रश्न है— शरीर का बल क्या है और मनोबल क्या है ? आयुर्वेद में शरीर-बल और मनोबल के तीन-तीन प्रकार प्रतिपादित हैं— सहज, कालकृत और युक्तिकृत। शरीर बल तीन प्रकार के हैं— एक है सहजन्य। यह उत्पत्ति के साथ उत्पन्न होता है। दूसरा है कालजन्य। यह ऋतु-विभाग से होने वाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बल है। तीसरा है— युक्तिकृत। यह उपाय से विकसित होने वाला बल है।

कुछ व्यक्तियों में बल जन्मजात होता है। महाराणा प्रताप शरीर-बल के धनी थे। वे जिस भाले से शत्रु पर प्रहार करते, वह भाला आज अनेक व्यक्तियों से भी नहीं उठाया जा सकता। भीम और हनुमान का शरीर-बल विख्यात है। यह बल जन्म से ही होता है। यह सबमें समान नहीं होता। यह प्राकृतिक देन है। इसकी कोई स्पर्धा नहीं कर सकता। बाहुबली बारह महीनों तक कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़े रहे। यह शरीर-बल का उत्कृष्ट उदाहरण है।

ऋतु-चक्र और बल

बल का दूसरा प्रकार है— कालजन्य। शरीर का बल सदा समान नहीं रहता। एक ऋतु में शरीर बल एक प्रकार का होता है और दूसरी ऋतु में वह दूसरे प्रकार का होता है। एक दिन में भी ऋतुओं का चक्र चलता रहता है। प्रातःकाल एक ऋतु होती है, मध्याह्न में दूसरी ऋतु और सायंकाल में तीसरी ऋतु। दिन और रात में छह ऋतुएं आ जाती हैं। दिन में जैसा बल होता है वैसा रात में नहीं होता। आदमी का बल दिन में अधिक होता है और भूत का बल रात में अधिक होता है। इसीलिए युद्ध दिन में चलता है और सूर्यास्त के होते-होते वह बंद कर दिया जाता है। जब सूर्य की प्रखर किरणें शरीर पर पड़ती हैं तब शरीर में ऊर्जा जागती है। जैसे ही सूरज अस्त होता है, वैसे ही बल न्यून हो जाता है, आदमी कमजोर हो जाता है। यह कालकृत बल है। यह ऋतु के अनुसार बदलता रहता है। सर्दी के मौसम में जो बल रहता है, वह गर्मी के मौसम में नहीं रह पाता। जेठ का महीना है। भयंकर लू चल रही है। शरीर का बल पचास प्रतिशत कम हो जाता है। वही शरीर-बल शीतकाल में बढ़ जाता है।

उपाय से बढ़ता है बल

तीसरा बल है— युक्तिकृत, उपायकृत। इसके तीन प्रकार हैं— आहार, चेष्टा और योग। आहार से बल मिलता है। यह बल बढ़ाने की एक युक्ति है। यदि अनुकूल आहार मिलता है तो शरीर-बल बढ़ता है और यदि प्रतिकूल आहार लिया जाता है तो शरीर का बल क्षीण हो जाता है।

चेष्टा से भी बल प्राप्त होता है। जो आदमी चेष्टा करता है, वह श्रम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है, आसन आदि करता है, उसका शरीर-बल बढ़ता है। जो श्रम नहीं करता, श्रम से जी चुराता है, वह शरीर-बल को प्राप्त नहीं कर सकता। उसका शरीर-बल कम हो जाता है और श्रम के अभाव में वह अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

योग से भी बल प्राप्त होता है। योग का अर्थ है— विभिन्न प्रकार के रसायनों का संयोग। आयुर्वेद में रसायन वह होता है जो बूढ़े को भी जवान बना दे, जीवन को आगे बढ़ाए। यह एक योग है, औषधि है। यह रसायन का प्रयोग है। रसायन आयुवर्धक स्वास्थ्यवर्धक और बलवर्धक होते हैं।

आयुर्वेद में बल को बढ़ाने के लिए ये तीन उपाय बतलाए गए हैं— सम्यक् आहार, सम्यक् व्यायाम और सम्यक् योग।

आहार और बल

सम्यक् आहार से बल बढ़ता है और असम्यक् आहार से बल घटता है। आयुर्विज्ञान में माना गया है कि चीनी ताकत देती है, ऊर्जा देती है। यह शरीर का अनिवार्य तत्त्व है। चीनी जरूरी है, पर कौन-सी ? सफेद चीनी से सारे तत्त्व निकल जाते हैं, केवल एसिड पैदा करने वाला तत्त्व शेष रहता है। वह बलदायक नहीं होता।

आजकल पोषणशास्त्र में दो बातों पर ध्यान दिया गया है—अम्लीय आहार और क्षारीय आहार। हमारे शरीर में यह अनुपात है कि १/२ अम्लीय आहार और २/३ क्षारीय आहार की जरूरत होती है। यदि व्यक्ति अधिक मात्रा में या बार-बार घी, मक्खन और मिठाइयां खाता है तो उसकी अम्लता, एसिडिटी बहुत बढ़ जाती है; क्षार और अम्लता का संतुलन गड़बड़ा जाता है।

दो प्रकार के मनुष्य हैं—शाकाहारी और मांसाहारी। प्राकृतिक दृष्टि से शाकाहार प्राणी के शरीर के लिए अत्यन्त अनुकूल होता है। मांसाहार अम्लता बढ़ाता है, उत्तेजना पैदा करता है। जो मांसाहार करते हैं, वे शाकाहार भी करते हैं। वे फल और सब्जियां काफी मात्रा में खाते हैं। संभव है, मांस को पचाने के लिए उन्हें जरूरी माना जाता है।

चेष्टा और योग

सम्यक् व्यायाम या चेष्टा भी शरीर-बल-के वर्धन के लिए उपयोगी होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। ध्यान से पाचनतंत्र और रक्ततंत्र पर भी प्रभाव होता है। यदि आसन ठीक चलते हैं, चेष्टा उचित होती है तो ये समस्याएं स्वतः हल हो जाती हैं।

सम्यक् आहार और सम्यक् चेष्टा—इन दो को प्रत्येक व्यक्ति सीख सकता है और इनसे लाभ उठा सकता है।

तीसरा है—सम्यक् योग। इस बात को हर आदमी नहीं जान सकता। आयुर्वेद का कुशल चिकित्सक ही बता सकता है कि किस ऋतु में, किस क्षेत्र में कौन-सा रसायन उपयोगी हो सकता है? यदि इसका सम्यक् ज्ञान नहीं होता है तो बल को बढ़ाने के बदले उसको घटा देने वाली स्थिति बन सकती है। इन तत्त्वों का सम्यक् ज्ञान और सम्यक् प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी बन सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. मनोबल के तीन रूप

जिसके पास बल नहीं होता, वह दरिद्र होता है। संपन्न वह होता है, जो सबल होता है। बल चाहे शरीर का हो, मन का हो, या बुद्धि का हो, इनसे व्यक्ति सबल होता है, संपन्न होता है। जिसमें किसी भी प्रकार का बल नहीं होता, वह दरिद्र होता है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति बलवान बनना चाहता है। शरीर का बल आवश्यक है परन्तु उससे भी अधिक आवश्यक है मन का बल।

मनोबल : तीन प्रकार

यह दुनिया बड़ी विचित्र है, समस्याओं से आकुल है। बाहर भी समस्या है, भीतर भी समस्या है, मन से पैदा की हुई समस्या भी है, भावना से उत्पन्न समस्या भी है, ऋतु और पड़ोसी के द्वारा उत्पन्न समस्या भी है। असंख्य समस्याओं के बीच रहना और सुख तथा आनन्द के साथ जीना मनोबल के बिना संभव नहीं हो सकता। इसलिए अत्यन्त जरूरी है मनोबल का विकास।

जैसे शरीर-बल के तीन प्रकार हैं, वैसे ही मनोबल के भी तीन प्रकार हैं—सहज, कालकृत और युक्तिकृत। कुछ व्यक्तियों में मनोबल जन्मजात होता है। कुछ लोगों में वह सहज नहीं होता किन्तु अमुक-अमुक काल में वह पैदा होता है। ऋतुचक्र का मनोबल पर प्रभाव पड़ता है। जितना मनोबल प्रातःकाल में होता है, मध्याह्न में होता है, उतना सायंकाल में नहीं होता।

कालकृत मनोबल

विज्ञान की एक नयी शाखा विकसित हुई है। वह है 'जैविक घड़ी' (बायोलोजिकल वाच)। हमारे भीतर एक जैविक घड़ी है। वह समय-समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर बदलती रहती है। स्वर-शास्त्र इसका वाचक है। भारत में स्वर-शास्त्र का बहुत विकास हुआ था। उसके आधार पर यह बताया गया— किस स्वर के समय स्वामी से बात करनी चाहिए, प्रार्थना या याचना करनी चाहिए ? कौन-सा कार्य किस स्वर के चालू रहते प्रारम्भ करना चहिए ? यात्रा करते समय कौन-सा स्वर उत्तम होता है?

जैविक घड़ी बदलती रहती है। मनोबल भी समय के साथ बदलता रहता है। प्रातःकाल किसी से बात करो, बात मान ली जाएगी। गर्मी के दिनों में बारह बजे किसी से हितकर बात करो, नहीं मानी जाएगी, विपरीत रूप से गृहीत होगी। किस समय मूड अच्छा रहता है, मनोबल अच्छा रहता है, सहन करने की शक्ति बनी रहती है, यह सारा जैविक घड़ी बता सकती है।

कालजन्य : अवस्थाजन्य

जैविक घड़ी वाले वैज्ञानिकों ने बताया—दांत निकलवाना हो तो डेन्टिस्ट के पास किस समय जाना उचित होता है, ऑपरेशन कराना हो तो कौन-सा दिन या दिन का कौन-सा समय अच्छा होता है, किस समय व्यक्ति की सहनशक्ति ज्यादा होती है और किस समय वह कम होती है—यह सारा काल पर आधारित होता है। यह है कालज, कालकृत। एक ही दिन में अमुक-अमुक काल में मनोबल मजबूत होता है और अमुक-अमुक काल में वह कमजोर रहता है। मुनि प्रायः प्रातःकाल लुंचन कराते हैं। वे जानते हैं कि उस समय मनोबल मजबूत रहता है। सहन करने की शक्ति कब अच्छी होती है, इसका भी विज्ञान है।

कालज मनोबल का एक अर्थ होता है— वयकृत मनोबल, अवस्थाकृत मनोबल। अवस्था के साथ-साथ मनोबल बढ़ता-घटता रहता है। बच्चे के मन का पूर्ण विकास नहीं होता। उसका मनोबाल कमजोर होगा। उससे युवक का मनोबल अधिक होगा। बूढ़े का मनोबल भी कमजोर होता जाता है। जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती है, आदमी बूढ़ा होता जाता है, मनोबल क्षीण होता चला जाता है। अवस्था के साथ भी मनोबल जुड़ा हुआ है।

युक्तिकृत मनोबल

तीसरा मनोबल है— युक्तिकृत, उपायकृत। यह तीन साधनों से सम्पन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है— आहार से, चेष्टा से और योग से । इन तीनों के द्वारा मनोबल में अन्तर आता है । एक प्रकार के आहार से मनोबल बढ़ता है और दूसरे प्रकार के आहार से वह घटता है ।

आहार तीन प्रकार का है— सात्विक, राजसिक और तामसिक । सात्विक आहार मनोबल को बढ़ाता है । राजसिक आहार से मनोबल मध्यम बना रहता है । तामसिक आहार से मनोबल अल्प हो जाता है । आहार के साथ मनोबल का गहरा सम्बन्ध है । मांसाहार करने वालों का मनोबल अधिक नहीं होता । जितनी सहनशक्ति शाकाहारी में होती है, उतनी मांसाहारी में नहीं होती । जितने भी बड़े-बड़े संत महात्मा हुए हैं, वे सब शाकाहारी हुए हैं, कंद-मूल को खाने वाले हुए हैं । उन्होंने जितने कष्ट, जितनी विपदाएं सहन की हैं उतनी मांसाहार करने वाले कभी नहीं सह सकते ।

आहार और मनोबल

जो व्यक्ति राजसिक आहार करते हैं, मिर्च-मसाले अधिक खाते हैं, उनमें भी मनोबल अधिक नहीं होता । मसाले केवल स्वाद के लिए खाए जाते हैं । उनसे मनोबल घटता है । राजसिक आहार राजसिकता को बढ़ाता है, आवेश और आवेग को पैदा करता है । अधिक गर्म मसाले खाना अनेक दोषों को पैदा करता है । इससे मनोबल में हानि होती है । यदि हम अनुपात निकालें तो यह समीकरण होगा सात्विक आहार करने वाले व्यक्ति में साठ प्रतिशत मनोबल होता है तो राजसिक आहार करने वाले में तीस प्रतिशत और तामसिक आहार करने वाले में केवल दस प्रतिशत मनोबल होगा । मनोबल की मात्रा में इतना भारी अन्तर आ जाता है ।

आहार एक सशक्त उपाय है मनोबल को बढ़ाने का । इसलिए जितने भी आध्यात्मिक योगी हुए हैं, उन्होंने सबसे पहले आहार पर ध्यान दिया । वे जानते थे कि मनोबल के बढ़ाव-घटाव में आहार का प्रमुख हाथ रहता है और मनोबल के बिना अध्यात्म की साधना नहीं की जा सकती । आहार का ठीक चुनाव किए बिना मनोबल का विकास नहीं किया जा सकता । जन्म से ही जिनका मनोबल प्रबल नहीं है, वे आहार के द्वारा अपने मनोबल को बढ़ा सकते हैं, उसका विकास कर सकते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेष्टा और मनोबल

दूसरा साधन है— चेष्टा। चेष्टा का अर्थ है— श्रम। श्रम से मनोबल का विकास किया जा सकता है। आसन करना भी श्रम करना है।

मनोबल का एक नियामक तत्त्व है— धृति। धृति रखना सामान्य बात नहीं है, बहुत बड़ी बात है। मालिक ने नौकर से कहा— पानी लाओ। दो मिनट की देरी से नौकर पानी लाया। मालिक उस पर उबल पड़ा। दो क्षण तक धैर्य रखना भी भारी हो गया, कठिन हो गया।

धैर्य जीवन की सफलता का महानतम सूत्र है। एक युवक टालस्टाय के पास गया। उसने पूछा— 'आप अनुभवी हैं। मुझे यह बताएं कि जीवन के विकास का सूत्र क्या है? सफलता का सूत्र क्या है?' टालस्टाय ने कहा— 'धृति— धैर्य सफलता का सूत्र है।' युवक बोला— 'यह बात समझ में नहीं आती। धैर्य सफलता का सूत्र कैसे हो सकता है? यदि आप बताते कि ज्ञान, स्वाध्याय, ध्यान, क्षमता, कुशलता (एफिसियेन्सी)— ये सफलता के साधन हैं, तो बात समझ में आ जाती।' टालस्टाय फिर बोला— 'युवक! सबसे बड़ा साधन धृति है, धैर्य है। इसके बिना सफलता नहीं मिलती।' युवक तमक उठा— 'क्या धैर्य रखने से चलनी में पानी रखा जा सकेगा?' टालस्टाय ने कहा— हां, धैर्य रखोगे तो चलनी में भी पानी रखा जा सकेगा। चलनी में पानी टिका रह सकेगा।' युवक बोला— 'असंभव। कब तक धैर्य रखना होगा?' टालस्टाय ने मुस्कराते हुए कहा— 'बेटे! धैर्य तब तक रखना होगा, जब तक पानी जमकर बर्फ न बन जाए, जम न जाए।'

मनोबल के विकास का नियामक तत्त्व है— धृति। आयुर्वेद का सूत्र है— **मनसो नियामिका धृतिः**— धृति मन की नियामिका है। जब-जब मन अहितार्थ में प्रवृत्त होता है, तब-तब धृति उसका नियमन करती है, उसे रोक देती है और मन रुक जाता है। धृति का विकास सात्त्विक आहार के बिना संभव नहीं है। वीरासन के द्वारा भी धृति का विकास होता है।

मन का एक काम है— स्मृति। पद्मासन के द्वारा स्मृति का विकास होता है, विचारशक्ति का विकास होता है। स्वस्तिक आसन के द्वारा भी स्मृति का विकास होता है।

इस प्रकार चेष्टा के द्वारा मनोबल बढ़ाया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग और मनोबल

तीसरा साधन है— योग का रसायन । रसायनों के सेवन से मनोबल का विकास होता है ।

चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेद के ग्रंथों में रसायनों द्वारा मनोबल, मानसिक शक्ति के विकास के अनेक उपाय सुझाए गए हैं । वहां प्रतिपादित है— शंखपुष्पी के द्वारा अमुक शक्ति का विकास होता है, ब्राह्मी के द्वारा अमुक शक्ति का विकास होता है, आदि-आदि । आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रंथों में भी अनेक रसायनों के द्वारा मानसिक शक्तियों के विकास की चर्चा उपलब्ध होती है । यह है युक्तिकृत मनोबल के विकास का प्रतिपादन ।

आयुर्वेद में सहज, कालज और युक्तिकृत— इन तीनों बलों का बहुत सूक्ष्मता से विवेचन प्राप्त है । आज की चिकित्सा पद्धति आयुर्विज्ञान (मेडिकल साइंस) में शरीर की चिकित्सा करने वाला डॉक्टर फिजीशियन कहलाता है । वह एम० डी० या अन्यान्य परीक्षाएं पास करता है । शल्य-चिकित्सक सर्जन कहलाता है । वह एम० एस० परीक्षा उत्तीर्ण करता है । इसके साथ मानसिक चिकित्सा की एक भिन्न शाखा है । आयुर्वेद में मानसिक चिकित्सा का पृथक् वर्गीकरण नहीं है । प्रत्येक कुशल वैद्य शारीरिक चिकित्सा के साथ-साथ मानसिक चिकित्सा में भी प्रवीण होता है । इन तीनों शक्तियों को जानना अनिवार्य होता है ।

सहनशक्ति : तापशक्ति

मन की अनेक शक्तियां हैं । उनमें एक शक्ति है— सहन करना । सहिष्णुता उसकी मुख्य शक्ति है । शंकराचार्य ने 'सौन्दर्य लहरी' ग्रन्थ में आठ सिद्धियों का वर्णन किया है । उनमें दो सिद्धियां हैं— सहनशक्ति और तापशक्ति । सहनशक्ति के द्वारा कठिनाइयों को झेला जा सकता है, आपदाओं का सहज रूप से सामना किया जा सकता है । बड़े-बड़े व्यक्ति भी आपदाओं को झेलने में कायर बन जाते हैं । बम्बई में एक बड़ा व्यापारी था । उसे व्यापार में घाटा लगा, बड़ी समस्या पैदा हो गई । वह उस आपदा को सम्हाल नहीं सका । जीवन से ऊबकर उसने समुद्र की शरण लेनी चाही । वह पानी में डूब मरने की अभिलाषा से समुद्र के किनारे गया । तत्काल उसके मन में एक विचार आया—अरे ! मैंने आचार्य तुलसी से गुरुधारणा करते समय संकल्प किया था कि मैं कभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी, किसी भी परिस्थिति में आत्महत्या नहीं करूंगा। आज मैं उस संकल्प को तोड़ रहा हूं। विमर्श चला। वह तत्काल आत्महत्या के विचार को स्थगित कर घर की ओर मुड़ गया।

सिद्धपुरुष कौन ?

महान सिद्धि है—सहनशक्ति का विकास। जिसमें निंदा और अपमान, लाभ और अलाभ को सहने की शक्ति आ जाती है, वास्तव में वह सिद्धपुरुष हो जाता है। सिद्धपुरुष वह कहलाता है, जिसमें सिद्धियां प्रकट हो जाती हैं।

किसी ने कहा— वह कैसा निकम्मा आदमी है। यह करता है, वह करता है, ऐसा करता है, वैसा करता है। इन सबको सहने की जो शक्ति है वह है तापशक्ति। साधुओं को कितना सुनना पड़ता है? वे सब कुछ सहते हैं इसीलिए तो वे सिद्धपुरुष बन जाते हैं।

महावीर ने क्या नहीं सहा ? लोग कितनी गालियां देते, कितनी ताड़नाएं देते, कुत्ते पीछे लगा देते, पर महावीर शांत रहते। उनमें सहनशक्ति और तापशक्ति—दोनों जग चुकी थीं। ये नहीं जागतीं तो महावीर अनार्य क्षेत्रों में जाते ही नहीं और यदि वे जाते तो सकुशल नहीं लौटते। सिद्धपुरुष वह होता है जिसमें गालियां, आक्रोश आदि सहने की शक्ति जाग जाती है।

प्रवरसत्त्व

आयुर्वेद में मनोबल के तीन प्रकार बतलाए गए—प्रवरसत्त्व, मध्यमसत्त्व और अवरसत्त्व अर्थात् उत्तम मनोबल, मध्यम मनोबल और अल्प मनोबल। सत्त्व का अर्थ है—मन। आचार्य भिक्षु प्रवरसत्त्व वाले व्यक्ति थे। उनका मनोबल उत्तम कोटि का था। आचार्य भिक्षु सहनशक्ति की प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने अनेक कष्ट झेले। सिरियारी की हाट (दुकान) में चातुर्मास बिताया। गर्मी का मौसम, हाट का ढलाऊ दरवाजा, जिसमें झुककर ही प्रवेश किया जा सकता है। न खिड़की और न रोशनदान। अन्दर अंधेरा ही अंधेरा। आचार्य भिक्षु उस हाट में रहे। जो प्रवरसत्त्व का धनी होता है, उत्तम मनोबल वाला होता है, वही व्यक्ति ऐसी कठिनाइयों को झेल सकता है।

आचार्य भिक्षु ने केवल स्थान की कठिनाई ही नहीं, आहार-पानी की भी जो कठिनाइयां झेलीं, वे अद्‌भुत थीं। वर्षों तक उपयुक्त आहार तो क्या, भरपेट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोजन भी प्राप्त नहीं हुआ। आचार्य भिक्षु ने इनको समभाव से सहा। उनके लिए भोजन का अभाव नहीं था। यदि वे पहले वाले मार्ग पर चलते तो भोजन की कोई कमी नहीं रहती। पर उन्होंने क्रांति कर जिस राह पर चलने का संकल्प किया, वह कठिनाइयों से भरा पड़ा था। वे मनोबली थे। उन्हेंने कष्ट सहे पर मार्ग को नहीं छोड़ा।

मध्यमसत्त्व

दूसरा है—मध्यम मनोबल। मध्यमसत्त्व वाला व्यक्ति कठिनाई को हंसते-हंसते नहीं झेल पाता। उसे कोई सहारा चाहिए। वह यह सोचता है कि अमुक आदमी भी इतना कष्ट सहता है, मैं भी कुछ सहूं। अथवा कोई उपदेश मिला, किसी ने समझाया-बुझाया और वह कष्ट झेल लेता है। जो मध्यम सत्त्व या मध्यम मनोबल वाला व्यक्ति होता है, उसका मनोबल समझाने से उदित हो जाता है।

स्थानांग सूत्र का एक प्रसंग है। एक साधु रोग-ग्रस्त हुआ। वह सामान्य साधक था। रोग से आकुल-व्याकुल हो गया। वह अधीर हो गया। दूसरे साधक ने कहा—तुम ! इतने अधीर क्यों हो रहे हो? देखो ! जिनकल्पी मुनि कष्टों की उदीरणा करते हैं, कष्टों को आमंत्रित करते हैं, उनको समभाव से सहते हैं, कभी अधीर नहीं होते। तुम्हारे रोग हुआ है। उसे समभाव से सहन करो। इस उपदेश से उसका मनोबल सबल बनता है और अधीरता मिट जाती है। यह है मध्यम मनोबल की बात।

अवर सत्त्व

तीसरे प्रकार का मनोबल है— अल्प मनोबल, अवरसत्त्व। इस मनोबल वाले व्यक्ति को कितना ही समझाया जाए, उसका मनोबल नहीं जागता। थोड़ी-सी आपदा में वह अधीर हो उठता है, घुटने टेक देता है।

रामायण की सीरियल चल रही थी, उसमें यह दिखाया गया कि लंका का दहन हो रहा है, बाली को मारा जा रहा है। टी० वी० देखते-देखते दो अध्यापिकाओं का हार्ट फेल हो गया। वे इसे सहन नहीं कर सकीं। यह है अवरसत्त्व, अल्प मनोबल की घटना। ऐसे व्यक्ति किसी भी घटना को सहन नहीं कर पाते। थोड़ा-सा कुछ होता है और हाय-हाय करने लग जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु व्याधि : अल्प व्याधि

चरक में दो प्रकार के रोग बतलाए गए हैं— गुरु व्याधि और अल्पव्याधि। बीमारी गुरु है, भयंकर है किन्तु रोगी का मनोबल इतना ऊंचा है कि वह उस भयंकर व्याधि को भी हल्की बना देता है। चिकित्सक को भ्रम हो जाता है। वह सोचता है— इतनी बड़ी बीमारी में भी चेहरे पर मुस्कान है। अजब आदमी है !

एक आदमी अल्परोग से ग्रस्त है। वह अल्पतम वेदना भी सह नहीं सकता। थोड़े से कष्ट में भी वह कहेगा— जान निकल रही है, मर रहा हूं, रात को नींद नहीं आती, सिर फट रहा है, यह हो रहा है, वह हो रहा है।

साध्वी बालूजी (मेरी संसारपक्षीया मां) गंगाशहर में भयंकर बीमारी से आक्रान्त थीं। उन्हें कोई रोग के विषय में पूछता तो वे कहतीं— कोई खास बात नहीं है। थोड़ा-सा कष्ट है। कष्ट है तो शरीर को है, मुझे कोई कष्ट नहीं है।

जिसका मनोबल उत्तम होता है, भयंकर बीमारी भी उसके लिए सामान्य बन जाती है, छोटी बन जाती है। जिसका मनोबल कमजोर होता है, उसकी सामान्य बीमारी भी भयंकर बन जाती है, बड़ी बन जती है।

सुखी बनने का मन्त्र

ये तीन प्रकार के मनोबल हैं। जिस व्यक्ति में उत्तम मनोबल जाग जाता है, संकल्प शक्ति का मनोबल जाग जाता है, सचमुच दुःख-बहुल और समस्याओं से आक्रांत इस जगत् में उसका जीवन निर्बाध हो जाता है। कोई भी शक्ति उसे झुका नहीं सकती, दुःखी नहीं बना सकती।

सुखी बनने का शास्त्रोक्त मंत्र है— मनोबल का विकास। वही व्यक्ति इस दुनिया में सुखी बन सकता है, जिसने मनोबल को विकसित किया है। जागतिक समस्याओं को कोई नहीं मिटा सकता। बड़े-बड़े राष्ट्र भी समस्याओं से घिरे रहते हैं, वे भी उनका उन्मूलन नहीं कर सकते। परन्तु व्यक्ति इन समस्याओं के बीच रहता हुआ भी सुखी रह सकता है। इसका मूल मंत्र है— मनोबल का विकास। जो मनोबली नहीं होता, वह पग-पग पर समस्या के सामने घुटने टेकता रहता है, पराजित होता रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. मन के लिए कितना समय ?

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

शरीर की अपेक्षा मन शक्तिशाली और उपयोगी है, पर प्रश्न है—शरीर के लिए कितना समय लगता है और मन के लिए कितना समय लगता है ? शरीर से मन महत्त्वपूर्ण है, पर क्या उसके लिए हम समय का नियोजन करते हैं ? शरीर को पोषण देने के लिए चार-पांच बार खाया जाता है, भोजन का ध्यान रखा जाता है, पौष्टिक और विटामिनों से युक्त आहार प्राप्त हो, ऐसा प्रयत्न होता है । शरीर को स्नेह, कार्बोहाइड्रेड और खनिज मिले, यह ध्यान रहता है । ऋतु के अनुसार भोजन में परिर्वतन भी किया जाता है । हम शरीर को पुष्ट रखना चाहते हैं, कमजोर करना नहीं चाहते । हम ये सारे प्रयत्न शरीर के लिए करते हैं ।

प्रश्न है—क्या चेतना, मन और प्राण शक्ति के विषय में भी कभी ध्यान देते हैं ? क्या कभी सोचते हैं कि मन को उचित पोषण मिल रहा है या नहीं ? पोषण के अभाव में मन की शक्ति विकृत और कमजोर नहीं हो जाएगी ? क्या मन सताने नहीं लगेगा ? क्या इस विषय पर कभी चिन्तन चलता है ? बहुत कम व्यक्ति इस विषय पर चिन्तन करते हैं ।

शरीर ही जीवन नहीं है

आदमी जीवन जीता है । केवल शरीर जीवन नहीं है । शरीर, प्राण और चेतना— इन तीनों के योग का नाम है— जीवन । कोरा शरीर ही जीवन हो तो मरने के बाद भी जीवन होता किन्तु मरने के बाद शरीर रहता है पर जीवन नहीं होता । शरीर में जीवन है प्राणशक्ति । प्राण भी स्वतन्त्र नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राण को संचालित करने वाली शक्ति है— चेतना। इन तीनों का योग है तो जीवन है, अन्यथा नहीं। तीनों में से एक का भी अभाव सारे तन्त्र को अस्त-व्यस्त कर देता है।

आदमी का सारा ध्यान आज शरीर पर ही अटक गया है। वह स्वाभाविक भी है कि जो सामने आता है, उसी पर ध्यान ज्यादा जाता है। जो सामने नहीं आता, उस पर ध्यान कम जाता है। स्थूल पर ध्यान ज्यादा जाता है। सूक्ष्म पर उतना ध्यान नहीं जाता। शरीर स्थूल है। मन सूक्ष्म है। चेतना उससे भी अधिक सूक्ष्म है। उस पर ध्यान जाता ही नहीं है।

चिन्ता है शरीर की

आयुर्विज्ञान में शरीर पर बहुत खोज हुई है। शरीर की एक-एक कोशिका के विषय में सूक्ष्म ज्ञान किया गया है। आज भी अन्वेषण चल रहे हैं, प्रयोग हो रहे हैं, किन्तु प्राणशक्ति पर अभी पर्याप्त काम नहीं हुआ है। विज्ञान काम करता है यंत्रों द्वारा। प्राणशक्ति का अनुशासन कर सके, ऐसा कोई यंत्र नहीं बना है इसलिए यह विज्ञान की पकड़ से बाहर है। प्राण सूक्ष्म है, चेतना सूक्ष्मतम है इसलिए सारा ध्यान टिका हुआ है स्थूल पर, शरीर पर। खाद्य पदार्थों की भरमार, दवाओं की प्रचुरता— ये सब इसलिए हैं कि शरीर स्वस्थ रहे। शरीर की चिन्ता सबको है पर आश्चर्य इस बात का है कि शरीर को चलाने वाले की चिन्ता किसी को नहीं है। सम्भवतः यही कारण है— आज बीमारियां और अकाल मृत्यु अधिक नहीं हैं।

कोरा शरीर काम नहीं देता, वह जल्दी समाप्त हो जाता है। यह माना जाता है कि हमारा हृदय तीन सौ वर्षों तक कार्य कर सकता है। इतनी क्षमता है हृदय में। हमारी हड्डियां, हमारा मस्तिष्क, बहुत मजबूत है। इनमें लम्बे समय तक कार्य करने की शक्ति है किन्तु ये शीघ्र ही निष्क्रिय हो जाते हैं, क्योंकि हम प्राणशक्ति की परवाह नहीं करते। सम्भव है, शरीर यह सोचता हो कि आदमी केवल मेरी चिन्ता करता है मुझे चलाने वाले की चिन्ता नहीं करता, इसलिए मुझे भी जल्दी ही समाप्त हो जाना चाहिए। आज के मनुष्य की सारी चिन्ता शरीर-केन्द्रित है। वह प्राण, मन और चेतना की चिन्ता नहीं करता। इस स्थिति में प्राण, मन और चेतना की शक्ति कैसे ठीक रह सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर से परे झांकें

व्यक्ति साठ, सत्तर, अस्सी वर्ष का हो जाता है। बूढ़ा हो जाता है, पर उसे सोचने का अवसर ही नहीं मिलता या वह सोचना जानता ही नहीं कि शरीर से आगे भी कुछ और है। हमें शरीर से आगे की बात पर भी ध्यान देना चाहिए। आदमी दृश्य पर ही अटक जाता है। दृश्य ऐसी भ्रांति और मूर्च्छा पैदा करता है कि उसे तोड़कर आगे जाना असंभव-सा बन जाता है। आवश्यकता है कि हम शरीर से परे जाकर झांकें।

शरीर के बाद हमारी दूसरी शक्ति है— इन्द्रियां। यह इन्द्रिय-शक्ति चेतना की शक्ति है। आंख का गोलक, कान और नाक आदि आकृतियां हैं, इनमें इन्द्रिय शक्ति नहीं है। किन्तु इन्द्रिय की चेतना-शक्ति, जिसके द्वारा आदमी देखता है, बोलता है, सुनता है, सूंघता है, वह इन्द्रिय-शक्ति शरीर से परे की बात है। उससे आगे है इन्द्रिय-शक्ति को संचालित करने वाली शक्ति। वह है मन की शक्ति। इन्द्रियों का संचालक है मन। मन में भाव आया— आकाश साफ है या आंधी आएगी। तत्काल आंखें ऊपर, इधर-उधर देखने लग जाती हैं। मन में प्रश्न हुआ कि आवाज कहां से आ रही है? कान तत्काल उस ओर तत्पर हो जाएंगे। इस प्रकार मन में जो आता है, उसको क्रियान्वित करना इन्द्रियों का काम है।

मन के तीन कार्य

मन के तीन मुख्य कार्य हैं— सुखानुभूति, दुःखानुभूति, इन्द्रियों को प्रेरित करना। इन्द्रियों को संचालित करना उसका प्रमुख काम है। मन में यह शक्ति नहीं है कि वह गंध को जान सके, रस और स्पर्श को जान सके या अच्छे-बुरे शब्द सुन सके। जो पांच विषय हैं उनका संवेदन करना इन्द्रिय-शक्ति पर आधारित है। किन्तु सारी इन्द्रियां मन के लिए काम करती हैं। ये मन के लिए कच्चा माल (रॉ मेटीरियल) जुटाती हैं। मन का काम है— कच्चे माल को पक्के माल में बदलना।

मन का दूसरा और तीसरा काम है—सुख की अनुभूति करना, दुःख की अनुभूति करना। जो अमनस्क प्राणी हैं, जिनका मन विकसित नहीं है, वे सुख की अनुभूति भी कम करेंगे और दुःख की अनुभूति भी कम करेंगे। जिनमें मन का विकास है, उनमें सुखानुभूति भी तीव्र होगी और दुःखानुभूति भी तीव्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगी । ये सारे काम हैं मन के । प्रश्न है—जब मन सुख-दुःख की अनुभूति में सहायक होता है, इन्द्रियों को प्रेरित करने में सहायक होता है, तब उसके पोषण आदि के विषय में इतनी उपेक्षा क्यों ?

पोषण, अपोषण और कुपोषण

खाद्यशास्त्र में तीन शब्द प्रचलित हैं—पोषण, अपोषण और कुपोषण । भोजन का नहीं मिलना, उसका अभाव होना, यह अपोषण की स्थिति है । प्राप्त होने वाला भोजन अपथ्य है, खराब है, यह कुपोषण की स्थिति है । सही भोजन की प्राप्ति पोषण है । मन के लिए भी ये तीनों बातें हो सकती हैं । लोग मन को पोषण देना नहीं जानते । वे उसे या तो पोषण देते ही नहीं या कुपोषण देते हैं, इसीलिए मन उनको क्रीड़ा कराता है । मन के खेल बड़े विचित्र होते हैं । यह सारा संसार मन की क्रीड़ा-स्थली है । मन का ही खेल है यह संसार । इसके खेलों के समक्ष विश्व के बड़े-से-बड़े खेल भी फीके हैं । मन कितने खेल दिखा रहा है । इसके खेलों में उलझा व्यक्ति एक-दूसरे को परास्त करना चाहता है ।

मन का खेल

पुराने जमाने की बात है । एक पंडित राजा के पास गया । वह विद्वान था, पर दरिद्र था । यह सच है—जहां ज्ञान होता है वहां धन नहीं होता और जहां धन होता है वहां ज्ञान नहीं होता । ज्ञानी धनी नहीं होता और धनी ज्ञानी नहीं होता । पंडित ने राजा की अभ्यर्थना की । राजा ने कहा— 'पंडितजी ! मैंने सुना है कि तुम्हारे पूर्वज अगस्त्य मुनि ने एक चुल्लू में समुद्र का सारा पानी पी डाला था । तुम यदि तीन घड़े पानी पी जाओ तो मैं तुम्हें मनचाहा धन दूंगा ।' पंडित भी होशियार था । वह बोला— 'आपने ठीक कहा । मैंने भी सुना है कि आपके पूर्वज रामचन्द्रजी ने समुद्र पर पत्थर का सेतु बांध, उसे पार किया था । यदि आप समुद्र के पानी पर एक कंकर भी तिरा दें तो मैं तीन घड़े पानी पी लूंगा ।' राजा मौन हो गया ।

यह मन का खेल है । एक दूसरे को परास्त करना, नीचा दिखाना, अनुचित लाभ लेना—इन क्रियाओं से मन को पोषण नहीं मिलता, कुपोषण मिलता है । इससे मनुष्य के पैर लड़खड़ाने लगते हैं । यदि यह मान्यता होती कि जैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर को पोषण देते हैं, वैसे ही मन को पोषण देना चाहिए तो मन के इतने खेल देखने को नहीं मिलते।

मन का कुपोषण

आयुर्वेद में तीन गुणों की चर्चा है—**सत्त्व, रजस् और तमस्**। जब-जब मन को रजोगुण और तमोगुण की अधिक प्राप्ति होती है तब-तब वह कुपोषण का शिकार होता है। जब मन को यह जहरीला भोजन मिलता है तब उसका परिणाम होता है—अहंकार की वृद्धि। चेतना में अंहकार का क्या प्रयोजन हो सकता है? चेतना शुद्ध ज्ञान है। जहां ज्ञान है वहां अहंकार कैसा? जहां ज्ञान है वहां अहंकार नहीं है और जहां अहंकार है वहां ज्ञान नहीं है। जब मन को कुपोषण मिलता है तब आदमी में अहंकार जागता है। जो बड़ा कहलाए, चाहे धन की दृष्टि से, सत्ता या ज्ञान की दृष्टि से और अहंकार न जागे तो यह दुनिया का दसवां आश्चर्य माना जाएगा। ये सब अहंकार के साथ आत्मीयभाव से जुड़े हुए हैं। धन आते ही अहंकार बढ़ जाएगा। सत्ता प्राप्त होते ही आदमी अहंकारी बन अकड़कर चलेगा। ज्ञान की उपलब्धि होते ही वह अपने आपको बहुत ज्ञानी और दूसरों को अल्पज्ञानी या मूर्ख मानने लगेगा। उसका अहं आकाश को छूने लगेगा। यह है मन का कुपोषण।

मन का सुपोषण

रजोगुण का राजसी ठाट-बाट अहंकार का ही पर्याय है। मनुष्य को अधोगति में ले जाने वाला मुख्य तत्त्व है अहंकार। यह नरक में ले जाता है, यह परलोक की बात है। हम इसे छोड़ दें। वर्तमान जीवन में भी मनुष्य की अधोगति करता है अहंकार। इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है। जब-जब शासकवर्ग अहंकार में आया तब-तब उसका पतन हुआ। पंडित लोग अहंकार में आए तो नीचे गिर गए। धनीलोग भी अहंकार के वशीभूत होकर विनष्ट हो गए।

विनम्रता जीवन का सबसे महान् गुण है। यह मन के लिए अच्छा पोषण है। यह मन के लिए उत्तम विटामिन है। दूसरे को नीचा दिखाने की वृत्ति, दूसरे की संपत्ति हड़पने की भावना, आक्रमण की भावना— ये सारे मन के कुपोषण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आज का आदमी मन को खिलाता तो बहुत है पर वह सारा मन के लिए कुपोषण का काम कर रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे शरीर का सु-पोषण एक ही पदार्थ से नहीं होता वैसे ही मन को भी अनेक सद्वृत्तियों का पोषण आवश्यक होता है। शरीर को विटामिन, खनिज, लवण आदि से युक्त पदार्थ चाहिए, वैसे ही मन के लिए भी, उसकी पुष्टि के लिए अनेक बातें चाहिए।

दोहरी मूर्खता

सारा सावद्य योग या अठारह प्रकार के पापों में प्रवृत्ति— यह सारा मन का कुपोषण है। मन भूखा तो नहीं है, भोजन मिल रहा है उसे, वह जी भी रहा है किन्तु दिमाग ठीक काम नहीं करता। शरीर के सारे अवयव ठीक काम नहीं कर रहे हैं, क्योंकि बेचारे मन को कुपोषण मिल रहा है। जब कुपोषण मिल रहा है तब वह अपने खेल दिखाएगा, सताएगा। आज न जाने कितने लोग मानसिक व्यथाओं से व्यथित हैं। इसका कारण है कि मुनष्य मन को कुपोषण दे रहा है। वह मानसिक पीड़ा से कैसे बच पाएगा ? यदि मानसिक व्यथाओं और तनावों से बचना है तो मन को सुपोषण देना होगा। यदि मन को संतुलित भोजन नहीं देते हैं तो फिर क्यों शिकायत करते हैं इतनी चिन्ताएं हो रही हैं, मन ठीक नहीं है ? कुछ लोग कहते हैं, मन खराब हो रहा है, नाच नचा रहा है, वासना सता रही है। पर वे यह नहीं सोचते— हम मन के लिए क्या कर रहे हैं ? उस पर दोषारोपण क्यों कर रहे हैं ? जब हम स्वयं मन को कुपोषण दे रहे हैं तब उसके सुनिश्चित परिणामों से क्यों घबराते हैं ? यह दोहरी मूर्खता है। कार्य का परिणाम भोगना ही होगा। भगवान् ने कहा—बिइया मंदस्स बालया—यह मूर्ख की दोहरी मूर्खता है। एक मूर्खता तो पहले कर बैठा और अब उसे छुपाने की दोहरी मूर्खता कर रहा है।

पोषण क्या है ?

मन के सुपोषण की बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसे पोषण मिले, कुपोषण नहीं। जब-जब पापकारी प्रवृत्ति का विचार आए, उसे निकाल दें।

प्रश्न है—मन का पोषण क्या है ? आयुर्वेद की भाषा में मन का पोषण है—सत्त्वगुण। जिस व्यक्ति में सत्त्वगुण की अधिकता होगी, उसका मन स्वस्थ रहेगा। रजोगुण और तमोगुण की अधिकता मन का कुपोषण है। जैन दर्शन के संदर्भ में मन का कुपोषण है—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या के भाव। तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के भाव मन का सुपोषण हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये तीन भाव मन और चेतना को पुष्ट करते हैं। हमारा प्रयत्न हो—तीन प्रशस्त लेश्याओं के भाव अधिक रहें और तीन प्रथम अप्रशस्त लेश्याओं के भाव आएं ही नहीं। इस प्रयत्न से मन को सम्यक् पोषण मिलता रहेगा।

सत्त्वगुण : सत्त्वसार

आयुर्वेद में सत्त्वगुण वाले व्यक्ति को सत्त्वसार कहा गया है। उसकी पहचान है—वह उद्दंड नहीं होगा, भक्तिभाव से ओतप्रोत होगा। दूसरी बात है उसकी स्मृति बड़ी तीव्र होगी। तीसरी बात है—वह कृतज्ञता से भरा पूरा होगा। इन तीनों गुणों—भक्ति, स्मृति और कृतज्ञता—से सत्त्वसार को पहचाना जा सकता है। ये तीनों मन को पुष्ट करने वाले हैं, मन के सुपोषण हैं। उद्दंडता, विस्मृति और कृतघ्नता ये मन को शक्तिहीन बनाते हैं, मन के कुपोषण हैं।

उपकारी के उपकार की स्मृति रखना, अनुभव करना कृतज्ञता है। तेरापंथ के चौथे आचार्य श्रीमज्जयाचार्य बहुत बड़े ज्ञानी और ध्यानी आचार्य थे। वे मुनि हेमसजजी के पास पढ़े थे। आचार्य बनने के बाद उन्होंने अपने विद्यागुरु हेमराजजी के प्रति कृतज्ञता भाव ज्ञापित करते हुए लिखा—

'मैं तो बिन्दु समान हो, तुम कीन्हों सिन्धु समान।'

'मुनिवर ! मैं तो एक बिन्दु के समान था। तुमने मुझे सिन्धु समान बना डाला।' ये उद्गार हैं एक महान आगमज्ञा आचार्य थे। वे लिख रहे हैं एक मुनि के लिए। यह है कृतज्ञता।

चिन्तनीय प्रश्न

कृतज्ञता से मन को सुपोषण मिलता है। विनम्रता, धृति, अभय, मृदुता, सरलता— ये गुण मन के सुपोषण देने से विकसित होते हैं। जिनमें ये विकसित हैं, वे व्यक्ति सत्त्वसार हैं।

प्रत्येक व्यक्ति यह सोचे— वह शरीर को कितना समय दे रहा है और मन के लिए क्या कर रहा है ? केवल शरीर की सेवा करना, मन को उपेक्षित रखना ऐसी ही प्रवृत्ति है कि किसी को करोड़पति बनाकर, एक लोटा देकर घर से निष्कासित कर देना। क्या आज यही नहीं हो रहा है ? व्यक्ति चिन्तन करे और समय का ठीक समायोजन करे, जिससे शरीर और मन— दोनों स्वस्थ रह सकें। दोनों को ठीक पोषण देने वाला व्यक्ति ही जीवन को सुखमय, शांतिमय और आनन्दमय बना सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. मनोबल की हानि क्यों ?

स्थूलदृष्टि : सूक्ष्मदृष्टि

मानसिक स्वास्थ्य का प्रश्न हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। शारीरिक स्वास्थ्य का महत्त्व कम नहीं है परन्तु मानसिक स्वास्थ्य उससे बहुत अधिक महत्त्व का है। सच तो यह है कि हम न तो शरीर के विषय में अधिक जानते हैं और न मन के विषय में। हमारे ज्यादा काम आती हैं— इन्द्रियां। इन्द्रियों द्वारा प्राप्त वस्तुओं का भोग भी अधिक होता है। सारी शक्ति उन्हीं में खत्म हो जाती है, इसीलिए मनुष्य बहिर्गामी बना हुआ है। उसने अपनी अन्तर्दृष्टि का विकास नहीं किया है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अन्तर्दृष्टि के विकास की क्षमता है। वह सूक्ष्म, सूक्ष्मतम बात को जान सकता है, ऐसी उसमें शक्ति है, पर कभी उसने प्रयास ही नहीं किया। बिना प्रयास किए कुछ भी नहीं होता और जो कार्यजा शक्ति होती है, वह भी निकम्मी बन जाती है। शरीर का जो अवयव काम में नहीं लिया जाता, वह शक्तिहीन हो जाता है। अन्तर्दृष्टि भी जब काम में नहीं ली जाती है तब वह भी निकम्मी हो जाती है। स्थूलदृष्टि की उपयोगिता है पर केवल स्थूलदृष्टि में अटक जाना ही पर्याप्त नहीं है। सूक्ष्मदृष्टि का विकास करना भी आवश्यक है। सूक्ष्म सत्य को जानने की शक्ति का विकास करना भी आवश्यक है। केवल स्थूल सत्य से जीवन तो चल जाएगा पर अच्छा जीवन नहीं चलेगा। हमें दोनों को जानना चाहिए—स्थूल को भी और सूक्ष्म को भी।

मानसिक स्वास्थ्य और मनोबल

हम स्थूलदृष्टि के साथ-साथ सूक्ष्मदृष्टि का विकस करें। यदि सूक्ष्मदृष्टि से देखेंगे तो शरीर का मूल्य भी बदल जायेगा. मन का मूल्य भी बदल जायेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस स्थिति में ही समझ पाएंगे कि शरीर का स्वास्थ्य क्या है और मन का स्वास्थ्य क्या है ? मानसिक स्वास्थ्य और मनोबल— दोनों जुड़े हुए हैं। मनोबल है तो मन का स्वास्थ्य बना रहेगा। मनोबल टूटता है तो मन का स्वास्थ्य भी कमजोर हो जाता है। मनोबल के बिना मानसिक स्वास्थ्य को ठीक नहीं रखा जा सकता।

मनोबल सबमें समान नहीं होता। इसमें बहुत तरतमता है। किसी में एक प्रतिशत, किसी में दो प्रतिशत और किसी में पांच प्रतिशत मनोबल होता है। अगर हजार आदमी हैं तो मनोबल की मात्रा भी हजार प्रकार की बन जायेगी। लाख हैं तो उसके लाख प्रकार बन जाएंगे। इतनी तरतमता है कि जितना भी विषय उपलब्ध होता है, वह भी कम हो जाता है। मनोबल कम हुआ, मानसिक स्वास्थ्य भी कम हो जाएगा।

मानस-दोष

प्रश्न होता है मनोबल कम क्यों होता है ? आयुर्वेद में इसका विचार किया गया है। मनोबल की कमी का कारण है मानसिक दोष, आंतरिक मन का दोष। अपना दोष है इसीलिए मनोबल कम होता है। इसकी अगर अध्यात्म की भाषा के साथ तुलना की जाये तो एक बात स्पष्ट हो जायेगी कि भाव और मन हमारी दो शक्तियां हैं। मन है चिन्तन, कल्पना और विचार की शक्ति और भाव है उससे भी सूक्ष्म शक्ति, आंतरिक शक्ति। क्रोध, अहंकार, भय, ईर्ष्या, द्वेष—ये सारे भाव हैं। ये जब मन के साथ जुड़ जाते हैं तब मनोभाव कहलाते हैं! भाव के साथ मन जुड़ता है। आयुर्वेद में इसे मानस-दोष कहा गया है। जब मानस-दोष आता है, मन में विकार पैदा हो जाता है, मन की शक्ति टूटने लगती है। आदमी सहन नहीं कर पाता।

बीमार डॉक्टर ने कहा— 'दर्द इतना हो रहा है कि मैं सहन नहीं कर पा रहा हूं। इच्छा हो रही है कि मैं मर जाऊं।' डॉक्टर ने कहा—'बहुत अच्छा किया जो मुझे बुला लिया। अब जीने की आशा ही नहीं है।'

मानस-दोष : दो प्रकार

मरने में सहयोग करने वाले भी कम नहीं हैं। मन को विकृत बनाने में सहयोग देने वाले भी कम नहीं हैं। बाहर भी हैं, भीतर भी हैं। भीतरी कारणों की मीमांसा की गई। मानस दोष के दो प्रकार बताए गये। एक है निजी मानस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोष और दूसरा है आगन्तुक बाधा। आयुर्वेद के अनुसार आगन्तुक है— भूतबाधा और ग्रहबाधा, किन्तु निजी मानस-दोष, जो आंतरिक मन के दोष हैं, जिनके कारण मन की शक्ति टूट जाती है मनोबल घट जाता है उन कारणों की एक लम्बी सूची है। उस सूची से लगता है— अध्यात्म और आयुर्वेद— दोनों साथ-साथ चले हैं। एक आदमी आध्यत्मिक जीवन जीता है तो जाने-अनजाने में आयुर्वेद के मार्गदर्शन को पा लेता है और स्वास्थ्य का सूत्र पकड़ लेता है। एक व्यक्ति आयुर्वेद के सूत्र से अपना जीवन चलाता है तो शायद अध्यात्म की भूमिका तक पहुंच जाता है। आयुर्वेद के साथ एक दर्शन रहा है अध्यात्म का। यह माना जाता है कि आयुर्वेद के ऋषि सांख्य दर्शन से बहुत प्रभावित रहे हैं, इसलिए उसमें अध्यात्म का प्रभाव भी आया है। भारतीय दर्शनों में चरक का भी एक दर्शन बन गया। जैनागमों में चरक का एक दार्शनिक के रूप में उल्लेख मिलता है। चरक आयुर्वेद के मुख्य आचार्य हैं।

कर्म का वर्गीकरण

आयुर्वेद में जो मानस-दोष की सूची है, यदि जैन दर्शन की भाषा में कहें तो वह मोहनीय कर्म की प्रकृतियों की सूची है। मोहनीय कर्म की जो प्रकृतियां हैं, वे मन को विकृत करने वाली होती हैं। आठ कर्म हैं। जयाचार्य ने इनका वर्गीकरण कर इनको तीन भागों में बांट दिया— आवारक, अवरोधक और विकारक। कुछ कर्म हैं—आवरण पैदा करने वाले। वे कोई नुकसान नहीं करते, वे केवल पर्दा डाल देते हैं। ज्ञानावरण और दर्शनावरण—ये दो कर्म आवारक हैं। कुछ कर्म अवरोधक हैं, अवरोध पैदा करने वाले हैं। अन्तराय कर्म प्रतिघात करता है, शक्ति का स्खलन करता है। मोहनीय कर्म विकारक है, विकार पैदा कर देता है। जितनी भी विकृति है, चाहे दृष्टिकोण की विकृति है, आचरण या चारित्र की विकृति है, उसका घटक है मोहनीय कर्म। सीधी भाषा में कहें तो जितना भी बिगाड़ होता है वह मोहनीय कर्म करता है। दर्शनमोह दृष्टिकोण में विकार लाता है, चरित्रमोह चरित्र में विकार पैदा करता है। विकार करने वाला कर्म है मोहनीय कर्म।

अध्यात्म और आयुर्वेद

आयुर्वेद की भाषा में विकार पैदा करने वाला है— मानस-दोष। काम,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध, लोभ, भय, ईर्ष्या, मात्सर्य, मोह आदि मानस-दोष सूची के मुख्य सूत्र हैं। ये आयुर्वेद के सूत्र हैं या अध्यात्म के सूत्र हैं ? एक धार्मिक आदमी समझेगा—यह धर्म की बात कही जा रही है किन्तु आयुर्वेद स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार कर रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अपना मानसिक स्वास्थ्य सुरक्षित रखना चाहता है, चाहे वह धर्म को माने या न माने, धर्म में आस्था करे या न करे। जो अपना मानसिक स्वास्थ्य ठीक रखना चाहता है, उसे इन मानस-दोषों से बचना चाहिए। जो इनसे नहीं बचेगा, उसका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह पायेगा।

कभी-कभी दो दिशाएं एक साथ मिल जाती हैं। एक आध्यात्मिक व्यक्ति कहेगा— यदि तुम्हें पाप और अधर्म से बचना है तो क्रोध, लोभ, भय, ईर्ष्या, इन सबसे बचना होगा। यह अध्यात्म की वाणी होगी। स्वास्थ्य-शास्त्र को जानने वाला व्यक्ति कहेगा— यदि तुम शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहना चाहते हो तो मानस-दोषों— काम क्रोध, लोभ, भय, ईर्ष्या आदि से बचो। यह आयुर्वेद की वाणी है।

अन्तर है उद्देश्य में

आयुर्वेद का लक्ष्य है मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा और अध्यात्म का लक्ष्य है पाप से बचाव, अधर्म से बचाव। एक का उद्देश्य है आत्मा की रक्षा और दूसरे का उद्देश्य है स्वास्थ्य की रक्षा। उद्देश्य भिन्न होने पर भी विषय में कोई भेद नहीं है। विषय आ गया, क्रोध से बचना है, काम से बचना है। इन दोनों का एक सूत्र है। काम का मतलब है—इन्द्रिय विषयों के प्रति आसक्ति। काम की आसक्ति होती है, मनोबल टूट जाता है।

एक सैनिक लड़ रहा है युद्ध के मोर्चे पर। काम की आसक्ति आ गई। वह सोचेगा—पीछे क्या होगा ! नयी-नयी शादी हुई है, पत्नी का क्या होगा ? बस मनोबल टूट गया। एक व्यक्ति सबेरे-सबेरे लम्बी-लम्बी डींगें हांकता है मैं ऐसा कर सकता हूं वैसा कर सकता हूं। मैं कभी चिन्ता भी नहीं करता, चाहे कोई भी कष्ट आ जाए। ऐसा लगता है, इस जैसे मनोबल वाला व्यक्ति कोई दूसरा है ही नहीं। सांझ होते-होते समाचार आया, जवान बेटा दुर्घटना में मारा गया। बस, मनोबल पलायन कर गया, टूट गया। पता नहीं मनोबल था भी या नहीं। एक मानस-दोष पैदा हुआ और वह मनोबल को लील गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मात्सर्य

कछ मानस-दोष ऐसे होते हैं जो थोड़े मीठे होते हैं, तेज नहीं होते। उनका पूरा पता नहीं चलता। जब वे वेग में आते हैं तो स्थिति बदल जाती है, मन का बल टूट जाता है। मनसिक दोष जब तीव्र बन जाता है तब वह एक साथ मनोबल को चट कर जाता है।

मात्सर्य एक मानस-दोष है। दूसरे की विशेषता को सहन न करने की वृत्ति है मात्सर्य। मनोबल का एक अर्थ है— सहन करने की शक्ति। ईर्ष्या और मात्सर्य— इन दोनों का काम है सहन-शक्ति को नष्ट कर देना। ईर्ष्या से जलन पैदा हो जाती है। मात्सर्य से भरा व्यक्ति दूसरे की विशेषता को सहन नहीं कर सकता। वह क्रूर बन जाता है। कितनी ही कहानियां हमारे यहां प्रचलित हैं ईर्ष्या और मात्सर्य की। जहां एक व्यक्ति दूसरे की विशेषता को सहन नहीं कर सकता वहां सारी मानसिक स्थिति गड़बड़ा जाती है। यह स्थिति व्यापक बन गई है। आज सहन करने की कोई बात ही नहीं है। आज के युग में सबसे बड़ी बीमारी सहन न करने की बीमारी है। कोई किसी को सहन करना जानता ही नहीं। न बाप बेटे को सहन करना जानता है और न बेटा बाप को सहन करना जानता है। जहां बेटे की प्रशंसा की जाती है वहां बाप का मुंह उतर जाता है। वह सोचता है मेरी नहीं मेरे बेटे की प्रशंसा कर रहा है। उसका मन ईर्ष्या से भर जाता है।

भय

भय एक प्रबल मानस-दोष है। आदमी में भय इतना भरा पड़ा है कि वह निरन्तर भयभीत रहता है। आज ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिलता, जिसे पूर्ण अभय कहा जा सके। भ्गवान महावीर ने कहा— **सव्वओ अप्पमत्तस्स णत्थि भयं**— जो अप्रमत्त होता है, वह अभय होता है, उसे कहीं से भी भय नहीं होता। एक भी व्यक्ति मिलना मुश्किल है जो कहीं भी प्रमाद न करे। कहीं-न-कहीं कोई चूक, कोई विस्मृति हो जाती है। प्रमाद होता है तो भय होता है। जिस व्यक्ति के मन में थोड़ी भी आकांक्षा शेष है वह कभी अभय नहीं हो सकता। वह सोचता है— बात तो सही है किन्तु कह दूंगा तो सामने वाला विरोध करने लग जायेगाा। बस, तभी कहीं मन के एक कोने में अवरोध पैदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है, वह सचाई से दूर चला जाता है, अप्रमत्त नहीं रह जाता, प्रमाद में चला जाता है। जहां-जहां प्रमाद, वहां-वहां भय और जहां-जहां भय वहां-वहां मानसिक स्वास्थ्य की गिरावट। आज मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति किसे कहा जाए ? यह एक बड़ा प्रश्न है।

स्वस्थ है वीतराग

मानसिक दृष्टि से स्वस्थ आदमी को खोजना बड़ा मुश्किल है। अध्यात्म के क्षेत्र में एक व्यक्ति का ऐसा चरित्र मिलता है, जिसे मन की दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ कहा जा सकता है। वह है वीतराग या अप्रमत्त। साधना की भूमिकाओं में पांचवीं भूमिका गृहस्थ श्रावक की होती है। छठी भूमिका है मुनि की। अप्रमत्त मुनि को मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ कहा जा सकता है किन्तु उसके साथ वह समस्या जुड़ी हुई है कि अप्रमत्त अवस्था ज्यादा समय तक टिकती नहीं है। छठी भूमिका वाला मुनि प्रमत्त भूमिका में जीता है, वह कभी-कभी अप्रमत्त भूमिका में जाता है किन्तु अन्तर मुहुर्त के भीतर-भीतर फिर प्रमत्त की भूमिका में आ जाता है। वह अधिक समय तक रह नहीं पाता, क्योंकि उसमें प्रमाद है। यह भूमिका बदलती रहती है। मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ रहने के लिए अप्रमाद की भूमिका में आना आवश्यक है। अप्रमत्त भूमिका मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वास्थ्य की भूमिका है। वीतराग की भूमिका पूर्ण अप्रमत्त अवस्था की भूमिका है। शेष अल्पकालिक अप्रमत्त अवस्था की भूमिकाएं हैं। बिना वीतराग की भूमिका के किसी को पूर्ण स्वस्थ कह पाना कठिन होता है। मुनि को भी पूर्ण स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। उसके मन में भी समय-समय पर जाने कितने मानस दोष आ जाते हैं। मुनि कभी लोभ में, कभी क्रोध में, कभी अहंकार में चले जाते हैं। ये विकल्प आते रहते हैं। जब मुनि की यह स्थिति है तो एक गृहस्थ के बारे में क्या कहा जा सकता है ?

धर्म का कार्य

आयुर्वेद के आचार्यों ने मानस-दोषों की जटिलता पर काफी विचार किया और उनकी चिकित्सा भी बतलायी। होम्योपैथी में भी मानस-दोषों की चिकित्सा मिलती है। एक आदमी को अधिक क्रोध आता है तो क्या दवा देनी चाहिए। ज्यादा भय या लोभ है तो कौन-सी दवा देनी चाहिए। होम्योपैथी में इन सारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोषों की दवा निर्दिष्ट है । बीमारी के लक्षणों में भी ये दोष गिनाए गये हैं। इसीलिए यह होम्योपैथिक चिकित्सा पद्धति भी आयुर्वेदिक की तरह अध्यात्म के सन्निकट हैं । उसमें भी इन सारे दोषों की चर्चा की गई है । प्रेक्षाध्यान में भी यह चिकित्सा पद्धति विकसित है । किसी व्यक्ति को क्रोध आता है तो उसके लिए क्या चिकित्सा है ? लोभ की वृत्ति ज्यादा है तो उसके लिए क्या चिकित्सा है ? भय और क्रोध के लिए भी उपाय हैं । यदि मानसिक बीमारियों को मिटाने के लिए धर्म के पास कोई उपाय न हो तो मैं मानता हूं, वह धर्म भी निकम्मा बन जाएगा । धर्म शारीरिक बीमारियों को शायद न मिटा सके, पर मन तथा भाव की बीमारियों को भी यदि न मिटा सके तो यह बहुत चिन्ता की बात है । कोई व्यक्ति एक मुनि से कहे— 'महाराज ! क्रोध बहुत आता है, उपाय बताएं ।' मुनि यदि यह उत्तर दे— 'तुम्हारे कर्म का दोष है, तुम भुगतो' तो मैं मानता हूं इससे ज्यादा धर्म की असफलता और कोई नहीं है। धर्म की शरण में आने का अर्थ क्या है ? हम रोज उच्चारते हैं—**'धम्मं सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि'** । व्यक्ति धर्म की शरण में क्यों जाता है ? धर्म रोटी दे सके या न दे सके पर कम-से-कम वह मन की शांति, आत्मा की शांति, भावना की शांति दे सकता है, इसीलिए व्यक्ति धर्म की शरण में जाता है । यदि धर्म से उसे यह सब उपलब्ध नहीं होता तो मानना चाहिए कि इससे ज्यादा धर्म के क्षेत्र में निराशा की कोई बात नहीं है ।

उपाय है प्रेक्षाध्यान

प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में इस बात पर ध्यान दिया गया, शान्ति के उपायों को खोजा गया । क्रोध आता है तो उसका उपचार अलग होता है । लोभ की वृत्ति ज्यादा है तो उसके लिए अलग उपाय है । जितनी बीमारियां, उतनी दवाएं। कुछ दवाइयां सब रोगों में भी काम कर सकती है । एक आदमी में आदत है— वह तम्बाकू पीता है, जर्दा खाता है, शराब पीता है, उसे छोड़ना चाहता है, पर छोड़ नहीं पाता । वह व्यक्ति धर्म की शरण में आता है । अभी जोधपुर से एक बहुत बड़े डॉक्टर का पत्र आया— आर्मी का एक बहुत बड़ा ऑफिसर शराब से परेशान था । उसका लीवर काम नहीं कर रहा था । दवा से कोई लाभ नहीं हुआ । वह शराब छोड़ना चाहता है पर क्या करे ? उसे कहा गया— प्रयोग के द्वारा यह आदत छोड़ी जा सकती है । प्रेक्षाध्यान के शिविरों में प्रयोग करवाया जाता है नशा-मुक्ति का, व्यसन-मुक्ति का । लोग प्रयोग करते हैं, नशा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छूट जाता है। डॉक्टर ने भी शिविर में भाग लिया और शराब पीने की आदत से मुक्त हो गया।

अभ्यास करना सीखें

प्रेक्षाध्यान एक उपाय है मानस-दोषों को मिटाने का। मनोबल को सुरक्षित रखा जा सकता है। उसकी हानि के कारणों को निरस्त किया जा सकता है। अपेक्षा है— अभ्यास की। कोई चमत्कार या जादू का डण्डा नहीं कि घुमाया और ठीक हो गया। अपना अभ्यास और अपना श्रम। यदि इस क्रम से चलें तो इन मानस-दोषों से बचा जा सकता है, मनोबल को कम करने वाली शक्तियों से बचा जा सकता है। जिसका मनोबल सुरक्षित है, उसका मानसिक स्वास्थ्य सुरक्षित है। जिसका मानसिक स्वास्थ्य सुरक्षित है, सही अर्थ में उसने जीवन का अर्थ समझा है। सुखपूर्ण, शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए मनोबल के विकास की जरूरत है। उसके साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य की जरूरत है। जिस व्यक्ति को मनोबल और मानसिक सवास्थ्य— ये दो संपदाएं मिल जाती हैं, उसके लिए और सारी संपदाएं गौण बन जाती हैं। हम उपाय खोजें, अभ्यास को बढ़ाएं। इससे शरीर का भी भला होगा और मन का भी भला होगा, शांतिपूर्ण जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. निद्रा, अनिद्रा और अतिनिद्रा

समस्या अनिद्रा और अतिनिद्रा की

स्वास्थ्य और साधना—इन दोनों दृष्टियों से नींद पर विचार करना बहुत जरूरी है। जैसे भोजन हमारे लिए जरूरी है, वैसे ही नींद भी हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। भोजन कितनी मात्रा में किया जाए, यह एक प्रश्न है। नींद कितनी मात्रा में ली जाए, यह भी एक प्रश्न है। एक भाई ने कहा—मुझे नींद नहीं आती। अनिद्रा एक समस्या है। एक बहन ने बताया—मुझे नींद बहुत आती है। पढ़ने बैठूं तो नींद, सामयिक करने बैठूं तो नींद, ध्यान करूं तो नींद। ज्यादा नींद आना भी एक समस्या है। अनिद्रा भी एक समस्या है और अतिनिद्रा भी एक समस्या है। इन दोनों स्थितियों से कैसे बचा जा सकता है?

एक प्रश्न है—नींद क्या है? आयुर्विज्ञान का मत है—शरीर में विष जमा हो जाता है, थकान हो जाती है। उसी विष को निकालने के लिए नींद आती है। आयुर्वेद का मत है—**निद्रा श्लेष्म तमो भवाः**। नींद के दो कारण हैं—एक शारीरिक और दूसरा मानसिक। शारीरिक कारण है— श्लेष्म, कफ और मानसिक कारण है—तमोगुण। तमोगुण बढ़ता है तो नींद अधिक आती है, श्लेष्म बढ़ता है तो नींद अधिक आती है।

अनिद्रा के कारण

प्रश्न है अनिद्रा का कारण क्या है? आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत के अनुसार अनिद्रा के पांच कारण हैं—

(१) वायु का प्रकोप
(२) पित्त का प्रकोप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) मनस्ताप
(४) धातुक्षय
(५) अविघात

जब वायु और पित्त मात्रा में रहते हैं, तब कोई विकृति नहीं होती। जब इनकी मात्रा बढ़ती है तब विकृति पैदा हो जाती है। वायु और पित्त का प्रकोप तथा धातुक्षय— ये शारीरिक कारण हैं। मनस्ताप और अविघात— ये मानसिक कारण हैं। मानसिक चिन्ता है तो अनिद्रा होगी। मन में बार-बार चिन्ता उभरती है तो नींद उड़ जाती है। बहुत से लोग कहते भी हैं, तनाव के कारण नींद उड़ गई। कुछ लोगों में मानसिक तनाव निरन्तर बना रहता है, उन्हें नींद नहीं आती। एक कारण है मानसिक संताप।

अनिद्रा का एक कारण है धातुक्ष्य। शरीर की बहुत-सी धातुएं क्षीण हो जाती हैं तो अनिद्रा की स्थिति बन जाती है। पांचवां कारण है— अविघात। कोई ऐसा आघात लग जाता है जिससे नींद नहीं आती।

सत्त्वगुण : तमोगुण

महर्षि चरक ने और भी कारण बतलाए हैं। उनमें एक कारण है— सत्त्वगुण की वृद्धि। अच्छी भावना, अच्छी साधना और अच्छे विचार हो जाते हैं तो नींद भी नहीं आती। एक प्रेक्षाध्यानी ने बतलाया कि जब मेरे ध्यान की अवधि बढ़ी तो नींद कम हो गई। उसने समझा, यह कोई बीमारी हो गई। पर यह बीमारी नहीं है। ज्यों-ज्यों ध्यान की मात्रा बढ़ेगी, नींद घट जाएगी। इसका कारण है सत्त्वगुण की वृद्धि। नींद का कारण है तमोगुण और जागरण का कारण है सत्त्वगुण। सत्त्वगुण का कार्य है जगाना और तमोगुण का कार्य है नींद में ले जाना। जब सत्त्वगुण बढ़ता है तब अनिद्रा की स्थिति आ जाती है और जब तमोगुण बढ़ता है तब नींद ज्यादा आने लगती है। वायु, कफ, पित्त की वृद्धि से जो नींद कम आती है, वह बीमारी मानी जा सकती है किन्तु सत्त्वगुण की वृद्धि से नींद कम आने को बीमारी नहीं कहा जा सकता। यह एक विकास है। इसका अर्थ है— नींद की जरूरत कम हो गई। जिस व्यक्ति में सत्त्वगुण की वृद्धि हो जाती है वह नींद कम लेता है तो कोई कठिनाई नहीं होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिद्रा : अन्य कारण

अनिद्रा का एक कारण है— भय । भय के कारण भी अनिद्रा हो जाती है । क्रोध से भी अनिद्रा हो जाती है ।

अनिद्रा का एक कारण है— उपवास । उपवास से भी अनिद्रा हो जाती है । जिन्हें उपवास थोड़ा कठिन होता है, उन्हें कल्पनाएं आती रहती हैं— कब दिन निकले, किस चीज से पारणा करें— ये कल्पनाएं आती रहती हैं, नींद नहीं आती । अनिद्रा की स्थिति हो जाती है ।

शरीर और साधना के लिए नींद आवश्यक है । अगर व्यक्ति को समय पर नींद न आए और वह ध्यान करने बैठने बैठ जाए तो ध्यान कम होगा, नींद ज्यादा आएगी । साधना के लिए जरूरी है नींद, जिससे साधना में बाधा न पड़े । नींद शरीर के लिए भी जरूरी है ताकि शरीर हल्का हो जाए । एक नींद वह होती है, जिससे शरीर बिल्कुल हल्का हो जाता है । एक नींद वह होती है कि उठने के बाद शरीर भारी हो जाता है । इसे वैकारिकी निद्रा कहा जाता है ।

नींद से जुड़ा प्रश्न

प्रश्न होता है कि क्या साधना के क्षेत्र में अनिद्रा और अतिनिद्रा के निवारण का कोई उपाय नहीं है ? चिकित्सा के क्षेत्र में इनके उपाय बतलाए गए हैं। अनिद्रा है तो किस औषधि से उसका शमन किया जाए ? अगर अतिनिद्रा है तो किस औषधि द्वारा उसका शमन किया जाए ? चिकित्सा के क्षेत्र में औषधि का एक निरूपण है । अनिद्रा के जो बीमार हैं, वे नींद की गोलियां लेकर सोते हैं, लेकिन अतिनिद्रा वाला कोई दवा लेता हो, ऐसा सुनने में बहुत कम ही आता है । किन्तु आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका बहुत निरूपण है कि अतिनिद्रा के लिए किस औषधि का प्रयोग किया जाता है । साधना के संदर्भ में प्रश्न होता है—क्या कोई साधना का उपाय है, जिससे अनिद्रा और अतिनिद्रा—दोनों से ही बचा जा सके ? हर आदमी नींद लेता है । यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है । बड़ा जटिल है नींद का प्रश्न । शरीर से जुड़े हुए कुछ प्रश्न जटिल हैं । भोजन का प्रश्न भी ऐसा ही है । खाना, पीना, सोना, मौलिक मनोवृत्तियां, काम वासना तथा आवेग—ये सारे हमारे सामने बड़े प्रश्न हैं । इन प्रश्नों के इतने पहलू हैं कि पूरा समझे बिना वांछित फल नहीं मिलता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कब सोएं : कितना सोएं

प्रश्न है—रात को कब सोना चाहिए ? आयुर्वेद में सामान्यतः दिन में सोने का विधान नहीं है। स्वास्थ्य की दृष्टि से बतलाया गया—केवल ग्रीष्म ऋतु में दिन में सोया जा सकता है। वर्षा ऋतु में दिन में सोना, सर्दी ऋतु में दिन में सोना बीमारी को न्यौता देना है। दिवास्वाप—दिन में सोना स्वास्थ्य के लिए अनुकूल नहीं है। जो दिन में सोता है, उसको वायु का प्रकोप अधिक होता है, कफ का प्रकोप भी बढ़ जाता है। हमारे संघ की मर्यादा है कि सोलह वर्ष से ऊपर, पचास वर्ष से कम अवस्था वाला मुनि सामान्यतः दिन में सो नहीं सकता। नींद लेनी हो तो बैठे-बैठे या दीवार का सहारा लेकर नींद ले, पर लेटकर सो नहीं सकता। आयुर्वेद में भी ऐसा ही विधाान है कि व्यक्ति बैठे-बैठे नींद ले ले, पर लेटे नहीं। बहुत लोग ऐसे हैं, जो दोपहर में भोजन कर सोते हैं और तीन घंटे से पहले उठते नहीं। यह अधिक आराम भी बहुत सारी बीमारियों का कारण बनता है। अधिक श्रम बीमारियों का कारण बनता है या नहीं, यह एक प्रश्न है किन्तु अधिक आराम बीमारियों का निश्चित कारण बनता है।

रात को नींद लेने का प्रश्न भी प्रस्तुत होता है। रात में जल्दी सोना और जल्दी उठना, यानी नौ-दस बजे सोना और चार बजे ब्रह्म मुहूर्त में उठ जाना, यह स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम माना जाता है। जो हार्ट पेसेण्ट हैं, आजकल उन्हें यह सुझाव दिया जाता है कि वे जल्दी सोएं व जल्दी उठ जाएं। प्रातः चार-पांच बजे का जो समय होता है वह स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता की दृष्टि से बहुत काम का होता है। उस समय आकाश के सौरमण्डल से जो विकिरण होता है, वह मनुष्य के लिए बहुत उपयोगी होता है। जल्दी सोना और जल्दी उठ जाना बहुत लाभप्रद होता है। रात को कब सोना चहिए, कब उठना चाहिए इसका भी एक विवेक होना चाहिए। कुछ लोग दिन में नींद में डूबे रहते हैं और रात में भी नींद लेते हैं। इसे उचित नहीं माना जा सकता। सोने की भी एक सीमा है। इस सीमा को जानना साधना और स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है। यदि नींद ज्यादा आती है या नींद कम आती है तो क्या उपाय किया जा सकता है ?

अनिद्रा : साधना के प्रयोग

कायोत्सर्ग का उपयोग अनिद्रा के लिए नहीं है किन्तु अनिद्रा की बीमारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए कायोत्सर्ग बहुत महत्त्वपूर्ण है। समस्या यह है—कायोत्सर्ग करना चाहिए जागरूकता के साथ पर कायोत्सर्ग करने वाला व्यक्ति नींद में चला जाता है। अनिद्रा को मिटाने का एक उपाय है कायोत्सर्ग।

अनिद्रा को मिटाने का एक उपाय है पढ़ना, स्वाध्याय करना। पढ़ना शुरू करें, स्वाध्याय शुरू करें, पढ़ते-पढ़ते नींद आनी शुरू हो जाएगी। बहुत से लोग ऐसा ही करते हैं। बिस्तर पर जाते हैं, पुस्तक पढ़ते हैं, पढ़ते-पढ़ते नींद आ जाती है।

अनिद्रा को मिटाने का उपाय है—लेटकर गिनती शुरू करना। सौ से लेकर एक तक उल्टी गिनती करें। सौ से एक तक पहुंचने से पहले ही नींद आ जाएगी।

योग निद्रा भी अनिद्रा को मिटाने का एक प्रयोग है। योगनिद्रा कैसे ली जाती है ? पहले कोई आसन-व्यायाम कर लिया जाता है। प्रारम्भ में भुजंगासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन आदि कर लेने से अनिद्रा की स्थिति टल जाती है।

नींद के दो प्रकार

नींद के दो प्रकार और बतलाए गए हैं। एक है— मनःश्रम संभव। दूसरा है—शरीर-श्रम-संभव। मानसिक श्रम करने से जो नींद आती है, उसका नाम है मनःश्रम-संभव। शरीर का श्रम करने से जो नींद आती है वह है शरीर-श्रम-संभव। आसन शरीर का श्रम है, स्वाध्याय करना या उल्टी गिनती गिनना मानसिक श्रम है। इनसे भी नींद आने लग जाती है।

ये सारे अनिद्रा की बीमारी को मिटाने वाले साधनात्मक प्रयोग हैं।

गोलियां खाकर नींद लेना बहुत खराब है। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों द्वारा बहुत से लोगों ने नींद की गोलियां लेनी छोड़ दीं। अहमदाबाद में शिविर चल रहा था। उसमें एक बहिन अनिद्रा की बीमारी से ग्रस्त थी। वह नींद के लिए प्रतिदिन बीस-तीस गोलियां खाती थी। स्वाध्याय, आसन और कायोत्सर्ग का प्रयोग करने से तीस दिन में सारी गोलियां छूट गईं। चौथे दिन वह बिना गोली खाए नौ बजे सोयी और चार बजे उठी। प्रयोग के द्वारा बहुत कुछ छूट सकता है। बहुत सारी व्यर्थ की औषधियों से बचा जा सकता है किन्तु आदमी साधना-प्रयोग में आना नहीं चाहता, डॉक्टर की शरण में जाना अधिक पसंद करता है। दवा की शरण उसे ज्यादा अच्छी लगती है। एक बार जो साधना-शिविर में आ जाता है उसकी दृष्टि बदल जाती है, चिन्तन बदल जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिनिद्रा की समस्या : साधना के प्रयोग

अतिनिद्रा का प्रश्न कम जटिल नहीं है । नींद ज्यादा आए तो क्या करना चाहिए ? यदि वे प्रयोग किए जाएं जिनके द्वारा श्लेष्मा और तमोगुण की कमी हो तो अतिनिद्रा पर नियंत्रण किया जा सकता है जैसे एक प्राणायाम है भस्त्रिका। इससे नींद पर नियंत्रण किया जा सकता है । लम्बे समय तक भस्त्रिका कर लें तो गर्मी भी इतनी बढ़ जाती है कि शायद कुछ समय तक नींद आती ही नहीं । किन्तु इस प्रयोग से धीरे-धीरे निद्रा पर पूर्ण नियंत्रण किया जा सकता है और व्यक्ति स्वस्थ निद्रा की स्थिति में आ सकता है ।

कपालभाती प्राणायाम भी एक प्रयोग है । यह कफ को कम करता है, अतिनिद्रा की स्थिति को बदल देता है ।

एक प्रयोग है नाड़ी-शोधन । नाड़ी-शोधन का प्रयोग रोज किया जए तो अतिनिद्रा पर नियंत्रण किया जा सकता है ।

ये कुछ प्रयोग हैं, जिनके द्वारा नींद में कमी लायी जा सकती है । जो व्यक्ति भैंस के दूध का, दही का प्रयोग करेगा उसे नींद ज्यादा आएगी । जिसको अतिनिद्रा है, उसे भैस के दूध और दही से बचना चाहिए । चरक ने बताया जिसको नींद नहीं आती है, उसे भैंस का दूध पिलाना चाहिए । इसीलिए लोग स्वाद की दृष्टि से भैंस का दूध ज्यादा पसंद करते हैं किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से लोग भैंस के दूध के बजाय गाय का दूध अधिक पसंद करते हैं । उत्तराध्ययन की कथा में एक प्रसंग आता है । एक व्यक्ति को सपना दिलाना था । प्रश्न हुआ सपना कैसे आए ? उपाय बताया गया—आज रात इसे भैंस का दही खिला दो, रात को सपना आ जाएगा ।

प्रयोग हो गुरुगम से

कफ को बढ़ाने वाले द्रव्य नींद को बढ़ाते हैं । उन द्रव्यों से जो बचता है वह अतिनिद्रा के रोग से मुक्त होता है । कुछेक आसन भी ऐसे हैं जो अतिनिद्रा से बचाते हैं । मयूरासन यद्यपि कठिन है, कड़ा है, पर वह निद्रा को कम करता है । तैजसकेन्द्र पर ध्यान करने से नींद में कमी होती है । नाभि पर तैजस का ध्यान, दर्शनकेन्द्र पर लाल रंग का ध्यान, बाल सूर्य का ध्यान—ये सब अतिनिद्रा पर नियंत्रण करते हैं । किन्तु इस संदर्भ में एक बात ध्यान में रहे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब तक इनको पूरी तरह न समझ लें, पुस्तक पढ़कर ये उपाय न करें। क्योंकि गर्मी में दर्शनकेन्द्र पर हरे या लाल-पीले रंग का ध्यान कर लेते हैं तो गर्मी इतनी बढ़ जाएगी कि सिर फटने लग जायेगा। अगर तैजसकेन्द्र पर बल सूर्य का, अग्नि का ध्यान कर लेते हैं और ऊपर के केन्द्र पर नहीं करते हैं तो मन की चंचलता बड़ी भयंकर बन जाती है। इसलिए पूरी बात को गुरुगम से समझ कर ही प्रयोग करना लाभप्रद बनता है।

नींद पर ध्यान देना स्वास्थ्य की दृष्टि से भी जरूरी है और साधना की दृष्टि से भी जरूरी है। अतिनिद्रा और अनिद्रा—इन दोनों से बचकर सहज स्वाभाविक, स्वस्थ निद्रा की स्थिति में अगर व्यक्ति चला जाए तो मन प्रसन्न रह सकता है और मस्तिष्क हल्का रह सकता है, वह साधना की दृष्टि से भी बहुत विकास कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. अपना नियंत्रण अपने द्वारा

कठिन प्रक्रिया

मिट्टी कुम्हार से बोली—'मुझे पात्र बना दो !'

कुम्हार ने कहा—'क्यों ? किस लिए ?'

मिट्टी बोली—'मुझमें पानी रह सके और लोग अपनी प्यास बुझा सके तो मेरी सार्थकता होगी ।'

कुम्हार ने कहा—'तुम्हारी आकांक्षा तो ठीक है पर पात्र बनने के लिए बहुत कुछ सहना होगा ! पहले फावड़े को सहना पड़ेगा, फिर गधे को सहना पड़ेगा, फिर चाक पर चढ़ोगी, बाद में आग में तपाई जाओगी, इतना सब सहने की हिम्मत है ? यदि यह सब न सह सको तो वैसी-की-वैसी इस भूमि की गोद में पड़ी रहो ।'

मिट्टी ने कहा—'तैयार हूं !'

एक पूरी प्रक्रिया चली और घड़ा बन गया । खरीदा गया । गर्मी के मौसम में भोजन के बाद ठण्डा-ठण्डा पानी पिया गया । ऐसा लगा—मानो अमृत ही पिया गया है । उस मिट्टी ने अपने-आपको सफल माना कि मुझमें रखा हुआ पानी कितने चाव और प्रीति के साथ पिया जा रहा है । उसे अपनी सार्थकता का भी अनुभव हुआ ।

प्रत्येक व्यक्ति के मन में सफलता की आकांक्षा होती है । वह सफल और सार्थक जीवन जीना चाहता है । कोई भी निरर्थक और विफल जीवन जीना पंसद नहीं करता । किन्तु सफल जीवन जीने के लिए कितना करना पड़ता है, इसकी यदि तैयारी हो तो सफलता निश्चित मिल सकती है । यदि वह तैयारी नहीं है तो सफलता की आकांक्षा को छोड़कर मिट्टी जैसी अवस्था में रहना होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सफलता और सार्थक जीवन जीने के लिए मन का नियंत्रण बहुत जरूरी है। जो व्यक्ति मन पर नियंत्रण करना नहीं जानता वह सफलता का जीवन जी नहीं सकता। घड़ा बनने की जो प्रक्रिया है, वह खुदाई से लेकर आग में तपने तक की प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया मन के नियंत्रण में भी लागू होती है। यह सीधी बात नहीं है, इसमें काफी सहना पड़ता है। सहते-सहते एक स्थिति ऐसी आती है, मन पर नियंत्रण हो जाता है। जब नियंत्रण की स्थिति आती है तब जीवन की सफलता और सार्थकता की अनुभूति होने लगती है। व्यक्ति सोचता है जीवन सफल हो गया, मैं धन्य हो गया।

प्रश्न है—मन पर नियंत्रण कौन करता है ? इसे समझे बिना जीवन को सार्थक बनाने की विधि प्राप्त नहीं होगी। कौन है नियंत्रक ? वह किस कक्ष में बैठा-बैठा, मन पर नियंत्रण करता है ?

इन्द्रिय का काम

हमारे ज्ञान के तीन साधन हैं—इन्द्रिय, मन और बुद्धि। इन्द्रियों का काम है विषयों को ग्रहण करना। शब्द, रस, रूप, गंध और स्पर्श— इन पांच विषयों को ग्रहण करने के लिए पांच कोष्ठक बने हुए हैं। एक का काम है रूप को जान लेना, दूसरे का काम है शब्द को जान लेना, तीसरे का काम है रस को जान लेना, चौथे का काम है गंध को जान लेना और पांचवें का काम है स्पर्श को जान लेना। सबका अपना-अपना निश्चित काम है। कान देखता नहीं है और आंख सुनती नहीं है। यह सामान्य नियम है। अपवाद की बात अलग है। जैन साहित्य में संभिन्न-श्रोतोलब्धि की चर्चा है। इस लब्धि का विकास हो जाए तो कान देख सकता है और आंख सुन सकती है। पर सामान्य स्थिति में ऐसा नहीं होता। प्रत्येक इन्द्रिय का अपना-अपना निश्चित काम है। कान का काम सुनना है, आंख का काम है देखना, नाक का काम है सूंघना, जीभ का काम है चखना और त्वचा का काम है छूना। पांच इन्द्रियां हैं और पांच ही विषय हैं। किन्तु इन्द्रियां तब काम करती हैं जब उनके पीछे मन की शक्ति हो, मन की प्रेरणा हो। जानने की शक्ति तो इन्द्रियों की है पर प्रेरणा है मन की। एक आदमी बैठा है। तत्काल मन में आया—आकाश में कहीं बादल तो नहीं है ? मन की प्रेरणा मिली और आंख आकाश को देखने लगी। यह मन द्वारा प्रेरित इन्द्रिय का ज्ञान है। मन की प्रेरणा होती है तो इन्द्रियां अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने विषय में प्रवृत्त हो जाती हैं। यह हमारे ज्ञान की एक लब्धि है। अब इन्द्रियों का नियंत्रण करना है। कौन करेगा ? अभी मुझे नहीं देखना है। ध्यान करता हूं, देखना नहीं है, आंख बंद कर ली। क्या आंख बंद आंख की प्रेरणा से हुई या किसी दूसरी प्रेरणा से हुई या मन की प्रेरणा से हुई है ? मन की प्रेरणा मिली, चिन्तन आया—ध्यान करना है, कायोत्सर्ग की मुद्रा में बैठ गए और आंख बंद कर ली। इसका अर्थ है—इन्द्रियों का संचालन मन के द्वारा होता है। मन चाहता है तो वह इन्द्रियों को प्रेरित कर देता है, मन चाहता है तो उन्हें रोक देता है। यह प्रवृत्ति और निवृत्ति, संचालन और निरोध—दोनों काम मन के नियंत्रण में है। इन्द्रियों का सारा नियंत्रण है मन के हाथ में।

मन का काम

ज्ञान का दूसरा साधन है मन। इन्द्रियों का एक-एक विषय निश्चित है। सामने केला पड़ा है। आंख ने देख लिया। आंख का काम पूरा हो गया। केला अच्छा है या बुरा, उसे खाना हितकर है या अहितकर, यह विचारणा करना मन का काम है। इन्द्रिय का काम है—विषय का ग्रहण और मन का काम है—गुण और दोष, हित और अहित की विचारणा करना। बुद्धि का काम है निश्चित करना, निर्णय करना। सामान्यतः हमारे जीवन के व्यवहार में इन्द्रिय और मन—इन दोनों का काम पड़ता है। दोनों से सारा व्यवहार चलता है। हम ज्यादा जीते हैं इन्द्रिय-चेतना के स्तर पर और मन की चेतना के स्तर पर।

जटिल प्रश्न

मन के कई कार्य हैं—चिन्तन, विचार, और संकल्प। चरक ने मन के पांच काम बताए हैं—चिन्तन करना, विचार करना, ऊह करना (संभावना व तर्क करना), भावना करना और संकल्प करना। अभी सोचना है या नहीं, अभी तर्क करना है या नहीं, यह कौन कर्त्ता है ? आयुर्वेद में इस प्रश्न पर विचार किया गया कि मन पर नियंत्रण कौन कर रहा है ? कौन मन को संचालित कर रहा है ? इसके उत्तर में कहा गया मन का नियंत्रण करता है स्वयं मन। अपना नियंत्रण अपने द्वारा। तर्कशास्त्र में, न्यायशास्त्र में ऐसा उल्लेख मिलता है—**सुशिक्षितोऽपि नटवटुः न स्वस्कन्धमधिरोढं पटुः**—चाहे नटपुत्र कितना ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशिक्षित है, अनेक करतब दिखाने वाला है, पर अपने कन्धे पर नहीं चढ़ सकता। वह दूसरे के कन्धे पर चढ़कर ही करतब दिखा सकता है। **सुतीक्ष्णोऽपि असिधारा न स्वं क्षेत्तुमाहितव्यापारा**—तलवार की तेज धार किसी को काट सकती है पर अपने-आपको नहीं काट सकती। मन अपने-आप पर कैसे नियंत्रण रखेगा ? बड़ा जटिल प्रश्न है। किन्तु अपने द्वारा अपना नियंत्रण हो सकता है।

इन्द्रिय सापेक्ष : इन्द्रिय निरपेक्ष

मन का एक काम होता है इन्द्रिय सापेक्ष। इन्द्रियों ने जो कच्चा माल दिया, उसे पक्का बनाना मन का काम है। वह अच्छा है या बुरा है, यह सोचना मन का इन्द्रिय सापेक्ष काम है। एक मन का काम होता है—इन्द्रिय निरपेक्ष। इन्द्रियों की कोई अपेक्षा नहीं होती। मन स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है। उसमें एक काम है इन्द्रिय-निग्रहः, यानि इन्द्रियों पर नियंत्रण करना। यह मन का स्वतंत्र कार्य है। इसमें इन्द्रियों की सापेक्षता नहीं है, केवल इन्द्रियों का नियंत्रण है। जैसे जीभ से काम लेना या नहीं लेना, बोलना या नहीं बोलना, चखना या नहीं चखना ? इसका चयन या निश्चय करना मन का काम है। इसे कहा जाता है इन्द्रिय-निग्रह।

आयुर्विज्ञान का मत

मन का दूसरा काम है—स्वनिग्रह, अपने-आप पर निग्रह करना। चंचलता, उच्छृंखलता यह मन का काम है तो अपने-आप पर नियंत्रण करना भी मन का काम है। इस बात की पुष्टि के लिए वर्तमान विज्ञान को भी देख लेना चाहिए। आयुर्विज्ञान के अनुसार हमारी बहुत सारी क्रियाओं का नियंत्रक है हाइपोथेलेमस। हाइपोथेलेमस एक प्रकार से नियंत्रण करने वाला है। भूख-प्यास— दोनों का वह नियंत्रण करता है। नींद और जागरण का भी नियंत्रण वह करता है। सुख और पीड़ा का नियंत्रण भी वह करता है। संवेगों का नियंत्रण भी वह करता है। क्रोध को उद्दीप्त और शान्त करना भी उसका काम है। उसके दो कक्ष बने हुए हैं। एक का नाम है—ड्रोसोमिलियम और दूसरे का नाम है—डेन्ट्रोमिलियम। ड्रोसोमिलियम का काम है क्रोध को उद्दीप्त करना और डेन्ट्रोमिलियम का काम है क्रोध को शांत करना। बहुत बार गुस्सा ज्याद आता है। तब भीतर से एक आवाज आती है—बस ! रुक जाओ। इतन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुस्सा मत करो कि हार्ट अटैक हो जाए। एक है नियंत्रण का कक्ष और एक है उद्दीपन का कक्ष। उद्दीपन करने वाला भी हमारा एक अवयव है और उस पर नियंत्रण करने वाला भी एक अवयव है। हाइपोथेलेमस के द्वारा ये दोनों काम हो जाते हैं।

यही है आत्मानुशासन

चंचलता भी मन के द्वारा और उस पर नियंत्रण करना भी मन के द्वारा होता है। ये दोनों बातें एक साथ कर सकते हैं। अगर यह रहस्य समझ में आ जाए तो ध्यान की प्रक्रिया बहुत सम्यक् चल सकती है, हम अपना नियंत्रण अपने द्वारा कर सकते हैं। मन अपने द्वारा अपने-आप पर नियंत्रण कर सकता है। सन्देह की कोई गुंजाइश भी नहीं है। अगर हम उचित प्रक्रिया करें तो मन स्वयं अपने पर नियंत्रण कर सकता है और उचित प्रक्रिया न करें तो मन को दौड़ने के लिए खुला मैदान मिल जाता है। अपने द्वारा अपने पर नियंत्रण, मन का मन पर नियंत्रण— इसी का नाम है आत्मानुशासन। यही है अपने पर अपना अनुशासन। यह स्थिति समझ में आए तो मन के तूफान बंद हो सकते हैं। जिन लोगों का मन सध गया, वे मन पर अपना नियंत्रण कर लेंगे।

मन का तूफान शान्त हो

कहा जाता है—समुद्र की खाड़ी में तूफान आ गया। समुद्र की लहरें इतनी ऊंची जा रही थीं कि दूर-दूर के पदार्थ वह अपने चपेट में लेने लगीं। समुद्र तट पर एक अलमस्त व्यक्ति पड़ा है। लोगों ने उसे सचेत किया, अरे! देखते नहीं हो, कितना जोर का तूफन है ? चपेट में आ जाओगे, डूब जाओगे। चलो, हमारे साथ, दूर चले चलो। अलमस्त बोला—चिंता की क्या बात है? तूफान आता है, चला जाता है। आदमी भी आता है, चला जाता है। उसका उत्तर सुन सारे दंग रह गए। लोग तूफान को देखना भूल गए, उसे ही देखते रहे कि देखें क्या होता है ? संयोग ऐसा बना—पांच मिनट में तूफान बंद हो गया। लोगों ने कहा—आप घबराए नहीं, यह क्या ? अलमस्त ने कहा— सुनो ! तुम घबराते हो। पहले अपने मन का तूफान बंद करो तो यह तूंफान अपने-आप बंद हो जाएगा। कितनी मर्म की बात है।

सबसे ज्यादा खतरनाक है यह मन का तूफान। तूफान उसी के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खतरनाक होता है जिसका अपने मन का तूफान शांत नहीं। यह बात समझ में आ जाए कि मन में अपने-आप पर नियंत्रण करने की क्षमता है तो मन का तूफान बंद हो सकता है। पर प्रश्न है कैसे होगा ? दो काम कैसे होंगे ? मन इधर दौड़ा जा रहा है, उधर नियंत्रण भी कर रहा है। ये दोनों बातें कैसे होंगी ?

नियंत्रण का सूत्र

एक हमारी शक्ति है धृति। उसके द्वारा मन का नियंत्रण होता है। मन प्रवृत्ति के द्वारा चंचलता करता है और धृत्ति के द्वारा नियंत्रण करता है। दशवैकालिक सूत्र के दूसरे अध्ययन में एक सुन्दर विवेचन है। प्रश्न हुआ कि श्रामण्य किसके होता है ? मुनि कौन हो सकता है ? साधुत्व किसके टिकता है ? उसमें बताया गया—**जस्स धिईतस्स सामण्णं**—जिसमें धृति है, उसके श्रामण्य है। जिसमें धृति नहीं, उसके श्रामण्य नहीं। धृति क्या है ? विषयों के प्राप्त होने पर भी इन्द्रियों का निग्रह करना, इसी का नाम है धृति। तीर्थंकर या वीतराग में धृति होती है, यह तो स्वाभाविक है किन्तु जो अवीतराग हैं उनके लिए भी धृति का निरूपण किया गया है। कीर्ति, मति, धृति—ये उनकी विशेषताएं होती हैं। धृति के द्वारा मन का नियंत्रण हो जाता है। इसका अर्थ है—एक क्रियात्मक शक्ति के द्वारा मन की चंचलता होती है और धृति शक्ति के द्वारा उस पर नियंत्रण होता है। धृति का प्रयोग करना तभी संभव है जब यह समझ में आ जाए—धृति एक ऐसी शक्ति है, जिसका अभ्यास किया जा सकता है, जिसके मन अपने-आप पर नियंत्रण कर सकता है। इसके लिए अहंकार का विलय भी आवश्यक है। विद्वत्ता का अहंकार, पैसे का अहंकार, पद का अहंकार, सत्ता का अहंकार, जाति का अहंकार, व्यापार का अहंकार—जब तक ये अहंकार रहेंगे तब तक नियंत्रण की शक्ति नहीं आएगी, धृति का विकास नहीं होगा।

बाधक है अहंकार

कहा जाता है, डाकू और साधू—दोनों को यमदूत ले गये। दोनों को यमदूतों ने यमराज के सामने प्रस्तुत किया। यमराज ने कहा—'अपना परिचय दो।' डाकू खड़ा हुआ, बोला—'महाराज मैं डाकू हूं। जीवनभर डकैती की, लोगों को लूटा, धमकाया, बुरा काम किया अब मुझे ऐसा दण्ड दो कि मैं प्रायश्चित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर सकूं और मेरी बुराई छूट जाए ।' यमराज ने कहा—बड़ा अच्छा आदमी है । अपनी सचाई अपने-आप बयान कर रहा है, सुधरना भी चाहता है । यमराज ने कहा—'मेरी इच्छा थी, तुम्हें नरक में भेजूं पर तुमने जिस भावुकता का परिचय दिया, उससे मैं प्रभावित हुआ हूं । मैं तम्हें नरक में नहीं भेजूंगा । तुम इस संन्यासी के साथ रहो ताकि तुम्हारे मन में जो प्रेरणा जागी है, उसे तुम साकार कर सको और अच्छे आदमी बन सको ?' संन्यासी ने कहा—'महाराज ! यह क्या कर रहे हैं ? मैंने जीवन-भर नियस-व्रत पाले हैं । अपना भला किया है, लोगों का भला किया है । मैं स्वर्ग में जाने का अधिकरी हूं और आपने इस डाकू के साथ कर दिया । आप अपने फैसले को बदल लें । इसे नरक में भेजें और मुझे स्वर्ग में ।' यमराज ने कहा—'तुमने बहुत गलत बात कही है । मैं तुम्हें दण्ड देता हूं । जाओ, तुम इस डाकू की सेवा में रहो !' संन्यासी ने कहा—'मुझे तो स्वर्ग मिलना चाहिए । आपके यहां भी अन्याय होता है ! यह क्यों?' यमराज ने कहा, 'निश्चित ही तुमने सौ अच्छे काम किए होंगे पर तुम्हारा अहंकार गया नहीं । अतः तुम्हें इस डाकू की सेवा में रहना ही होगा ।'

दो मार्ग

अहंकार नहीं जाता है तो पासा पलट जाता है; नियंत्रण की बात दूर चली जाती है, मन ज्यादा चंचल हो जाता है । यह कोरी पढ़ाई-लिखाई मन को कभी शांत नहीं करती । जिन लोगों में अपने ज्ञान का, अपनी पढ़ाई का अहंकार जाग जाता है, उनका मन और ज्यादा चंचल हो जाता है । मन पर नियंत्रण करने की चाभी उन्हें नहीं मिलती । इस चाभी को पाने के लिए साधना के मार्ग पर, ध्यान के मार्ग पर चलना जरूरी है । एक अनपढ़ आदमी कुछ भी नहीं जानता किन्तु वह अपने मन पर इतना नियंत्रण कर सकता है कि जिसकी कोई कल्पना नहीं की जा सकती । छोटे-छोटे बच्चे आठ दिन का उपवास करते हैं । आठ दिन तक कुछ नहीं खाना, जीभ को सम्पूर्ण विराम दे देना, क्या आश्चर्य नहीं है ? यह कला पढ़ाई से नहीं आती । यह आता है साधना का मार्ग जागने से, धृति का विकास होने से । उपभोग की प्रचुर सामग्री होने पर भी इन्द्रियों का निग्रह करना वास्तव में विस्मयकारी बात है ।

दो मार्ग हैं—एक है बौद्धिक विकास का मार्ग और दूसरा है साधना के विकास का मार्ग । बौद्धिक विकास का मार्ग जानकारी देने वाला मार्ग है । हम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार पत्र पढ़ते हैं तो पता लग जाता है कहां क्या हो रहा है ! दुनिया-भर की गतिविधियों की जानकारी मिल जाती है। किन्तु मन पर कैसे काबू करना चाहिए, इन्द्रियों पर कैसे निग्रह करना चाहिए, यह पढ़ाई का काम नहीं है। यह विषय है साधना का। साधना के द्वारा जब अपनी धृति का विकास कर लिया जाता है, विषयों के होने पर भी उनसे दूर रहने की बात सीख ली जाती है तब जीवन की सफलता और सार्थकता असंदिग्ध हो जाती है।

यह नहीं मान लेना चाहिए—एक दिन या दस दिन की साधना करने से धृति का विकास हो जाएगा। किन्तु जिसका यह लक्ष्य बन जाता है मुझे धृति का विकास करना है तो वह धीरे-धीरे सफलता का वरण कर सकता है।

खीझ और रीझ

राजा ने एक व्यक्ति को फांसी का दण्ड दिया। फांसी पर चढ़ाने से पूर्व उसकी अंतिम इच्छा पूछी गई। उसने कहा—मैंने राजा की खीझ तो बहुत देख ली, अब रीझ देखने का मन है।'

राजा ने उस व्यक्ति को हाथी के हौदे पर बिठाया, रत्नों से भरा कटोरा स्वयं अपने हाथों से दिया और कहा—'जाओ ! सुख से रहो। कभी बुराई मत करना।'

जो मन की खीज देखता है उसे मन की रीझ देख लेनी चाहिए। जब हम मन की खीज देखते हैं, तो ऐसा लगता है, जैसे जीवन की संध्या पर जा रहे हैं किन्तु फांसी से पूर्व अंतिम इच्छा जाग जाए, मन की रीझ भी देख लें तो न जाने जीवन में कितनी ऊंचाइयों को छू लेने की स्थिति बन जाए ! यह खीज के बाद रीझ देखने की बात ध्यान-साधना द्वारा पाई जा सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. क्या मानसिक स्वास्थ्य चाहते हैं ?

प्रत्येक मनुष्य स्वस्थ जीवन जीना चाहता है। बीमार या रुग्ण होना कोई नहीं चाहता। रोग को बड़ा कष्ट और संकट माना गया है। रोग हो जाए तो कोई रोगी बना रहना नहीं चाहता, इसीलिए व्यक्ति चिकित्सा की शरण में जाता है, डॉक्टर की शरण में जाता है। जितना ध्यान शारीरिक स्वास्थ्य पर दिया गया है उतना मानसिक स्वास्थ्य पर नहीं दिया गया और जितना ध्यान मानसिक स्वास्थ्य पर दिया गया है, उतना ध्यान भावात्मक स्वास्थ्य पर नहीं दिया गया।

मूल कारण है भाव

बीमारी का मूल कारण है भाव। भावनात्मक बीमारियां पैदा होती हैं तो मन की बीमारियां पैदा होती हैं। मन की बीमारियां पैदा होती हैं तो तन की बीमारियां पैदा होती हैं। ऐसा नहीं है कि सारी बीमारियां भाव या भावना से ही आती हैं। कुछ बीमारियां शारीरिक भी होती हैं, पर बहुत सारी बड़ी बीमारियां भीतर से आती हैं, भावना से आती हैं। वे भावना से मन पर उतरती हैं, मन से तन पर उतरती है। हमारा ध्यान वहां नहीं जाता। शरीर के चिकित्सकों ने इस बात पर ध्यान दिया कि बीमारी का मूल कारण शरीर है, जर्म्स हैं, वायरस हैं या वात-पित्त और कफ हैं। आयुर्वेद के आचार्यों ने वात, पित्त और कफ पर ध्यान दिया। आज के डॉक्टर वायरस और जर्म्स पर ध्यान देते हैं। भावनात्मक बीमारियों पर ध्यान सहज नहीं जा पाता है। धर्म के आचार्यों ने, अध्यात्म के आचार्यों ने इस बात पर ध्यान दिया—जब तक भावना पवित्र नहीं है, विशुद्ध नहीं है, तब तक ये बीमारियां पैदा होती रहेंगी। उन्होंने कहा—भावना का परिष्कार करो। भावना का परिष्कार, मन का परिष्कार और शरीर का परिष्कार—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये तीन स्थितियां हैं । प्रेक्षाध्यान के शिविर में जो लोग आते हैं, वे मुख्यतया भावना के परिष्कार के लिए आते हैं । मन और शरीर का परिष्कार अपने आप प्रासंगिक रूप में हो जाता है ।

प्रश्न है चाह का

भावना और शरीर—इन दोनों के बीच का सेतु है—मन । मानसिक आरोग्य ठीक रहता है तो भावना को भी ठीक रहने का बल मिलता है, शरीर को भी ठीक रहने का बल मिलता है । हम मन को पकड़ें । मानसिक स्वास्थ्य—यह शब्द बहुत प्रचलित है । इसे हम अधिक आसानी से समझ जाते हैं । भावनात्मक स्वास्थ्य का प्रयोग करें तो कम लोग समझ पाएंगे । जिनका धर्म से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है, वे नहीं समझ पाएंगे । यदि हम मानसिक आरोग्य या स्वास्थ्य का प्रयोग करें तो लोगों को समझने में सुविधा होगी । इसीलिए सीधा प्रश्न पूछा गया—क्या मानसिक आरोग्य चाहते हैं ? नहीं चाहते—यह शायद किसी का उत्तर नहीं होगा । हर व्यक्ति यही कहेगा— मानसिक स्वास्थ्य चाहते हैं । चाहना एक बात है और चाह के अनुरूप आचरण करना बिलकुल दूसरी बात है । बहुत लोग चाह के अनुरूप आचरण नहीं करते और जबरदस्ती कराया नहीं जा सकता । दुनिया में और सब कामों में जबरदस्ती हो सकती है, किन्तु चाह को जबरदस्ती नहीं बदला जा सकता ।

राजा और मुल्ला नसीरुद्दीन

एक राजा के मन में एक बात उठी—दुनिया में झूठ बहुत चलता है । यह झूठ का प्रचलन अच्छा नहीं है । मैं ऐसा कोई उपाय करूं कि मेरे राज्य में कोई झूठ न बोल सके । राजा ने घोषणा करवा दी—जो आदमी झूठ बोलेगा, उसे फांसी पर लटका दिया जाएगा । लोगों में तहलका-सा मच गया, दहशत पैदा हो गई । एक आतंक-सा छा गया । लोगों ने मान रखा था, झूठ के बिना काम नहीं चलता । बड़ी मुसीबत हो गई । मुल्ला नसीरुद्दीन राजा के पास गया । राजा ने कहा—'देखो ! मैंने ऐसी व्यवस्था कर दी है कि कोई झूठ नहीं बोलेगा ।' मुल्ला बोला—'महाराज ! आपने जो व्यवस्था की है क्या वह सफल होगी ? क्या किसी को जबरदस्ती बदला जा सकता है ?' राजा ने कहा—'क्यों नहीं बदला जा सकता ?' नसीरुद्दीन ने कहा—'ठीक है, मैं भी देखूंगा ।' दूसरे दिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुल्ला ने शहर के दरवाजे में प्रवेश किया। शहर के दरवाजे में प्रवेश करते समय चौकीदार का पहला प्रश्न होता था—तुम क्यों आए हो ? मुल्ला से भी यही प्रश्न पूछा गया। मुल्ला बोला—'फांसी पर लटकने के लिए।' चौकीदार बोला— 'तुम झूठ बोलते हो।' मुल्ला ने कहा—'मैं सच कहता हूं। यदि तुम्हें संदेह है तो फांसी पर लटका कर देख लो।' चौकीदार बोला—'अगर लटका दिया तो तुम्हारी बात सच हो जाएगी।' राजा भी उस समय भ्रमण के लिए उस दरवाजे पर आए हुए थे। राजा की ओर संकेत कर मुल्ला ने कहा—'इसीलिए तो मैंने महाराज से कहा था कि किसी से जबरदस्ती सच बुलवाया नहीं जा सकता। मुझे मरना नहीं है किन्तु आप फांसी पर लटकाएं तो मेरी बात सच होती है। यदि नहीं लटकाओगे तो मेरी बात झूठी हो जाएगी। यानि मैं झूठ बोल गया।'

प्रश्न है मानसिकता का

बड़ा मुश्किल है किसी को मनचाहा बना देना, किसी की मानसिकता को बदल देना। किसी को मारा जा सकता है, जबरदस्ती बदला नहीं जा सकता। आजकल मारना सहज और सामान्य बात हो गई है। अंधाधुन्ध गोलियां चलाकर या बम-विस्फोट कर एक साथ कितने ही व्यक्तियों को मार डालना आसान है किन्तु किसी के मन को बदलना किसी महान सन्त या सम्राट् के भी हाथ में नहीं है। सम्राट् किसी को मार सकता है किन्तु बदल नहीं सकता।

मानसिकता का प्रश्न बड़ा जटिल है। मानसिक स्वास्थ्य की समस्या एक उलझी हुई समस्या है, इसीलिए उसके समाधान की तीव्र चाह का होना अपेक्षित है। चाह के साथ उपाय का योग हो तो मानसिक स्वास्थ्य की समस्या सुलझ सकती है। चाह के अभाव में जबरदस्ती उपाय बतलाने का अर्थ भी नहीं होगा। यदि हम मानसिक स्वास्थ्य चाहते है तो इन सात सूत्रों पर विचार-विमर्श करें, इनकी मीमांसा करें—

१. प्राणशक्ति का सन्तुलन
२. सम्यक् श्वास
३. आहार-संयम
४. क्रोध का उपशमन
५. तनाव का विसर्जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. आत्म-निरीक्षण
७. जीवन-शैली में बदलाव

१. प्राणशक्ति का सन्तुलन

जीवन का अर्थ है—प्राण । प्राण का अर्थ है—जीवन । हम प्राणी कहलाते हैं । जिसके पास प्राण की शक्ति है, वह प्राणी है । आदमी मरता है तो हम कहते हैं—श्वास बन्द हो गया, मर गया । हार्ट बन्द हो गया, मर गया । नाड़ी की गति बन्द हो गई, मर गया । यह सही बात नहीं है । यह एक परीक्षण है, इसे क्लिनिकल जांच कहा जा सकता है । किन्तु यह पूरा सही नहीं है । न जाने कितने लोग जिन्दा जलाए जाते हैं । बहुत सारे लोग मरने से पहले ही जला दिए जाते हैं । उन्हें सतही लक्षणों के आधार पर मृत मान लिया जाता है । हृदय का धड़कना, नाड़ी का चलना, श्वास का आना—ये सब ऊपरी लक्षण हैं । जब तक भीतर में प्राण शक्ति शेष है, तब तक आदमी मरता नहीं है। अभी हाल में ही एक घटना प्रकाश में आई है । उससे इस सचाई की पुष्टि हुई है । एक आदमी गंभीर रूप से बीमार हो गया । बड़े-बड़े डॉक्टर उपचार में लगे थे । क्लिनिकल जांच और परीक्षण कर उसे मृत घोषित कर दिया । चार-पांच घंटे बाद अचानक उसके हार्ट ने फिर काम करना शुरू कर दिया । सारे डॉक्टर आश्चर्यचकित रह गए । उन्होंने फिर से प्रयत्न शुरू किए । दवाइयां, इन्जेक्शन आदि दिए जाने लगे । कई घंटों तक वह जिया । दस-पन्द्रह घंटों के बाद वह व्यक्ति हार्ट अटैक से मरा किन्तु मूल में वह मरा नहीं था ।

जीवन का आधार

हिन्दुस्तान की पुरानी पद्धति में ऐसे प्रसंग पर ओझा लोगों को बुलाया जाता था । ओझा आता । एकान्त में मृत व्यक्ति पर चादर डाल देता । चादर के भीतर हाथ डालकर पूरे शरीर पर हाथ फेरता । वह मालूम कर लेता—कहीं प्राण अटका हुआ तो नहीं है । उस बिन्दु को पकड़ने की कला उसे ज्ञात होती थी । यदि प्राण कहीं अटका हुआ होता तो वह उसे पुनः सक्रिय बना देता, आदमी जिन्दा हो जाता । कभी-कभी ऐसी घटनाएं घटती हैं, मरा हुआ आदमी पुनः जिन्दा हो जाता है । उसे देखकर कुछ लोग डरकर भागने लगते हैं । वे मानते हैं—भूत हो गया । वस्तुतः वह मरा नहीं था, मरा हुआ जान

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

लिया गया था। कभी-कभी ऐसा भी होता है—मृत व्यक्ति को चिता पर लिटा दिया गया जलाने के लिए, अचानक वह उठकर बैठ जाता। ऐसी अनेक घटनाएं हो चुकी हैं।

हमारा सारा जीवन प्राण के आधार पर चलता है, किन्तु हम प्राण का संतुलन नहीं रख पाते। प्राण-शक्ति का अपव्यय बहुत करते हैं। बोलते हैं तो प्राणशक्ति खर्च होती है, चलते हैं तो प्राणशक्ति खर्च होती है, इन्द्रियों के उपयोग में प्राणशक्ति खर्च होती है किन्तु उसका अधिक व्यय न करें, उसे आवश्यकता से अधिक खर्च न करें। बोलना जरूरी है किन्तु क्या लगातार बोलना, जरूरत से ज्यादा बोलना जरूरी है? सोचना जरूरी है किन्तु क्या दिन-रात सोचते ही रहें? सोचने की भी सीमा होनी चाहिए। आंख लगातार खुली रखना भी अच्छा नहीं है। प्राण-शक्ति का इन सारी ऐन्द्रयिक क्रियाओं से व्यय होता है।

आय और व्यय का संतुलन करें

प्राणशक्ति का अधिक मात्रा में व्यय करने वाला एक घटक है—आवेश। क्रोध, लोभ, भय—ये सब प्राणशक्ति का असीमित व्यय करते हैं। वासना, संभोग—ये प्राण-ऊर्जा को बहुत खर्च करते हैं। ये सारे प्राणशक्ति को खर्च करने के रास्ते हैं। जो व्यक्ति मानसिक स्वास्थ्य चाहता है, उसे सबसे पहले ध्यान देना होगा—प्राणशक्ति का आवश्यकता से ज्यादा खर्च न हो। आय-व्यय का संतुलन बिगड़ने का मतलब है—घाटा या दिवाला। हम प्राणशक्ति के आय और व्यय का संतुलन बिगाड़कर जीवन का दिवाला न निकालें। भोजन करना, श्वास लेना, ये प्राणशक्ति को बढ़ाने के उपाय हैं किन्तु यदि आय कम और व्यय ज्यादा होगा तो इसका मन पर प्रभाव पड़ेगा। हम कहते हैं—डिप्रेशन हो गया, मानसिक अवसाद हो गया, शिथिलता आ गई। इसका कारण है—प्राण शक्ति का असंतुलन। यदि हम मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहना चाहते हैं तो प्राण शक्ति का सन्तुलन बनाए रखें। यह सन्तुलन मानसिक स्वास्थ्य का महत्त्वपूर्ण उपाय है।

२. *सम्यक् श्वास*

मानसिक स्वास्थ्य का दूसरा सूत्र है—सम्यक् श्वास। सही ढंग से श्वास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेना सीखें। यदि छोटा श्वास लेते हैं, टूटता हुआ श्वास लेते हैं तो प्राणशक्ति का व्यय बहुत ज्यादा होगा। हम पूरा और गहरा श्वास लें। पूर्ण श्वास का लक्षण है—सांस लेते समय पेट फूले और छोड़ते समय पेट सिकुड़े। श्वास लेते समय केवल छाती फूले तो समझना चाहिए कि श्वास लेने का तरीका सही नहीं है, गलत है। कुछ योगी या व्यायाम कराने वाले प्रशिक्षक बताते हैं—श्वास लो तो सीना एकदम फूल जाए। यह बात सही नहीं है। वस्तुतः छाती फूलनी चाहिए श्वास को रेचन करते समय। पेट सिकुड़ेगा तो छाती फूलेगी। श्वास लेते समय पेट फूलना चाहिए, छाती सिकुड़नी चाहिए। यह सही श्वास की क्रिया है। इसे ऑकल्ट साइंस में डायाफ्रामेटिक ब्रीदिंग कहते हैं।

३. आहार का संयम

मानसिक स्वास्थ्य का तीसरा सूत्र है—आहार संयम। आहार का संयम करना एक जटिल समस्या है। आदमी आहार पर नियन्त्रण रख सके, यह बहुत बड़ी बात है, किन्तु नियन्त्रण नहीं हो पाता। जब कोई मनोगत वस्तु सामने आती है, व्यक्ति सारे नियम और सिद्धान्त भूल जाता है। तपस्या करना, उपवास करना कठिन है। वह भी सरल हो सकता है। किन्तु खाए और आहार का संयम करे, यह शायद ज्यादा कठिन है। मैंने ऐसे लोगों को देखा है, जो मासखमण की तपस्या कर लेते हैं किन्तु जहां खाने का प्रसंग आता है, वहां संयम नहीं करते। बहुत जटिल प्रश्न है आहार संयम का। आहार संयम यानि अधिक न खाना। खाने में प्राणशक्ति खर्च होती है। उत्सर्ग करने में और अधिक प्राणशक्ति खर्च होती है। जो मानसिक स्वास्थ्य चाहते हैं, उसके लिए यह अनिवार्य शर्त है कि वे आहार पर ध्यान दें।

चार प्रश्न

क्या खाएं ? कैसे खाएं ? कितनी बार खाएं ? कब खाएं ? इन चार प्रश्नों पर गंभीर चिंतन करना होगा। आम आदमी की समस्या यह है कि वह काम से फुरसत मिलने के बाद रात को दस-ग्यारह बजे खाता है। रात को खाना खाने का समय नहीं है। यह पाचन तन्त्र के लिए बिल्कुल उल्टा समय है। जब तक सूर्य की किरणें मिलती रहें तब तक खाने का समय है। सूर्य न उगे, तब तक खाने का समय नहीं। सूर्य अस्त हो जाए, तब खाने का समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं । हमारे जितने पाचन तन्त्र के अवयव हैं, वे सूर्य के प्रकाश में सक्रिय रहते हैं । सूर्य का प्रकाश न मिलने पर वे निष्क्रिय बन जाते हैं । पाचक रसों का स्राव भी ठीक नहीं होता । हम इसे धर्म का सिद्धान्त मानें या न मानें किन्तु यह स्वास्थ्य का सिद्धान्त है । रात्रि-भोजन स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं है । खाते ही लेट जाना, नींद में चले जाना भी स्वास्थ्य के प्रतिकूल हैं । जब हम नींद लेते हैं, आमाशय और पक्वाशय काम करना बंद कर देते हैं । पाचन-क्रिया करने वाले बहुत सारे अवयव भी ऐसी स्थिति में अपना काम करना बन्द कर देते हैं । वे अन्न को पचाएंगे नहीं, वह जहां पड़ा है, वहीं पड़ा रहेगा, सड़ेगा। यह मान्यता आज के विज्ञान की है । पाचक रसों के बारे में आयुर्वेद का और आज के मेडिकल साइंस का कथन है—नींद की स्थिति में पाचन-तन्त्र की क्रिया बन्द हो जाती है या मन्द पड़ जाती है इसलिए आहार के बारे में कुछ सावधानियां जरूरी हैं ।

नया प्रयोग

आहार के असंयम से शरीर में विष जमा होता है । हालांकि भोजन के बाद थोड़ा बहुत विष जमा होता है पर ज्यादा खा लिया जाए तो अधिक विष जमा हो जाता है । कभी जोधपुर से एक डॉक्टर आए । उनका नाम है नरेश भंडारी । उन्होंने कहा—आजकल हम लोग भी एक प्रयोग करते है । रोगियों से कहते हैं । खाओ, कितनी ही बार खाओ, कितनी ही चीजें खाओ । बस, एक कांच की नली या शीशी में डालते जाओ । दिन भर जो कुछ भी खाओ, चाय, बिस्कुट रोटी उसका थोड़ा-थोड़ा अंश उसमें डालते जाओ । सुबह उसे ध्यान से देखो । अगर उसमें सड़ांध नहीं है तो तुम्हारे पेट में भी सड़ांध नहीं है । जब सड़ांध या बदबू पैदा होगी तो वह निश्चय ही ऊपर जाएगी, दिमाग को खराब करेगी । आहार के साथ स्वास्थ्य का कितना सम्बन्ध है, किन्तु इस पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है । यदि मन को स्वस्थ रखना है तो वह केवल कल्पना से नहीं होगा, इसके लिए आहार-संयम के प्रति भी अधिक जागरूक होना होगा ।

४. क्रोध का उपशमन

मानसिक स्वास्थ्य का चौथा सूत्र है—क्रोध का उपशमन । यह बिलकुल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साफ बात है कि क्रोध यदि आता है तो मन बिगड़ता रहेगा, उलझता रहेगा। जो व्यक्ति मानसिक स्वास्थ्य चाहता है उसे क्रोध को शान्त रखना जरूरी है। क्रोध इसलिए आता है कि आदमी सोचता नहीं है। यदि व्यक्ति थोड़ा गंभीर चिन्तन करे तो क्रोध आने का प्रसंग भी कम हो जाए।

हिन्दुस्तान के बादशाह ने अपने वजीर को किसी बात पर मंत्रणा करने के लिए चीन के बादशाह के पास भेजा। वह वहां पहुंचा। बातचीत की। चीन के बादशाह ने एक अजीब-सा प्रश्न पूछ लिया—'वजीर ! बताओ, तुम्हारे बादशाह और मैं—इन दोनों में बड़ा कौन है ?' बड़ा टेढ़ा प्रश्न था। अपने बादशाह को छोटा कैसे बताए और जिसका अतिथि बना हुआ है, उसे भी छोटा कैसे बताए। वजीर बड़ा बुद्धिमान था। वह बोला—'हुजूर ! इसमें बताने की क्या बात है ? आप स्वयं जान लें—मेरा बादशााह दूज के चांद के समान है और आप पूनम के चांद के समान हैं।' बादशाह इस उत्तर से खुश हो गया—'देखो, अपने बादशाह को दूज का चांद बताया और मुझे पूनम का।' वजीर लौटकर हिन्दुस्तान आया। वजीर के साथ आए कुछ चुगलखोरों ने अवसर पाकर बादशाह के कान में फूंक मार दी—जिस वजीर पर आपने विश्वास कर इतना बड़ा दायित्व सौंपा, वह आपके बारे में कैसी खोटी बातें कहता है ? सारी बात सुनकर बादशाह क्रोध में आग-बबूला हो गया। सामान्य से आदमी को भी कोई आकर कह दे कि अमुक ने तुम्हारे बारे में बड़ी हल्की बात कही है तो उसे भी क्रोध आए बिना नहीं रहेगा। वजीर बादशाह के सामने हाजिर हुआ। बादशाह के तेवर को देखकर वह समझ गया कि बात पहुंच गई है।

बादशाह क्रोध में उबल पड़ा—'वजीर ! क्या मैंने तुझे इसलिए भेजा था कि वहां जाकर मेरी तौहीन करो।'

वजीर ने कहा—'जहांपनाह ! आपने जो सुना है, वह ठीक बात है। मैंने ऐसा कहा था, पर कम-से-कम मेरी पूरी बात तो सुन लें।'

बादशाह ने कहा—'सुनाओ।'

वजीर ने कहा—'वहां मैंने आपको दूज का चांद और उसे पूनम का चांद कहा। इस पर विचार ही नहीं किया।'

बादशाह ने कहा—'इसमें विचार करने की कौन-सी बात है ? क्या मैं दूज और पूनम के चांद का मतलब नहीं समझता ?'

वजीर ने कहा—'यही तो सोचने की बात है। दुनिया में दूज का चांद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूजा जाता है। पूनम के चांद को कोई नहीं पूजता। वह तो निरन्तर घटता ही जाता है। दूज के चांद की कला निरन्तर बढ़ती रहती है।'

बादशाह संतुष्ट हो गया, प्रसन्न हो गया।

गुरजिएफ की शिक्षा

बात सोचने की है। आदमी सोचता नहीं है। जो भी बात सामने आती है, उसी पर उबल पड़ता है, बरस पड़ता है। इससे मन में अशांति पैदा होती है। अगर हम प्रत्येक घटना पर सोच-विचार करें तो ऐसा नहीं होता। रूस में एक प्रसिद्ध साधक हुआ है गुरजिएफ। वह जब मरने लगा तो उसके लड़के ने कहा—'आपका अन्तिम समय है, हमें कुछ शिक्षा दो।' गुरजिएफ ने कहा—'मुझे सिर्फ एक बात कहनी है क्रोध करने का कोई प्रसंग आए तो कम-से-कम चौबीस घंटा पहले क्रोध मत करना। यदि सोचने को चौबीस घंटा मिल जाए तो कोई क्रोध करेगा ही कैसे ? हमारे बहुत सारे न्यायाधीश ऐसा ही प्रयोग करते हैं। कोई फौजदारी का या कोई क्रिमिनल केस आता है तो केस दायर करने वाले व्यक्ति को दो-चार घंटे का समय दे देते हैं। न्यायाधीश उनसे कहता है—'किसी एकांत कमरे में बैठ जाओ। चार-पांच घंटे बाद तुम्हारी सुनवाई होगी।' इस प्रयोग का जो रिजल्ट आया, वह बहुत उत्साहवर्धक रहा। जो केस दायर हुए उसमें से सत्तर प्रतिशत वापस चले जाते। पांच घंटे सोचने का समय मिल जाता है तो क्रोध का पारा अपने आप नीचे उतर जाता है। क्रोध एक आवेग की स्थिति में आता है, जो समय के अन्तराल पर स्वतः शांत होने लगता है। क्रोध का उपशमन करना मानसिक आरोग्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

५. *तनाव का विसर्जन*

मानसिक स्वास्थ्य का पांचवां सूत्र है—तनाव का विसर्जन।

आदमी तनाव के कारण मानसिक पीड़ा भोगता है। तनाव बहुत आ जाता है तो वह एक गांठ का रूप बना लेता है। वह गांठ मन को दूषित बनाती रहती है। हमारे जीवन में तनाव आ सकता है। जिस दुनिया में हम जीते हैं, उसमें तनाव आने के अनेक कारण हैं। तनाव की संभावना हमेशा बनी रहती है, पर तनाव का विसर्जन करना सीख जाएं तो उससे होने वाली हानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से बच जाएंगे । तनाव इकट्ठा करते जाएं, रेचन करना न जानें तो एक बड़ी समस्या खड़ी हो जाएगी । शायद ही कोई ऐसा मिले, जिसे किंचित् मात्रा में तनाव न आता हो । तनाव कम या ज्यादा हो सकता है किन्तु वह होता सब में है । हम इसका भी श्वास की तरह रेचन करें, मन में ही घुटते न रहें ।

सास बहू में रोज झगड़ा चलता था । एक दिन झगड़े में बहू तनाव से भर गई । उसने अपना निर्णय सुनाया—'मैं अब तुम्हारे यहां की रोटी नहीं खाऊंगी ।' रसोई घर से निकल दूसरे कमरे में जाकर बैठ गई । पूरा दिन बीत गया । शाम तक रोटी नहीं खाई । रात को जोरदार भूख लगी, किन्तु करे क्या? वह तनाव से भरकर फैसला सुना चुकी थी । सबेरे घर के सभी लोग नाश्ते पर बैठे थे । वह सामने कैसे जाए ? वह किवाड़ के पीछे आकर खड़ी हो गई । सास ने देख लिया । सास समझ गई । बहू सामने आने में झिझक रही है । उसने अपने बेटे को इंगित कर कहा—छाछ रोटी-रायता पड़ा है, जाओ बहू को कह दो । कहने की जरूरत ही नहीं पड़ी । बहू बोल उठी—मैं किवाड़ के पीछे खड़ी हूं, कोई बुलाने भी आए !

सारा तनाव खत्म हो गया, वह सामने आकर बैठ गई ।

जिसके कारण तनाव हुआ है उसके साथ मिल-बैठकर तनाव मिटा लें। यदि सामने वाला व्यक्ति जिद्दी है, तनाव दूर करने में कोई सहयोग नहीं देता तो रेचन की दूसरी पद्धति को काम लें । दोनों हाथ की अंगुलियों को एक-दूसरे से मिला दें । ऐसा दस-बीस बार करें । तनाव का रेचन शुरू हो जाएगा। दीर्घश्वास का प्रयोग भी तनाव को दूर करता है । कायोत्सर्ग का प्रयोग भी इसका एक प्रमुख उपाय है । यदि हम इन छोटे-छोटे प्रयोगों को सीख लें तो मानसिक तनाव से दूर रहेंगे ।

६. *आत्म-निरीक्षण*

मानसिक स्वास्थ्य का छठा सूत्र है—आत्म-निरीक्षण ।

जो व्यक्ति आत्म-निरीक्षण नहीं करता उसका मानसिक स्वास्थ्य ठीक नही रहता । व्यक्ति के द्वारा कभी अच्छा काम होता है तो कभी बहुत गलत काम भी हो जाता है लेकिन वह जैसा भी करता है, उसका रोज निरीक्षण करता रहे तो गलत काम कम होंगे, अच्छे काम अधिक होते चले जाएंगे । जो एक व्यापारी की तरह अपने आचरण का, अपने व्यवहार का लेखा-जोखा नहीं रखता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका मन स्वस्थ नहीं रह सकता। बहुत आवश्यक है—आत्म-निरीक्षण। हम आत्म-निरीक्षण करते रहें, अपनी भूल का पता चलता रहेगा। जितनी अपनी भूल की स्वीकृति आत्म-निरीक्षण के क्षणों में होती है, उतनी दूसरों के कहने पर कभी नहीं होती। यह एक बहुत बड़ा प्रायश्चित्त है और मानसिक स्वास्थ्य का बहुत बड़ा साधन भी।

७. *जीवन-शैली में बदलाव*

मानसिक स्वास्थ्य का सातवां सूत्र है—जीवन-शैली में बदलाव।

आज की जीवन-शैली है भागदौड़ की, स्पर्धा की, होड़ की। आज आदमी आर्थिक होड़ में उलझा हुआ है, सामाजिक होड़ में उलझा हुआ है। इस होड़ या प्रतिस्पर्धा में एक आदमी दूसरे से बहुत आगे निकल जाना चाहता है। यह तेज रफ्तार उसकी जीवन-शैली का अंग बन चुका है। इसका थायरायड ग्लैंड पर, चयापचय की क्रिया पर बहुत असर होता है। हमारी जो सारी मेटाबोलिज्म की क्रिया है, वह इससे प्रभाावित हो जाती है। यह होड़, प्रतिस्पर्धा, अति महत्त्वाकांक्षा, तत्परता की जीवन-शैली मन को बहुत क्षुब्ध बना देती है, बीमार बना देती है, प्रकम्पित कर देती है।

मानसिक स्वास्थ्य चाहने वाला कोरा चाहे ही नहीं, सच्ची चाह है तो राह भी खोजे और राह के लिए ये सात सूत्र हमारे सामने प्रस्तुत हैं। यदि हम सचमुच मानसिक स्वास्थ्य चाहते हैं तो हमें इन सात सूत्रों को आलम्बन लेना ही होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. व्यक्तित्व के तीन प्रकार

यह सावन का महीना है। वर्षा ऋतु है और गर्मी भी है। क्या सदा सावन का ही महीना रहता है ? इससे पहले आषाढ़ का महीना था, ग्रीष्म ऋतु थी। उससे पहले बसंत ऋतु थी। ऋतु का चक्र बदलता रहता है। समय बदलता रहता है, परिस्थितियां बदलती रहती हैं। प्रश्न है—केवल ऋतुचक्र ही बदलता है या मनुष्य भी बदलता है ? इस संसार में कोई भी तत्त्व ऐसा नहीं है जिसमें परिवर्तन न होता हो। प्रत्येक तत्त्व में परिवर्तन होता है। मनुष्य भी सदा एकरूप नहीं रहता। वह जन्मता है, बच्चा होता है, किशोर बनता है, युवा बनता है, प्रौढ़ बनता है, बूढ़ा बनता है। नये-नये रूपों में ढलता ही चला जाता है। यह एक स्थूल बात है। एक दिन में आदमी कितना बदलता है, चौबीस घंटों में कितना बदलता है, इस पर हम विचार करें तो पाएंगे—प्रातःकाल जो आदमी था बारह बजे वह नहीं रहा। जो बारह बजे था, तीन बजे वह नहीं रहा और जो तीन बजे है, छह बजे वह नहीं रहेगा। यह स्थूल बात है। प्रति सेकेंड आदमी बदलता चला जाता है और इस बदलाव का मुख्य हेतु बनता है मन। मन की स्थिति बदलती जाती है तो आदमी भी बदलता चला जाता है। वह एक जैसा लगता ही नहीं है।

परिवर्तन का नियम

एक प्रौढ़ महिला प्रसंगवश अपने छोटे बच्चे को अपनी शादी का एलबम दिखा रही थी। उसमें एक चित्र में उसके साथ एक युवक खड़ा था।

बच्चे ने कहा—'मम्मी ! यह कौन है।'

महिला ने कहा—'तेरा पापा है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बच्चे ने कहा—'ये पापा हैं तो फिर अपने घर में जो गंजा आदमी रहता है, वह कौन है?'

'वह भी तेरे पापा हैं ।'

यह परिवर्तन का नियम है, जो व्यक्ति कभी जवान था, आज बूढ़ा बन गया । कभी घुंघराले बाल थे, आज गंजा हो गया । जो इस नियम से अनभिज्ञ है, उनके सामने यह प्रश्न उठता रहता है—यह कौन है और वह कौन है? नियम को जो जानता है, उसके सामने समस्या पैदा नहीं होती । हम परिवर्तन के नियम को नहीं जानते इसीलिए बहुत बार उलझ जाते हैं । एक व्यक्ति को देखा, वह प्रातःकाल दूसरे के साथ बहुत अच्छा व्यवहार कर रहा है । उसी व्यक्ति को दोपहर में देखा, वह क्रोध से उबल रहा था । सुबह वह शांतिनाथ था, दोपहर होते-होते वह ज्वालानाथ बन गया । इतना अन्तर आ गया । आदमी सोचता है—क्या वह वही आदमी है, जिसे प्रातःकाल देखा था । आदमी तो वही है, किन्तु उसका मन बदल गया इसलिए आचरण भी बदल गया, व्यवहार भी बदल गया ।

व्यक्तित्व : तीन प्रकार

आचरण और व्यवहार का मन से बहुत गहरा सम्बन्ध है । हम कभी-कभी आचरण को देखकर कल्पना कर सकते हैं कि अमुक व्यक्ति का मन कैसा है और कभी-कभी मन की स्थिति भांपकर आचरण की कल्पना कर सकते हैं। दोनों में गहरा सम्बन्ध जुड़ा हुआ है । ऐसा क्यों है ? यह परिवर्तन क्यों होता है ? इसका कारण क्या है ? इस कारण की खोज की गई । धर्म के आचार्यों ने खोज की और आयुर्वेद के आचार्यों ने भी खोज की । अध्यात्म और आयुर्वेद—दोनों बहुत आस-पास चले हैं । आयुर्वेद के एक सिद्धांत की चर्चा के आधार पर हम समझें—मन के विषय में आयुर्वेद की क्या मान्यता है ? मन के आधार पर मनुष्यों को किस प्रकार बांटा गया है, उनका वर्गीकरण किया गया है ?

आयुर्वेद के अनुसार तीन प्रकार के व्यक्तित्व होते हैं—सात्विक, राजसिक और तामसिक । जिसका मन सत्त्वगुण प्रधान होता है वह सात्त्विक व्यक्ति होता है, जिसका मन रजोगुण प्रधान होता है वह राजसिक व्यक्तित्त्व होता है और जिसका मन तमोगुण प्रधान होता है वह तामसिक व्यक्तित्त्व होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामकरण का आधार

क्या जो सात्त्विक है, वह सात्विक ही रहता है ? जो राजसिक है वह राजसिक ही रहता है ? जो तामसिक है, वह तामसिक ही रहता है ? यह नहीं कहा जा सकता—एक व्यक्ति सदा सात्त्विक ही रहता है, राजसिक या तामसिक ही रहता है । जीवन के प्रातःकाल में जिस व्यक्ति को बहुत सात्त्विक देखा, जीवन के उत्तरार्द्ध में वह राजसिक बन जाता है और जीवन की सन्ध्या में वही व्यक्ति तामसिक भी बन जाता है । जिस व्यक्ति को जीवन के पूर्वार्द्ध में तामसिक देखा, वह जीवन के उत्तरार्द्ध में सात्त्विक बन जाता है । यह परिवर्तन होता रहता है इसीलिए चोर कभी साहूकार बन जाता है और साहूकार कभी चोर बन जाता है । डाकू संत बन जाता है । मनोदशा के आधार पर यह सारा परिवर्तन होता है । प्रश्न है—जब यह परिवर्तन होता रहता है तो फिर किसी व्यक्ति को सात्त्विक बनने का हेतु क्या है ? हम किसी व्यक्ति को क्यों सात्त्विक कहें ? सूक्ष्मता से चिन्तन किया गया तो पता चला कि इसका भी एक कारण है । एक ही दिन में आदमी तीन प्रकार की अवस्थाओं को भोग लेता है । किसे सात्त्विक माना जाए ? किसे राजसिक और तामसिक माना जाए ? इसका बहुत अच्छा समाधान दिया गया—जिस व्यक्ति में जिस तत्त्व की बहुलता होती है, उसके आधार पर उसका नाम बन जाता है । जिस व्यक्ति में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है, उसे सात्त्विक, जिस व्यक्ति में रजोगुण की बहुलता होती है उसे राजसिक और जिस व्यक्ति में तमोगुण की बहुलता होती है उसे तामसिक कहा जाता है । केवल प्रधानता के आधार पर यह नामकरण हुआ है ।

उदाहरण की भाषा

हम इसे उदाहरण की भाषा में समझें । एक व्यक्ति व्यापारी है । वह क्षत्रिय नहीं है, शूद्र नहीं है, ब्राह्मण भी नहीं है । क्या एक व्यापारी कभी पढ़ता नहीं है ? अध्ययन नहीं करता है ? एक व्यापारी अध्ययन भी करता है किन्तु जिस समय वह अध्ययन करता है, उस समय वह व्यापारी नहीं होगा, ब्राह्मण बन जाएगा । जिस समय वह अपने घर-परिवार की सुरक्षा का काम करेगा, क्षत्रिय बन जाएगा । जिस समय वह सफाई का काम करेगा, शूद्र बन जाएगा । मुख्यता के आधार पर यह नामकरण किया गया । एक आदमी को मूर्ख कहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। क्या उसमें समझदारी नहीं होती ? जिसको समझदार कहा जाता है, उसमें मूर्खता नहीं होती ? क्या ऐसा कोई समझदार नहीं है, जिसमें मूर्खता का अंश न हो ? क्या ऐसा कोई मूर्ख नहीं है, जिसमें समझदारी का अंश न हो। हम जिसे पागल कहते हैं, कभी-कभी वह पागल आदमी भी बड़ी समझदारी की बातें करता है, और कभी-कभी समझदार आदमी भी पागलपन की बात कर लेता है। नामकरण होता है केवल प्रधानता के कारण।

नाम निरपेक्ष सत्य नहीं है

एक व्यक्ति मूर्खतापूर्ण कार्य अधिक करता था इसलिए सब उसे मूर्ख कहते थे। लोगों से उसने कहा—'भाई ! हमें ऐसा क्यों कहते हो?' लोगों ने कहा—'तुम्हारा लक्षण ही ऐसा है, क्या करें?' उसने सोचा—यहां रहना ठीक नहीं है। यहां सब मूर्ख ही कहेंगे, इसलिए परदेश चला जाऊं। वह वहां से बहुत दूर चला गया। किसी गांव में पहुंचा। उसे प्यास लगी थी। उसने देखा—कुएं के पास नल लगा हुआ है। नल में टोंटियां लगी हुई हैं। वह एक टोंटी के पास जाकर बैठ गया। टोंटी को खोला और पानी पी लिया। पानी पीने के बाद वह सिर हिलाने लगा। वह सिर हिलाता जा रहा है और पानी गिरता जा रहा है। दूर से एक आदमी यह तमाशा देख रहा था। उसने कहा—'अरे, मूर्ख ! यह क्या कर रहा है?' उसने चौंककर उस व्यक्ति को देखा और आश्चर्य से पूछा—'तुमने मेरा नाम कैसे जान लिया ?' व्यक्ति बोला—'तेरे लक्षणों से पता चल रहा है कि तू मूर्ख है।'

नाम कोई निरपेक्ष सत्य नहीं है। परम सत्य भी नहीं है। वह एक सापेक्ष सत्य है, सत्य का एक छोटा-सा अंश है। उसी के आधार पर सारा नामकरण होता है।

प्रश्न है लक्षण का

प्रश्न है—सात्त्विकता का लक्षण क्या है ? राजस और तामस का लक्षण क्या है ? किन लक्षणों, आचरणों और व्यवहारों के आधार पर ये नामकरण किए गए हैं ? आयुर्वेद में इनकी पूरी मीमांसा और विवेचन किया गया है। जिसमें ये आचरण और व्यवहार होते हैं, उसमें सत्त्वगुण की प्रधानता है। इसी प्रकार राजसिक और तामसिक गुण की प्रधानता का भी पता चलता है। मन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म है, भीतर है। चेतना और भी सूक्ष्म है, और भी भीतर है। हमें न चेतना का पता चलता है, न मन का पता चलता है। हमें पता चलता है स्थूल का। जो स्थूल है, वही हमें दिखाई देता है, उसी का पता चलता है। सूक्ष्म न हमें दिखाई देता है, न उसका पता चलता है। मन में क्या है, कभी-कभी कोई निकलवा लेता है तो पता चल जाता है। अन्यथा पता चलता है व्यवहार से।

युक्ति का परिणाम

दो व्यक्तियों में झगड़ा हो गया। वे न्यायालय में उपस्थित हुए। न्यायाधीश ने पूछा—'बोलो ! क्या बात है ? क्या समस्या है ?'

एक व्यक्ति ने कहा—'हम दोनों ने मिलकर अमुक वृक्ष के नीचे पांच सौ सोने की मुहरें गाड़ी थीं। इसने सारी मुहरें चुपके से निकाल लीं। अब वहां सिर्फ गढ़ा है, मुहरें गायब हैं। आप न्याय करें—मुझे ढाई सौ मुहरें दिलवाएं।'

न्यायाधीश ने दूसरे व्यक्ति से पूछताछ की।

उसने कहा—'मुझे इस बारे में कुछ पता नहीं। यह जिस वृक्ष के बारे में बता रहा है, वह कहां है, यह भी पता नहीं है। यह बिलकुल झूठे आरोप लगा रहा है।'

न्यायाधीश बड़ा बुद्धिमान था। उसने सोचा—ऐसे तो पता चलेगा नहीं। कोई युक्ति काम में लेनी चाहिए। उसे पहले व्यक्ति की बातों में सचाई की झलक मिली। न्यायाधीश ने पहले व्यक्ति से कहा—'तुम एक काम करो। उस पेड़ को एक बार फिर से देख आओ कि वहां क्या स्थिति है।'

न्यायाधीश का आदेश मानकर वह चला गया।

दस मिनट हो गए। न्यायाधीश ने अकुलाहट का भाव चेहरे पर लाकर अपनी घड़ी देखी और दूसरे व्यक्ति से कहा—'बहुत देर हो गई। अब तक तो वृक्ष के पास पहुंचकर उसे वापस आ जाना चाहिए।'

दूसरा व्यक्ति बोला—'नहीं साहब ! इतनी जल्दी कैसे आ जाएगा ?'

'क्यों ?'

'पेड़ तो यहां से बहुत दूर है।'

न्यायाधीश बोला—'तुम तो कह रहे थे कि तुम्हें पेड़ का पता ही नहीं, फिर कैसे कह रहे हो कि पेड़ बहुत दूर है ?'

वह युक्ति से पकड़ में आ गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पता चलता है व्यवहार के आधार पर

मन की बात बड़ी सूक्ष्म है। व्यक्ति क्या सोचता है, हमें पता नहीं चलता। किंतु व्यवहार और आचरण से पता चल जाता है कि उसके मन में क्या है? स्थूल बात है व्यवहार, आचरण। हम व्यवहार को देखते हैं, आचरण को देखते हैं। कुछ लोग हैं, जिन्हें बोलने का विवेक नहीं होता। कुछ भी बोल जाते हैं। जब उनसे कहा जाता है—आपने ऐसी बात, ऐसा शब्द क्यों कहा ? वे सफाई देते हैं—नहीं। मेरे मन में ऐसी कोई भावना नहीं थी। व्यक्ति यही कहेगा—तुम्हारे मन में क्या था, यह तो भगवान जाने या तुम जानो, पर तुम्हारा शब्द, तुम्हारा आचरण, तुम्हारी भावनाओं की जानकारी दे रहा है।

हम सबसे पहले आचरण या व्यवहार के प्रति सजग बनें। जब तक मुंह से गाली न निकले, क्रोध को सफल नहीं माना जाता। कहा गया—क्रोध को सफल मत बनाओ। क्रोध सफल तब होगा, जब मुंह से अपशब्द निकल जाएगा। क्रोध सफल तब होगा जब हाथ उठ जाएगा। तीन अवस्थाएं हो गईं—पहली अवस्था क्रोध की आन्तरिक अवस्था है। दूसरी अवस्था में क्रोध शब्द पर उतर आता है और तीसरी अवस्था में क्रोध शरीर पर उतर जाता है।

हम स्थूल दृष्टि वाले लोग हैं। हमारी आंखें स्थूल को पकड़ती हैं। सूक्ष्म को नहीं पकड़ सकतीं, इसलिए जो व्यक्ति साधना करता है उसे सबसे पहले स्थूल के प्रति जागरूक होना होता है। एक व्यक्ति बैठा है। उसे देखकर ही पता लग जाएगा कि यह साधना करने वाला है या प्रमादी है। बैठने का प्रकार, बोलने का प्रकार और सोचने का प्रकार साधक और प्रमादी में स्पष्ट अन्तर कर देगा।

साधना के द्वारा सबसे पहला परिवर्तन व्यवहार पर आना चाहिए, आचरण पर आना चाहिए। एक व्यक्ति साधना कर रहा है, धर्म कर रहा है, ध्यान कर रहा है और व्यवहार बिलकुल उलटा जा रहा है। साधना जाती है पूर्व में और व्यवहार जाता है पश्चिम में। अगर ऐसा होता है तो मानना चाहिए—भीतर कुछ बदला नहीं है, साधना फलित नहीं हुई है। साधना फलित होगी तो निश्चित ही व्यवहार में परिवर्तन आएगा। साधना का लक्षण है—वह व्यवहार में उतरे और उससे हम मन का पता लगा लें, मन का अंकन कर लें। जिस व्यक्ति में सात्त्विक मन का विकास हुआ है, उस व्यक्ति में विनम्रता का विकास होगा, अहंकार नहीं होगा। धृति का विकास होगा। उस व्यक्ति में तितिक्षा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आएगी, सहन-शक्ति आएगी, स्वार्थ नहीं होगा, संविभाग करने की वृति पनपेगी। सात्त्विकता का लक्षण है संविभाग ।

सुन्दर कसौटी

वृत्तियों को देखकर, आचरण और व्यवहार को देखकर हम आदमी को पहचान सकते हैं कि यह सात्त्विक प्रकृति का आदमी है, राजसिक प्रकृति का आदमी है अथवा तामसिक प्रकृति का आदमी है। एक बहुत अच्छा मानदण्ड, कसौटी या पैरामीटर हमारे पास है जिससे हम किसी व्यक्ति को पहचान सकें और उसी के अनुरूप उसके साथ व्यवहार करें। यह विषय प्रत्येक परिवार के अध्ययन का विषय बनना चाहिए। परिवार के सभी सदस्यों की प्रकृति एक समान नहीं होती। दस सदस्य हैं। नौ की प्रकृति सात्विक है। हो सकता है—एक ऐसा उद्दंड निकल जाए जो सारे परिवार की शांति छीन ले। यदि साथ में रहना है तो सबसे पहले प्रकृति का विश्लेषण करना होगा, प्रकृति के भेद को समझना होगा। किस व्यक्ति की कैसी प्रकृति है, उसे समझना होगा। पिता-पुत्र, भाई-बहन, सास-बहू—सबको एक-दूसरे की प्रकृति से परिचित होना होगा और उसी के अनुरूप व्यवहार करना होगा।

हम इसे उदाहरण के द्वारा समझें। राजसी प्रकृति का मुख्य लक्षण है—अहंकार। रजोगुण अहंकार प्रधान होता है। सास है सात्त्विक प्रकृति वाली और बहू है राजसी प्रकृति की। इस स्थिति में सास यदि बहू को झाड़ू लगाने के लिए कहेगी तो राजसी प्रकृति की बहू का अहंकार आड़े आएगा। परिणाम होगा—परिवार में कलह उभरेगा, घर की शांति भंग होगी। आज अधिकांश परिवारों में ऐसा हो रहा है। सामुदायिक जीवन में ऐसा होता है। ऐसा क्यों है ? ऐसा इसलिए है कि हम लोग प्रकृति के आधार पर कार्य का विभाजन नहीं करते। अगर प्रकृति के विश्लेषण के बाद कार्य का विभाजन करें तो समस्या सुलझ जाएगी। किन्तु इसके लिए जो शिक्षा मिलनी चाहिए, वह मिल नहीं रही है, यथोचित शिक्षा के अभाव में परिवार विखंडित हो रहे हैं।

सामंजस्य बिठाएं

एक व्यक्ति में कमाने की बहुत क्षमता है, वह काफी सम्पत्ति इकट्ठी कर सकता है, किन्तु उसकी प्रकृति राजसिक है। उसका अहंकार दूसरे सहन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं कर पाते, समस्या पैदा हो जाती है। एक सम्पन्न एवं समृद्ध परिवार के कुछ युवकों के मन में आया, परिवार के बुजुर्गों/मुखिया लोगों की बार-बार हाजरी लगानी पड़ती है, उन्हें कई-कई बार पानी पिलाना पड़ता है, छोटी-छोटी बातों के लिए भी उनसे पूछना पड़ता है। ऐसा क्यों ? आखिर हम सभी तो भागीदार हैं, हिस्सेदार हैं, हम ऐसा क्यों करें ? युवकों ने निश्चय किया—बंटवारा कर लें। लोगों ने बहुत समझाया—बहुत पुरानी और प्रतिष्ठित फर्म है, इसे तोड़ना ठीक नहीं है। युवकों ने उनका कथन नहीं माना। फर्म टूट गई। टूटने के बाद युवकों की स्थिति दयनीय बन गई। जो मुखिया थे, उन्होंने अपनी व्यापारिक स्थिति फिर मजबूत कर ली। उनमें कमाने की क्षमता थी। जिन लोगों के मन में यह भाव था—हम इनकी हाजरी क्यों भरें ? उनके सामने एक समय ऐसा आया, रोजी-रोटी का इंतजाम भी उनके लिए कठिन हो गया। यदि वे युवक थोड़ा-सा सामंजस्य बिठा लेते तो शायद यह स्थिति न बनती।

सात्विक व्यक्ति का लक्षण

यह सामंजस्य तब तक नहीं बैठता जब तक हम प्रकृति विश्लेषण की प्रक्रिया को नहीं जान लेते। सात्त्विक, राजसिक, तामसिक—यह पूरा प्रकृति विश्लेषण का विषय है। इन लक्षणों से जान सकते हैं—इस आदमी में किस प्रकार की वृत्ति या प्रकृति है। यदि व्यक्ति में विनम्रता है, सत्यनिष्ठा है, आस्तिक्य है, धृति है, संविभाग का भाव है, तितिक्षा है तो समझना चाहिए—वह सात्त्विक प्रकृति का आदमी है। परिवार में जो मुखिया है, उसे उसके साथ वैसा व्यवहार करना चाहिए और वैसा ही कार्य या दायित्व उसे सौंपना होता है। यदि ऐसा होता है तो काम ठीक चलता है। यह पता चल जाए—इस व्यक्ति में धृति नहीं है तो उस पर बलात् नियंत्रण कारगर सिद्ध नहीं होगा। अधैर्य है तो ज्यादा कसना ठीक नहीं। मारवाड़ी का एक प्रसिद्ध दोहा है—

कांच कथीर अधीर नर, कस्यां न उपजै प्रेम।
कसनी तो धीरा सहै, कै हीरा कै हेम।

हीरे और सोने को जितना अधिक कसा जाता है उतना ही वह अधिक विशुद्ध बनता है। उसे कितनी ही चोटें सहनी पड़ती हैं। इतनी ही चोट कांच पर लगा दें तो वह चूर-चूर हो जाए। वैसे ही जो व्यक्ति अधीर है, यदि उसे ज्यादा कस देंगे तो दो ही बातें होंगी—या तो वह घर छोड़कर कहीं भाग जाएगा या आत्महत्या कर लेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति-विश्लेषण का विज्ञान

यह प्रकृति-विश्लेषण का बहुत बड़ा विज्ञान है। व्यक्ति में यह विवेक जागना चाहिए कि उसमें सात्त्विक वृत्ति आए। ध्यान का परिणाम है—सात्विक वृत्ति। हम दूसरों की प्रकृति का भी ठीक विश्लेषण करें और उस विश्लेषण के आधार पर अपने नौकर, चाकर, मुनीम-गुमास्ता, मजदूर, बेटा, बहू—दूसरों के साथ भी वैसा ही व्यवहार करें। सामुदायिक या पारिवारिक जीवन में इससे शांति का श्रीगणेश होगा, बहुत सारी उलझनों के समाप्त होने का रास्ता मिल जाएगा। इस वर्गीकरण में जीवन का दर्शन अन्तर्हित है। हम इस वर्गीकरण को बराबर ध्यान में रखें और यह संकल्प करें—हमें सात्त्विकता का पूरा विकास करना है, राजसिक और तामसिक वृत्तियों को कम करने का अभ्यास करना है। यदि यह दृष्टि बन गई तो निश्चय ही जीवन में नया प्रकाश, नया आलोक मिलेगा और भविष्य को उज्ज्वल बनाने में पूरा योग मिलेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९. तन, मन और आत्मा का सामंजस्य

महत्त्वपूर्ण प्रश्न : महत्त्वपूर्ण उत्तर

हम प्रत्येक आदमी को जानते हैं, पहचानते हैं। जानने का माध्यम है शरीर। हम शरीर के द्वारा किसी को जानते हैं। व्यक्ति की आकृति देखते हैं और उसे जान लेते हैं, पहचान लेते हैं, किन्तु मनुष्य कोरा शरीर नहीं है। उसमें एक मन है, जो शरीर से सूक्ष्म है। वह दिखाई नहीं देता। क्या मन अंतिम वस्तु है ? नहीं है। मन से भी सूक्ष्म है हमारी आत्मा। हमारा व्यक्तित्व जो है, वह तीन का योग है—शरीर, मन और आत्मा। अभी दो दिन पूर्व डॉ० नथमल टांटिया आए थे। हाल ही में उन्होंने हालैण्ड और इटली की यात्रा की थी। वहां पर ओकी इन्स्टीट्यूट के द्वारा शिविर लगाए जाते हैं और जैन विश्व भारती से प्रवचन देने के लिए, प्रेक्षाध्यान का प्रयोग कराने के लिए डॉ० टांटिया बहुत बार वहां बुलाए जाते हैं। इस बार वे वापस आए तो मैंने पूछा— 'वहां चर्चा का मुख्य विषय क्या था ?' उन्होंने बताया—मेरे सामने एक प्रश्न आया—'प्राचीन योग और आज का नया योग (प्रेक्षाध्यान को वे **New System of yoga** कहते हैं)—इन दोनों में अन्तर क्या है ?' टांटियाजी ने बड़ा माकूल उत्तर दिया—प्राचीन ध्यान-पद्धतियों में किसी-किसी पद्धति में केवल शरीर पर ध्यान दिया जाता है, किसी पद्धति में केवल आत्मा पर ध्यान दिया जाता है किन्तु नयी पद्धति—प्रेक्षाध्यान में शरीर, मन और आत्मा—तीनों पर समान रूप से ध्यान दिया जाता है। यह इसकी अपनी प्रमुख विशेषता है। वास्तव में यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण था और उत्तर भी महत्त्वपूर्ण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर का दूसरा रूप

प्रेक्षाध्यान योग पद्धति में शरीर पर बहुत ध्यान दिया गया है। हमारे संतों ने शरीर को बहुत गालियां दी हैं। शरीर अशुचि है, मल-मूत्र का भंडार है, निकम्मा है, सब दोषों की खान है। न जाने शरीर को कितनी-कितनी गालियां दी गईं, बड़े अपशब्दों का प्रयोग किया गया शरीर के लिए। उन्होंने केवल आत्मा की बात कही—आत्मा को पकड़ो, चेतना को पवित्र बनाओ। इस बात पर बहुत ज्यादा बल दिया। क्या शरीर का केवल एक ही रूप है? शरीर का कोई दूसरा रूप नहीं है? शरीर अशुचि है, वह बीमार हो जाता है, बूढ़ा होकर नष्ट हो जाता है। ये सारी बातें हैं किन्तु केवल यही सोचना एकांगी दृष्टिकोण है। हमने केवल एक दृष्टि से शरीर को देखा है। शरीर को देखने का एक दूसरा दृष्टिकोण भी है। हम दोनों दृष्टियों से शरीर को नहीं देखेंगे तो पूरी बात समझ में नहीं आएगी।

भगवान महावीर ने शरीर के बारे में बात कही—

सरीर माहू नाव त्ति जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णओ वुत्तो जं तरंति महेसिणो॥

शरीर एक नौका है। जीव नाविक है। संसार समुद्र है। महर्षि लोग उसे पार कर लेते हैं।

शरीर : बाधक भी, साधक भी

संसार का पार किसके माध्यम से प्राप्त होगा? क्या नौका के बिना कोई समुद्र को पार कर पाएगा? क्या जहाज के बिना कोई जलराशि को पार कर पाएगा? कैसे संभव होगा? यदि समुद्र को पार करना है, अथाह जलराशि से उस पार जाना है तो जलयान/नौका का सहारा लेना ही होगा। यह शरीर बाधक है तो साधक भी है। हम इस दृष्टि से विचार करें तो शरीर को समझने का एक नया आयाम हमारे सामने प्रस्तुत होगा।

शरीर का बड़ा महत्त्व है। महाकवि कालिदास ने कहा—**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**—शरीर धर्म साधना का आदि-माध्यम है। शरीर स्वस्थ नहीं है तो साधना भी नहीं हो सकती। हम शरीर को समझें। आत्मा तक पहुंचने के लिए शरीर में कुछ रास्ते हैं। हम उन रास्तों को पकड़ें। उनमें सबसे पहला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है—हमारा नाड़ीतंत्र, दूसरा है ग्रन्थितंत्र—इन दो को समझे बिना साधना को नहीं समझा जा सकता, इन्हें समझे बिना आत्मा तक पहुंचने की बात अधूरी रह जाती है ।

नाड़ीतंत्र : ग्रंथितंत्र

आधुनिक मेडिकल साइंस के अनुसार नाड़ीतंत्र के तीन भाग माने जाते हैं—

(१) सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम
(२) सिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम
(३) पैरासिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम

इन तीनों को समझे बिना आत्मा को समझ पाना बहुत कठिन है ।

दूसरा है ग्रन्थितंत्र । आज का पढ़ा-लिखा आदमी, वैज्ञानिक युग में जीने वाला व्यक्ति ग्रन्थितंत्र के बारे में नहीं जानता है तो शायद अपने बारे में भी वह नहीं जानता है । एक आदमी हिंसक बनता है, अपराधी बनता है, क्रूर बनता है तो इसका कारण है ग्रन्थितंत्र उसे बहुत प्रभावित करता है । पिच्यूटरी ग्रंथि में थोड़ी-सी गड़बड़ हो जाती है तो आदमी का सारा चिन्तन ही गड़बड़ा जाता है, अंतर्दृष्टि समाप्त हो जाती है ।

नेपोलियन जीतता चला गया । किन्तु वाटरलू की लड़ाई में वह हार गया । क्यों हारा ? इस पर गहन खोज के बाद एक डॉक्टरी रिपोर्ट प्रकाशित हुई, जिसमें बताया गया—जिस समय नेपोलियन ने लड़ाई का निर्णय किया, उस समय उसकी पिच्यूटरीग्लैंड फेल हो गई थी इसलिए वह सही निर्णय नहीं ले सका ।

मर्म को समझें

यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है । यदि हमारी ग्रन्थियां ठीक काम नहीं करती हैं, ग्रन्थियों का संतुलन ठीक नहीं होता है तो आदमी के व्यवहार में बहुत सारी गडबड़ियां आ जाती हैं । एड्रीनलग्लैंड ज्यादा सक्रिय होता है तो सारा व्यवहार गड़बड़ा जाता है । यदि ग्रंथियों का स्राव संतुलित रहे, हार्मोन का सेक्रेशन ठीक रहे तो सब कुछ सामान्य होता है ।

जिसे आत्मिक विकास करना है उसे सबसे पहले शरीर को समझना होगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर को समझे बिना धर्म की पूरी बात समझ में नहीं आएगी। बहुत से लोग सीधे धर्म की बात को पकड़ लेते हैं, धर्म को मानकर चलते हैं किन्तु वे वास्तव में केवल धर्म का नाम लेते हैं, धर्म के मर्म को पकड़ नहीं पाते। मर्म को पकड़े बिना कोई भी बात ठीक नहीं बनती। यदि धर्म के मर्म को पकड़ना है तो हमें शरीर को समझना होगा। मर्म को पकड़ना बड़ा मुश्किल होता है।

मूर्ख कौन

एक बार राजा ने अपने मंत्री से कहा—'तुम मूर्खों की सूची बनाओ।' मंत्री ने इस आदेश को स्वीकार कर लिया। समय मिला एक सप्ताह का। संयोगवश दूसरे दिन घोड़ों का एक सौदागर आया। राजा के घोड़े दिखाए। पुराने जमाने के राजे-महाराजे घोड़ों के शौकीन हुआ करते थे। राजा को घोड़े पसंद आ गए। सारे घोड़ों खरीद लिये गए। सौदागर बोला—'महाराज! मैं अपने व्यापार के सिलसिले में बहुत घूमा हूं, किन्तु आप जैसा घोड़ों का पारखी कहीं नहीं मिला। मुझे खुशी है—मेरे घोड़ों को आपने पसंद किया किन्तु यदि आप मुझे पांच लाख मुद्राएं और दें तो मैं ऐसा बढ़िया घोड़ा लाऊंगा कि आप देखते रह जाएंगे।' राजा ने अपने कोषाध्यक्ष को आदेश दिया—'व्यापारी को पांच लाख मुद्राएं दे दी जाएं।' व्यापारी को मुद्राएं मिल गईं। व्यापारी चला गया। एक सप्ताह पूरा हुआ, मंत्री ने मूर्खों की सूची राजा के सामने पेश कर दी। राजा ने सूची को देखा। मूर्खों की सूची में पहला नाम राजा का था। राजा यह देखकर अवाक् रहा गया। विस्मय से आंखें खुली रह गईं। मंत्री की ओर गहरी दृष्टि टिकाकर पूछा—'मूर्खों की सूची में सबसे पहला नाम मेरा?'

'हां महराज!'

'यह कैसे?'

'महाराज! धृष्टता क्षमा हो। एक दिन मैंने देखा—बाहर का व्यापारी आया। आप उसे जानते नहीं थे। नाम-गांव का कुछ पता नहीं। पहले भी कभी उसे देखा नहीं। उसने पांच लाख मुद्राएं मांगीं और आपने दे दीं। क्या आपको यकीन है कि वह लौटकर आएगा? मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि अब वह नहीं आएगा। इस प्रकार बिना सोचे-समझे किसी अजनबी व्यक्ति को पांच लाख मुद्राएं देने वाला मेरी दृष्टि में मूर्खों का सरदार ही होगा।

कितनी बड़ी बात मंत्री ने राजा के सामने कह दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा भी विचार में पड़ गया। उसने सोचा—मंत्री बात तो ठीक कह रहा है। वास्तव में मैंने गलती कर दी। यह एक तथ्य है—राजा या इस तरह के बड़े लोग अपनी गलती को सहज ही स्वीकार नहीं करते। राजा बोला—'मंत्री जी ! ठीक है, तुमने मेरा नाम मूर्खों की सूची में रख दिया पर कल्पना करो—कल यदि वह घोड़ों को लेकर आ जाएगा तो फिर क्या होगा ?'

मंत्री बोला—'कुछ विशेष नहीं होगा। बस, केवल मूर्खों का नाम बदल दूंगा। आपकी जगह उसका नाम लिख दूंगा। पांच लाख मुद्राएं सहज ही प्राप्त कर जो वापस आ जाए, वह भी मूर्ख है।'

मानें नहीं, जानें

जो व्यक्ति बिना सोचे-विचारे कोई काम करता है, आचरण या व्यवहार करता है, वह समझदार नहीं माना जाता। क्या हमारे लिए यह चिन्तनीय नहीं है कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह चिन्तनपूर्वक कर रहे हैं या नहीं। हम धर्म का संदर्भ लें। आत्मा की बात, आत्मा के साक्षात्कार की बात, परमात्मा की बात हम लोग करते हैं, क्या सोच-समझकर करते हैं या मात्र दुहाई ही देते जा रहे हैं ? जानने का प्रयत्न कर रहे हैं या केवल मानते ही चले जा रहे हैं ? आत्मा के बारे में जो कुछ सुना, मान लिया, क्या कभी जानने का प्रयत्न किया ? जब तक जाना नहीं जाता, तब तक सचाई सामने नहीं आती। मानने की बात ही रह जाती है। जो शरीर को भी नहीं जानता, वह मन को कैसे जान पाएगा। जो मन को नहीं जानता, वह आत्मा या परमात्मा को कैसे जान पाएगा ?

आलंबन है शरीर

हर आस्तिक व्यक्ति आत्मा-परमात्मा की दुहाई दे रहा है किन्तु जिस शरीर में वह जी रहा है, उसको ही नहीं जान पा रहा है। जिस घर में रह रहा है, उसे ही नहीं जानता तो घर की संपदा को, घर में पड़े निधान को कैसे जानेगा ? उसे जानने का उसके पास कोई साधन ही नहीं है, उपाय ही नहीं है। आत्म-साक्षात्कार के लिए सबसे पहले शरीर को जानना होगा। शरीर क्या है ? क्या शरीर केवल भोग करने का साधन है ? यदि इतना ही है तो कुछ भी नहीं। शरीर आत्मा तक, परमात्मा तक पहुंचने का बहुत बड़ा साधन है, आलम्बन है, इस बात को समझ कर ही हम आत्म-साक्षात्कार की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन की शक्तियां

दूसरा तत्त्व है मन। हम लोग सामान्यतः यही समझते हैं कि मन बड़ा चंचल है। हमारे संतों ने भी यही लिखा—

मन लोभी मन लालची, मन चंचल मन चोर।
मन के मते न चालिए, पलक पलक मन और॥

मैं मानता हूं कि मन चंचल है, पर क्या मन चंचल ही है? मन में अपार शक्तियां हैं। शक्ति का स्रोत और भण्डार है मन। हम मन की शक्ति को नहीं पहचानेंगे, केवल मन की चंचलता को पकड़ेंगे तो हमारा विकास नहीं हो सकेगा। एकाग्रता मन की बहुत बड़ी शक्ति है। संकल्प मन की बहुत बड़ी शक्ति है। अवधारण करना, निश्चय करना, संश्लेषण करना, विश्लेषण करना— ये सब मन की शक्तियां हैं। इन शक्तियों को नहीं पहचानेंगे तो मिलेगा क्या?

दोहन करना सीखें

मन ऐसा तत्त्व है, जिससे बड़ी-बड़ी शक्तियां भी मिलती हैं, और बुराइयां भी मिलती हैं। हम इस बात पर ध्यान दें जिससे मन की शक्तियों का सही उपयोग कर सकें। गाय को दुहेंगे तो दूध मिलेगा अन्यथा मूत्र और गोबर ही हाथ आएगा। यदि मन का दोहन करना सीख जाएं तो अनेक शक्तियों का जागरण होगा। यदि दोहन न कर पाएं तो अनेक विपदाओं को झेलना भी हमारे हिस्से में आ सकता है। इसलिए गहराई से इस बात को समझना जरूरी है कि मन क्या है? हम इस बात को जानते हैं—आत्मा को समझने के लिए मन के पार जाना होगा, मनोतीत या मन से परे बनने होगा, मन को रोकना होगा किन्तु हम मन को रोकने से पहले उसे एकाग्र करना सीखें। मन में कितना ही सुख देने की क्षमता है। आदमी कल्पना में भी सुख पाता है तो मन की वास्तविकता को जान लेने के बाद से कितना सुख मिलेगा, यह सोचा जा सकता है।

कल्पनातीत सुख

दिल्ली में (सन् १९८७) प्रेक्षाध्यान का शिविर चल रहा था। मुख्यतः विदेशी लोग उसमें भाग ले रहे थे। एक व्यक्ति थे हवाई यूनिवर्सिटी में पॉलिटिकल साइंस के प्रोफेसर ग्लेनपेज। वे एक बार रात में चैतन्य-केन्द्रों पर ध्यान का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोग कर मेरे पास आए। उन्होंने भावपूर्ण स्वर में कहा—'आज मैं दर्शनकेन्द्र पर थोड़ी देर अपने ध्यान को केन्द्रित कर सका। उस समय मुझे जो आनन्द मिला, उसे मैं बता नहीं सकता। हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते कि हमारे भीतर इतना सुख और शांति है।'

• अगर हम मन के मर्म को समझ जाएं और मन को साध लें तो शायद दुनिया के सारे पदार्थों से जितना सुख नहीं मिलता, उतना सुख मन की एकाग्रता से मिल सकता है। यह केवल पढ़ी-पढ़ाई बात नहीं, अनुभव सिद्ध बात है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०. मन का शरीर पर प्रभाव

ध्यान की साधना करने वाले बहुत बार कहते हैं—ध्यान सदा एक जैसा नहीं होता। कभी अच्छा होता है, कभी अच्छा नहीं होता। मन भी उसमें सदा एक जैसा नहीं लगता। कभी मन पूरा लगता है, कभी मन नहीं लगता। उतार-चढ़ाव आता रहता है। हम ध्यान की बात छोड़ दें। सामान्य जीवन में भी व्यक्ति के सामने यह समस्या रहती है कि मन की स्थिति सदैव एकरूप नहीं रहती। कभी मन में बड़ा उत्साह होता है और कभी डिप्रेशन। कभी आनन्द और कभी दुःख का अनुभव। कभी अचानक बेचैनी हावी हो जाती है। यह सब क्यों होती है? बहुत गहराई में जाकर मनोविज्ञान की दृष्टि से इस विषय को मीमांसित करें तो पाएंगे—जैसे-जैसे रसायन बदलते हैं वैसे-वैसे मन की स्थिति बदलती रहती है। रसायनों का बहुत बड़ा हाथ है, हमारी मानसिक स्थितियों के बदलाव में।

प्रश्न अहेतुक की मीमांसा का

कोई अप्रिय घटना घटती है तो मन में दुःख आता है, यह बात सहज समझ में आती है किन्तु किसी अप्रिय घटना के न घटने पर भी मन दुःखी हो तो समझने में कुछ कठिनाई होती है। स्थानांग सूत्र में क्रोध के जो प्रकार बताए गए हैं, उनमें एक है—अप्रतिष्ठ क्रोध। अर्थात् जिस क्रोध का कोई आधार नहीं है। केवल क्रोध ही नहीं, अहंकार, लोभ, दुःख, भय—ये सारे आवेग जो हैं, कभी-कभी अहेतुक उत्पन्न हो जाते हैं। जिनके पीछे कोई हेतु, कोई कारण नहीं होता। अकारण या अहेतुक वस्तु की व्याख्या करने में आदमी कठिनाई महसूस करता है। इस बात को हम शरीर और मन के सम्बन्ध को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोड़कर नहीं देखेंगे तो हमें समाधान नहीं मिलेगा ।

हम शरीर और मन के सम्बन्ध में जानें । शरीर मन को प्रभावित करता है और मन शरीर को प्रभावित करता है । शरीर में होने वाले विकार मन को बहुत प्रभावित करते हैं । बाहर से हमें उनका पता नहीं चलता कि भीतर क्या हो रहा है, किन्तु भीतर में एक प्रक्रिया चलती रहती है और मन की अवस्थाएं बदलती चली जाती हैं । आयुर्वेद में इस विषय पर बहुत सूक्ष्मता से चिन्तन किया गया है, मीमांसा की गई है । कहा गया—शरीर में तीन दोषों का साम्य होता है तो आदमी स्वस्थ रहता है और वात, पित्त और कफ— इन तीनों में कोई अव्यवस्था आती है तो हमारे मन की स्थिति गड़बड़ा जाती है, हमारा व्यवहार भी गड़बड़ा जाता है ।

संचालित करने वाला तत्त्व

सबसे पहले हम वायु को लें । वायु सारी प्रवृत्तियों को संचालित करने वाला तत्त्व है । हम किसी से पूछते हैं कि घड़ी में कितने बजे हैं । उत्तर मिलता है—'पांच !' प्रश्न होगा—'कैसे जाना ?' व्यक्ति कहेगा—'आंख से देख रहा हूं ।' यह बात भी ठीक है किन्तु और गहरे में जाएं तो पता चलता है—वायु साथ में जुड़ती है तो आंख से दिखाई देता है । वायु साथ में न जुड़ें तो आंख से दिखाई नहीं देता । शरीर में जो कुछ है, उसे संचालित करनेवाला तत्त्व है वायु । इससे वायु का महत्त्व स्वयं सिद्ध है, किन्तु शरीर में जब वायु तत्त्व की वृद्धि हो जाती है, उसका अतिरेक हो जाता है तो समस्याएं पैदा होती हैं। चंचलता भी मन की समस्या है और इसे पैदा करने वाला तत्त्व है वायु । मन को चंचल बनाकर यह तत्त्व पीछे हट जाता है । दूसरों के लिए समस्या पैदा कर पीछे हट जाना कुछ लोगों की प्रवृत्ति होती है ।

विचित्र बात

एक आदमी किसी होटल में खाना खाने गया । खाना बहुत खराब था। बैरे को बुलाकर कहा—'कहां है तुम्हारा मैनेजर ? इतना रद्दी खाना खिलाया जाता है ?' बैरा बोला—'महाशय ! मैनेजर साहब सामने वाले होटल में खाना खाने गए हैं ।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बड़ी विचित्र बात है। अपने होटल में दूसरों को खाना खिलाता है और स्वयं दूसरों के होटल में जाकर खाता है। ऐसे तत्त्व भी हैं, जो काम करते हैं और पीछे हट जाते हैं। वायु भी ऐसा ही तत्त्व है जो बहुत सारी समस्या पैदा कर परदे के पीछे चला जाता है। हमारे सामने आती है मन की चंचलता या स्थिरता। वायु समाने नहीं आती। जब भी मन की चंचलता का आभास हो, यह परीक्षण करा लेना चहिए—शरीर में वायु का प्रकोप कैसा है। कोरी चंचलता नहीं होती और अतिरिक्त चंचलता स्वाभाविक नहीं होती। यह बात सही है—मन है तो चंचलता होगी। चंचलता आवश्यक भी है जीवन के लिए किन्तु चंचलता ज्यादा बढ़ जाए तो वह समस्या बन जाती है।

क्यों है चंचलता ?

चंचलता का मुख्य करण है—वायु का प्रकोप। जिस व्यक्ति में चंचलता अधिक है, उसे सोचना चाहिए—इतनी चंचलता है, कहीं वायु का प्रकोप तो नहीं है ? यदि है तो क्यों है ? इसके कारण को भी खोजना चाहिए। कारण की खोज और उपाय की खोज—दोनों आवश्यक हैं। मन की पवित्रता के लिए, मन की मलिनता को दूर करने के लिए शरीर पर पूरा ध्यान देना होगा, शारीरिक तत्त्वों की मीमांसा करनी होगी। एक व्यक्ति ने निर्णय किया—मैं कचौड़ी नहीं खाऊंगा किन्तु वह जैसे ही कचौड़ी की दुकान के सामने से गुजरा, कचौड़ी की महक ने उसे विवश कर दिया। वह कचौड़ी खाने बैठ गया। उसका मित्र उसे कृत संकल्प की याद दिलाता है किन्तु मन के हाथों वह विवश बना हुआ है।

वात-विकार के परिणाम

मन की अस्थिरता और चंचलता व्यक्ति को अपने निश्चय से डिगा देती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि व्यक्ति के शरीर में वायु की प्रकृति उग्र है। बहुत से लोग कहते हैं—स्मृति बहुत कमजोर है। बच्चों के बारे में भी ऐसी शिकायतें आती हैं। छोटे बच्चों की स्मृति कमजोर होनी ही नहीं चाहिए। अस्सी की अवस्था पार कर जाने के बाद भी स्मृति कमजोर नहीं होनी चहिए किन्तु वह कमजोर हो जाती है। इसका कारण भी वायुवृद्धि है। वातवृद्धि स्मृति दौर्बल्य का एक प्रमुख कारण है, कुछ लोग कहते हैं—डर बहुत लगता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। किसी घटना के होने पर डर लगना स्वाभाविक है किन्तु कुछ लोग अकारण ही डरे रहते हैं। प्रतिक्षण एक अज्ञात भय उनमें समाया रहता है। इस भय और घबराहट के पीछे भी वायु का प्रभाव है। कुछ लोग सीमा से ज्यादा बोलते हैं, अनावश्यक ही बोलते रहते हैं। इस वाचालता का कारण भी वायु-विकार ही है। कुछ लोगों को हंसी-मजाक व्यंग्य में बड़ा रस मिलता है। यह भी वात-प्रकृति की उग्रता का लक्षण है। ये सारे वात-विकार के लक्षण हैं। इन लक्षणों को जानकर हम मन के प्रभाव की मीमांसा करें। अगर हम मन को वैसा बनाना चाहते हैं, जिसमें वाचालता की स्थिति न हो, चंचलता की स्थिति न हो, भय और घबराहट की स्थिति न हो तो हमें शरीर पर ध्यान देना होगा। केवल मन के द्वारा उन समस्याओं का समाधान पाना सम्भव नहीं होगा। यह समस्या का मूल कारण है। इस मूल कारण को पकड़े बिना समस्या का समाधान नहीं होगा। हम प्रायः मूल कारण को नहीं पकड़ पाते।

मूल कारण को पकड़ें

एक चोर जेल से छूटा। बाहर निकलते ही गेट पर खड़े किसी व्यक्ति ने पूछा—'तुम जेल से छूट गए। अब तुम पहला काम क्या करोगे?'

चोर बोला—'सबसे पहले एक टार्च खरीदूंगा।'

'क्यों?'

'क्योंकि मैं पहले टार्च के अभाव में पकड़ा गया। उस समय चोरी करते वक्त अंधेरे में भूल से मेरा हाथ आलमारी में रखे नोटों की बजाए, रेडियो के स्विच पर पड़ गया था। वही मेरे पकड़े जाने का कारण बना।'

इतने दिन जेल काटकर भी चोर ने यह नहीं सोचा—जेल में आने का कारण उसका चोरी करने का अपराध है। वह जेल में आने का मुख्य कारण अंधेरे को मान रहा है, टॉर्च के अभाव को मान रहा है। समस्या से मुक्ति पाने का उपाय हम नहीं खोजते बल्कि उससे बचने का प्रयत्न करते हैं, उससे बचने के बहाने खोजते हैं।

जो व्यक्ति अपने मनोबल का विकास करना चाहता है, मन के आरोग्य का आकांक्षी है, उसे उसका समाधान केवल मन में ही नहीं, शरीर में भी खोजना होगा। हम किसी भी बात को ऐकांतिक रूप में न लें। मन की समस्या के समाधान के अनेक पहलू हो सकते हैं उनमें एक महत्त्वपूर्ण पहलू है शरीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर में भी इस समस्या का समाधान खोजना चाहिए। शरीर की स्थिति क्या है और शरीर में ऐसा कौन-सा तत्त्व अधिक काम कर रहा है, जिसके कारण आचरण, व्यवहार या मानसिक चिन्तन पर इस प्रकर की प्रतिक्रियाएं हो रही हैं ?

परिणाम पित्त का

दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है—पित्त। पित्त उत्तेजक है, गर्म है। स्वाभाविक ही है कि जिस व्यक्ति में क्रोध आए, उसमें पित्त की प्रधानता होगी। जब तक पित्त का शमन नहीं होता है, क्रोध का शमन होने में भी कठिनाई रहती है। प्रेक्षाध्यान में क्रोध के शमन हेतु सफेद और नीले रंग का ध्यान कराया जाता है। ज्योतिकेन्द्र, आनंदकेन्द्र और विशुद्धिकेन्द्र पर नीले रंग का ध्यान, पूरे शरीर पर सफेद और नीले रंग का ध्यान कराया जाता है। इससे क्रोध की उत्तेजना कम हो जाती है, पित्त की उत्तेजना कम हो जती है। पित्त की उत्तेजना कम होती है तो मन अपने आप शांत हो जाता है। पित्त का मन पर जो परिणाम होता है वह है क्रोध का अतिरेक। इसीलिए समय का विवेक करना होता है। पित्त बढ़ने का जो समय होता है विशेषतः वह मध्याह्न का समय है। दोपहर के समय किसी व्यक्ति से कोई बहुत गहरी बात नहीं करनी चाहिए। ऐसे काम के लिए ऐसा समय चुनना चहिए, जिस समय पित्त शांत रहे।

कर्म : उत्तेजना देने वाले तत्त्व

पित्त का दूसरा परिणाम है—सहनशक्ति का अभाव। पित्त सहनशक्ति को क्षीण कर देता है। कोई भी घटना घटेगी तो पित्त प्रधान व्यक्ति एकदम अधीर बन जाएगा। यदि हम अपने आस-पास रहने वाले लोगों को ध्यान से देखें तो प्रकृति की यह भिन्नता हमें बहुतायत में देखने को मिलेगी। बहुत बार प्रश्न उठता है—यह अन्तर क्यों ? हम मानते हैं—यह कर्म का अन्तर है कर्म की बात बहुत आगे की बात है। कर्म मूल तत्त्व होता है किन्तु हमें उन तत्त्वों पर भी ध्यान देना चाहिए, जो कर्म को भी उत्तेजना देने वाले हैं। ये तत्त्व कर्म को उत्तेजना देते हैं, कर्म के प्रकम्पनों को बढ़ा देते हैं, फिर यह प्रकम्पन हमारे मन को प्रभावित करते हैं। इन सारे कारणों पर ध्यान देना आवश्यक है किन्तु इनका ज्ञान बहुत कम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वात की वृद्धि क्यों होती है ? इसे कैसे रोका जाए ? यह समस्या इसीलिए उग्र बनती है कि हम यह नहीं जानते कि हमारे आहार, विहार और चर्या का हमारे आचरण से बहुत गहरा सम्बन्ध है। ऋतु का भी सम्बन्ध है किन्तु आहार-विहार और चर्या का सम्बन्ध ज्यादा है। हम यह जानें—वात, पित्त और कफ—इन तीन तत्त्वों का मन पर क्या प्रभाव होता है ? यह भी स्पष्ट है—इन तीन तत्त्वों का बुरा प्रभाव ही मन पर नहीं पड़ता, अच्छा प्रभाव भी पड़ता है। तीनों के बुरे प्रभाव की चर्चा कर रहे हैं। तीनों के अच्छे प्रभाव भी हैं। पित्त मन पर अच्छा प्रभाव डालता है, वायु भी अच्छा प्रभाव डालती है और कफ भी अच्छा प्रभाव डालता है।

पित्त का प्रभाव

पित्त का प्रभाव जो मन पर होता है उसमें प्रमुख है—असहिष्णुता। क्या मान लिया जाए कि आज का युग पित्तप्रधान युग है। ऐसा लगता है—आज पित्त की प्रकृति बहुत ज्यादा है इसीलिए आदमी बहुत असहिष्णु हो गया है। आदमी में झुंझलाहट या चिड़चिड़ापन ज्यादा क्यों होता है—इसका कारण है—पित्त की प्रधानता। अनिद्रा आज के युग की एक प्रमुख समस्या है। नींद की गोलियां आज के युग में जितनी प्रयोग में लाई जा रही हैं उतनी शायद अतीत में पहले कभी नहीं ली गई होंगी। अनिद्रा भी पित्तप्रधानता का एक कारण है। पित्त ज्यादा है तो नींद कम आएगी, व्यक्ति अनिद्रा का शिकार बन जाएगा। जो व्यक्ति पित्त प्रकृति वाला है अथवा अपने आहार, विहार और चर्या के द्वारा पित्त को कुपित करता रहता है, उसका व्यवहार कभी सामान्य नहीं रहेगा। उसके मन पर पित्त के सारे प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होंगे। किसी व्यक्ति में बौद्धिक क्षमता बहुत है तो यह मानना होता, पित्त बहुत अच्छा काम कर रहा है।

कफ का प्रभाव

कफ का मन पर कई प्रकार से प्रभाव पड़ता है। कफ यदि सन्तुलित नहीं है तो व्यक्ति में उत्साह नहीं होगा। कफ क्षीण हो गया तो उत्साह मर जाएगा। बहुत सारे व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जिसका मन बुझा-बुझा-सा होगा। वे हमेशा यही कहते मिलेंगे—'भाई ! अब क्या है ? जो होना था हो गया ? अब क्या करना है ? जो करना था कर चुके।' मैंने इसी तरह की बात करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले एक व्यक्ति से पूछा—'कितनी अवस्था है ?' वह बोला—'पचपन वर्ष।' प्राचीन काल में मान्यता थी—सत्तर वर्ष के बाद वृद्धावस्था का प्रारम्भ होता है। व्यक्ति बूढ़ा बनता है अस्सी वर्ष के बाद। हमारे एक मुनि थे। हमारे साथ रहते थे। घुटनों में दर्द था। मैंने कहा—'उपचार करवा लो।' कहने लगे—'अब क्या है बूढ़े हो गए। दर्द को क्या मिटना है ?' कफ क्षीण होगा तो अनुत्साह की वृत्ति मन में जाग जाएगी। उत्साह बनाए रखना कफ का खास कर्म है।

सकारात्मक पक्ष

वात, पित्त और कफ के ये नकारात्मक पहलू है। इसका एक सकारात्मक समाधान भी है। इसका बुरा परिणाम तब होता है जब ये बढ़ जाते हैं। जो व्यक्ति समुचित उपाय जानता है, इनकी वृद्धि नहीं होने देता, इन्हें सन्तुलित रखता है, वह इन परिणामों से बच सकता है। न कम और न ज्यादा। न वात क्षीण और न वात की वृद्धि। न पित्त क्षीण और न पित्त की वृद्धि। न कफ क्षीण और न कफ की वृद्धि। जो इस स्थिति को बनाए रखना जानता है वह समस्या को उठने ही नहीं देता। यदि समस्या उठ जाती है तो वह सुलझा लेता है।

पनवाड़ी का बुद्धि-चातुर्य

किसी राजा के पास एक कर्मचारी था। उसक काम था, समय पर राजा को पान खिलाना। एक दिन राजा ने कहा—तुम जाओ और एक पाव चूना लेकर आओ। नौकर पनवाड़ी की दुकान पर गया, उसने एक पाव चूने की मांग की।

पनवाड़ी ने पूछा—'पाव भर चूने का क्या करोगे ?'

नौकर ने कहा—'राजा ने मंगवाया है।'

चूनेवाला बड़ा होशियार व्यक्ति था। 'चूना क्यों मंगवाया है' इस बात का रहस्य वह चतुर पनवाड़ी भांप गया। उसने नौकर से कहा—'चूना ले जाने से पहले आधा सेर घी खरीदो और उसे पीलो। उसके बाद चूना लेकर राजा के पास जाओ।'

नौकर बोला—'राजा ने चूना मंगवाया है फिर मेरे घी पीने का क्या मतलब ?'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पनवाड़ी ने कहा—'मतलब बाद में पता चलेगा। पहले मैं जो कह रहा हूं वह करो।'

नौकर असमंजस में पड़ गया किन्तु पनवाड़ी द्वारा पूरी गम्भीरता से कही गई बात उसने स्वीकर कर आधा सेर घी खरीदकर पी लिया। वह चूना लेकर राजा के चरणों में प्रस्तुत हुआ। राजा ने रोष में भरकर कहा—'अब तुम मनमानी करने लगे हो। पान में चूने की मात्रा पर ध्यान नहीं देते। मेरे पान में इतना चूना मिला दिया कि मेरा मुंह कट गया।' राजा ने मुंह खोलकर अत्यधिक चूने का परिणाम उसे दिखाया। राजा ने गुस्से में भरकर कहा—'इसका दंड है—यह सारा चूना तुम्हें इसी समय मेरे सामने खाना पड़ेगा।' राजा के भय से नौकर ने चूने को पानी में घोला और पी गया। राजा ने सोचा—अब यह बचेगा नहीं। उसे चले जाने का आदेश दे दिया। नौकर चला गया। दूसरे दिन राजा के सामने वह फिर पान लेकर उपस्थित हुआ। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने पूछा—'तुम मरे नहीं ?'

नौकर बोला—'हजूर ! मरता तो यहां दरबार में कैसे उपस्थित होता ?

राजा ने फिर पूछा—'आधा सेर चूना खाकर तुम बचे कैसे ?'

नौकर ने पनवाड़ी की सलाह पर घी पीने की पूरी बात राजा को बता दी।

राजा ने पनवाड़ी के बुद्धि-चातुर्य की दाद दी।

समाधान है ज्ञान में

इस कहानी का निष्कर्ष है—समय रहते सावधान हो जाएं तो आदमी समस्या से बच सकता है। समस्या के साथ समाधान भी जुड़ा हुआ है। दोष चाहे वायु का हो, पित्त या कफ का। अगर हम उपाय जानते हैं तो कठिनाई भोगने से बच जाएंगे। उपाय नहीं जानतें हैं तो अकारण ही कठिनाइयों से जूझना पड़ेगा। यह एक तथ्य है—इस दुनिया में उतने कष्ट नहीं है, जितना आदमी भोगता है। वह भोगता है अपने अज्ञान के कारण। ज्ञान है तो काफी समाधान है। हमारे शरीर में ही तमाम समाधान है। अगर ज्ञान नहीं है तो बाहर की दुनिया में भी समाधान नहीं है। हमारे शरीर में समाधान है, प्रकृति में समाधान है, वातावरण में समाधान है—वनस्पति जगत में समाधान है, आहार में समाधान है। समाधान भरे पड़े हैं किन्तु उस व्यक्ति के लिए कोई समाधान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है जिसमें अज्ञान भरा पड़ा है, जो जानता नहीं है। प्रेक्षाध्यान शिविर अज्ञान निवारण का भी शिविर होता है। क्या दृष्टिकोण ज्ञान सम्यक् हुए बिना आचरण सम्यक् हो जाएगा ? यह सम्भव नहीं है। भगवान् महावीर ने इसीलिए सबसे पहले सम्यक् दर्शन की बात कही। उमास्वाति ने लिखा—**सम्यक् दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**। मोक्ष का मार्ग केवल एक है किन्तु तीन से बना हुआ है। पहला घटक है सम्यक् दर्शन, दूसरा घटक है सम्यक् ज्ञान और तीसरा घटक है सम्यक् चारित्र। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है दृष्टि का बदलाव और ज्ञान का सम्यक् हो जाना। ये दोनों बातें सम्यक् हो जाएं तो आचरण, व्यवहार अपने आप परिवर्तित हो जाए, एक नया जीवन-दर्शन उपलब्ध हो जाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. संतुलित आहार

संतुलित आहार शब्द का प्रयोग होते ही हमारा ध्यान संतुलित आहार की वर्तमान पद्धति पर चला जाता है। आज सरकार और स्वास्थ्य विभाग द्वारा संतुलित आहार की तालिका प्रकाशित होती है। संतुलित आहार का अर्वाचीन अर्थ है, जिसमें सब प्रकार के तत्त्व हों। कार्बोहाइड्रेट, वसा, लवण, क्षार, विटामिन्स, प्रोटीन्स—ये सब जिसमें हों, ऐसा आहार संतुलित आहार माना जाता है। स्वाभाविक है—आज की धारणा के आधार पर हमारा ध्यान इस ओर जाएगा किन्तु जिस संतुलित आहार की चर्चा की जा रही है, यह दूसरी धारणा है। संतुलित आहार वह है, जिसमें वात, पित्त, कफ का संतुलन बना रहे, अतिवृद्धि किसी की भी न हो।

प्रश्न वात, पित्त और कफ का

आयुर्वेद के अनुसार जितने द्रव्य हैं उन सबमें वात, पित्त और कफ की मात्रा मिलती है। एक भी ऐसा द्रव्य नहीं है जो केवल वात करता है, पित्त या कफ नहीं करता। या किंचित मात्रा में सत्त्व, रजस् और तमस् या पंचभूत सबमें विद्यमान है। अग्नीय तत्त्व भी है, जलीय तत्त्व भी है, वायवीय तत्त्व भी है। ये तीनों सबमें मिलते हैं। यदि हम शुद्धता की दृष्टि से विचार करें तो एक भी तत्त्व ऐसा नहीं है जिसमें इन चार पंच महाभूतों का अथवा सत्त्व, रजस्, तमस् का मिश्रण न हो। हम जो निर्धारण करते हैं—यह वात-प्रकृति का आदमी है, यह पित्त-प्रकृति का आदमी है या कफ-प्रकृति का आदमी है। वह अधिकता के आधार पर करते हैं। जो वात प्रकृति का है, उसमें पित्त और कफ की प्रकृति नहीं है? जो पित्त प्रकृति का है उसमें वात और कफ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की प्रकृति नही है ? वात, पित्त और कफ—तीनों प्रत्येक व्यक्ति में होते हैं किन्तु नामकरण अधिकता के कारण होता है । जन्म से ही कुछ लोग वात प्रकृति के होते हैं, कुछ पित्त प्रकृति के और कुछ कफ प्रकृति के होते हैं । हमें यह नहीं मान लेना चाहिए—व्यक्ति एक ही प्रकृति का है, उसमें दूसरी प्रकृति नहीं है । हम जब भी इस पर चर्चा करें तो इस सचाई को पकड़ कर करें हम केवल मुख्यता के कारण ऐसा प्रयोग कर रहे हैं ।

कोई द्रव्य दोषमुक्त नहीं है

समस्या यह है कि सब द्रव्यों में सब तत्त्व मिलते हैं पर मुख्यतः कोई वात बढ़ाने वाला है, कोई पित्त बढ़ाने वाला है और कोई कफ बढ़ाने वाला है । प्रश्न है—इस स्थिति में आदमी खाएगा क्या ?

पांच मित्र गोठ करने गए । सबने अलग-अलग काम बांट लिये । उनमें एक वैद्य था । उसके जिम्मे साग-भाजी लाने का काम था । वह बाजार गया। वह सब्जियों को एक-एक कर देखता है किन्तु खरीद नहीं पाता है । बैंगन को देखा, यह वातकरक है, करेला देखा है, यह पित्तप्रभावक है । इस प्रकार एक-एक सब्जी के गुण-धर्म का विवेचन करता चला गया । एक भी चीज खरीद नहीं सका, खाली हाथ लौट पड़ा । रास्ते में नीम का पेड़ मिला । उसकी पत्तियां गिरी थीं । झोला भर लिया । मित्रों ने पूछा—'क्या लाये हो ?' उसने झोला उलट दिया । मित्रों ने कहा—'यह क्या ?' वैद्य महाशय ने कहा—'बाजार में कोई सब्जी दोषमुक्त मिली ही नहीं । यह नीम त्रिदोष नाशक है ।'

योग है तीनों का

पूर्ण दोषमुक्त कोई भी वस्तु नहीं है । हम कहते हैं—एसीडिटी है, पित्त की बीमारी है, कफ की बीमारी है या गैस ट्रबल है । हम ऐसा मुख्यता के आधार पर कहते हैं । गौण रूप में तीनों साथ में हैं । जहां वायु है, वहां पित्त और कफ भी है । जहां पित्त है वहां वायु और कफ भी है और जहां कफ है वहां वायु और पित्त भी है । समस्या को बढ़ाने में थोड़ा-थोड़ा हिस्सा तीनों का है इसीलिए आयुर्वेद में कहा गया—**'नैकदोषास्ततो रोगाः ।'**

वात पित्त और कफ का मन पर प्रभाव होता है किन्तु इन्हें बढ़ाने वाले तत्त्वों का जब तक ज्ञान नहीं होगा, इनसे कैसे बच पाएंगे ? इसलिए आहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और विहार—दोनों के बारे में पर्याप्त ज्ञान का होना जरूरी है। विहार में हमारी सारी चर्या—सोना, बैठना, चलना आदि समाविष्ट है। आयुर्वेद का सिद्धान्त है—दिन में सोना वायु को बढ़ाना है। वर्षा ऋतु या सर्दी की ऋतु में सोना तो गैस की बीमारी को और जटिल बना देना है। विधान किया गया है—यदि दिन में नींद लेनी हो तो बैठकर लें, लेटकर न लें। दिन में दो-तीन घंटे सोना बीमारी को निमंत्रित करना है। केवल गर्मी की ऋतु में दिन में कुछ देर सो लेना विहित माना गया है।

संदर्भ आहार का

हम भोजन की बात को लें। सूखा भोजन वायु को बढ़ाता है। आचारांग चूर्णि का प्रसंग है—भगवान महावीर ने संथाल परगना की यात्रा की। वहां के लोगों ने भगवान को काफी कष्ट दिए, काफी सताया, कठिनाइयां पैदा कीं। बात-बात पर वहां के लोग क्रोध में आ जाते थे। चूर्णिकार ने स्पष्ट किया है—वहां तिल नहीं होते थे इसलिए तेल नहीं होता था। गाएं नहीं थीं इसलिए घी भी नहीं होता था। न तेल, न घी और इन्हें आयात करने का उनके पास कोई साधन नहीं था। आदिवासी घी-तेल कहां से लाते? वे रूखा भोजन करते थे, इसी कारण उनमें क्रोध बड़ा प्रबल था। व्याकरण में एक उदाहरण आता है—**बातघ्नं तैलं, पित्तघ्नं घृतम् कफघ्नं मधु**। तेल वायु का शमन करने वाला है, घी पित्त का शमन करने वाला है और मधु कफ का शमन करने वाला है। संस्कृत व्याकरण में भी इनका निर्देश मिलता है।

संतुलित आहार की परिभाषा

जैन आचार्यों ने सन्तुलित आहार पर बहुत बल दिया। आजकल लोग इस संबंध में बहुत कम जानते हैं और जानते भी हैं तो इस पर ध्यान कम देते हैं। सन्तुलित आहार की एक निश्चित परिभाषा थी। पूछा गया—मुनि को कैसा भोजन करना चाहिए? बताया गया—सदा रूखा नहीं और सदा चिकना नहीं। प्रणीत भोजन भी प्रतिदिन नहीं और रूखा भोजन भी हमेशा नहीं। इसका कारण बतलाया गया—यदि वह रूखा भोजन करेग तो प्रस्रवण के लिए बार-बार उठना पड़ेगा, स्वाध्याय में विघ्न पड़ेगा। कोरा रूखा भोजन ही करेगा तो क्रोध भी बढ़ जाएगा इसीलिए तपस्या में गुस्सा ज्यादा आने लग जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपस्वियों से इसलिए लोग डरते थे कि कहीं क्रोध में आकर शाप न दे दें। रूखा भोजन इन्द्रिय-नियन्त्रण के लिए जरूरी है और चिकना भोजन इसलिए जरूरी है कि जिससे स्वाध्याय की शक्ति रहे, ध्यान करने की शक्ति रहे। यदि प्रणीत भोजन नहीं मिलेगा, स्निग्ध भोजन नहीं करेगा तो बुद्धि भी कमजोर बन जाएगी। मेधा-शक्ति को प्रबल करने के लिए स्निग्ध भोजन को आवश्यक बताया गया है। यदि ऐसा भोजन नहीं मिलेगा तो कोरे मूर्ख भट्टारक रह जाएंगे, ज्ञान-ध्यान कुछ भी नहीं हो पाएगा। ज्ञान-ध्यान की वृद्धि के लिए संतुलित भोजन आवश्यक है और इन्द्रिय संयम के लिए रूखा भोजन भी आवश्यक है। दोनों का संतुलन रहे तो समस्या पैदा नहीं होगी। यह संतुलित आहार का बहुत महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण है।

मधुर रस

आहार में ही नहीं जीवन के हर क्षेत्र में संतुलन आवश्यक है। समस्या यह है—एक सामान्य आदमी इतना ज्ञान कैसे करे। हर आदमी इतना कैसे जाने? जौन ले तो निर्णय करना कठिन हो जाए। जब हर चीज में कुछ-न-कुछ कमी मिलती है तो फिर खाए क्या? इसका एक सीधा-सरल रास्ता निकाला गया—खाने के जितने द्रव्य हैं, उनके गुण-दोष जान लो। किन्तु इतने सारे द्रव्यों के गुण-दोष को जानना भी बड़ा कठिन काम है। दूसरा सरल उपाय बताया गया—रसों के आधार पर आहार का चयन करो। रसों का भी मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। मीठा रस कफ की वृद्धि करता है और वात का शमन करता है। हम स्वयं यह अनुभव करते हैं—जिस दिन चीनी ज्यादा खाते हैं उस दिन शरीर भारी लगता है और दिमाग भी भारी लगता है। मधुर रस के उपयोग में संतुलन रखें, मीठी वस्तुएं खाने में कम-से-कम दो दिन का अन्तर रखें। आज मिठाई खाई है तो दो-दिन फिर कोई मीठी चीज न खाएं। इससे एक संतुलन बना रहेगा। एक साथ दो लाभ होंगे—त्याग का त्याग और स्वास्थ्य का स्वास्थ्य। यदि व्यक्ति इतना विवेक जगा लेता है, इन छोटी-छोटी बातों को स्वीकार कर लेता है तो वह मानसिक स्वास्थ्य का सार्थक उपाय कर लेता है। ये छोटी-छोटी बातें हैं किन्तु जीवन में बहुत उपयोगी हैं। स्वस्थ जीवन के आकांक्षी व्यक्ति को इतना संयम करना ही होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अम्ल रस

अम्ल रस या खट्टा रस पित्त को बढ़ाता है, कफ को बढ़ाता है किन्तु वायु का शमन करता है। समस्या यह है—नींबू, अमचूर आदि की खटाई के बिना तो भोजन का आनंद ही नहीं आता। खट्टी चीजें कुछ सीमा तक स्त्रियों के लिए लाभप्रद हो सकती हैं किन्तु पुरुष के लिए सर्वथा हानिकारक हैं। आज की वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार अन्न के साथ खटाई खाना सर्वथा निषिद्ध है। पुरानी मान्यता के अनुसार भोजन के तत्काल बाद खाटे की गोली या ऐसी ही चीजें खाना जरूरी है किन्तु आज के वैज्ञानिक परीक्षण के अनुसार भोजन के साथ या उसके तत्काल बाद खटाई खाएंगे तो पाचन में गड़बड़ी हो जाएगी। हम इसका भी संतुलन रखें। यह संकल्प होना चाहिए—अम्लरस रोज नहीं खाना है या ज्यादा नहीं खाना है, बार-बार नहीं खाना है। हम इस बात को एकांततः न पकड़ें कि मीठा रस या खट्टा रस खाएंगे ही नहीं। यह रसों का संतुलन है, सीमाकरण है। इतनी मात्रा से ज्यादा नहीं खाएंगे, यह विवेक जाग जाए तो एक साथ दो लाभ होंगे। उसके विवेक से खाद्य संयम को बल मिलेगा, दूसरी ओर मन भी स्वस्थ रहेगा।

लवण तत्त्व

तीसरा तत्त्व है लवण। यह भी पित्त को बढ़ाने वाला है। डॉक्टरों के अनुसार, सामान्यतः एक आदमी को दिन भर में एक या दो ग्राम नमक पर्याप्त है। हम दिन भर में जितने भी द्रव्य खाते हैं, उसके आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि हम नमक की कितनी मात्रा का उपयोग करते हैं। जब अतिरिक्त नमक खाते हैं तो पित्त बढ़ेगा। इसलिए नमक खाने की सीमा हो। जो नमक का त्याग करते हैं, वे मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ा देते हैं। ऊपर से नमक नहीं लूंगा, यह बड़ा अच्छा त्याग है। त्याग इस बात का भी होना चाहिए कि दिन में इतनी नमकीन चीजों से ज्यादा नहीं खाऊंगा। अगर साग खा लिया तो फिर पापड़ नहीं खाऊंगा, पापड़ खा लिया तो कचौड़ी-पकौड़ी नहीं खाऊंगा।

रसों का संतुलन बनाएं

एक रस है कटु रस। कड़वा रस भी वायु और पित्त को बढ़ाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कटु रस का संतलन बना हुआ है, क्योंकि वह जीभ को कम मान्य है । दो रस और बचते हैं—तीखा और कषैला । ये रस भी कम खाए जाते हैं । दोनों वायु की वृद्धि करते हैं । तीखा यानी चटपटा । कटु, तिक्त और कषाय—इन तीनों रसों का प्रयोग औषधियों के निर्माण में अधिक होता है । मधुर, अम्ल और लवण—इन्हीं तीन रसों का प्रयोग भोजन में ज्यादा होता है । जहां संतुलन की बात आई, वहां यह बताया गया—यदि संतुलन करना है तो थोड़े-थोड़े कषैले द्रव्य का सेवन भी होना चाहिए । मधुर, अम्ल और लवण—इन तीनों रसों पर हम ध्यान दें और यह संतुलन बनाएं—इनका अति मात्रा में सेवन नहीं करना है या प्रतिदिन सेवन नहीं करना है । यदि प्रतिदिन भी करते हैं तो इनकी मात्रा को कम करना है । यदि यह संतुलन हो जाएगा तो फिर वात, पित्त और कफ का संतुलन भी बना रहेगा ।

आयुर्वेद की सार्थकता

संतुलित आहार का यह छोटा-सा लेखा-जोखा है । हमारे मन को प्रभावित करते हैं—वात, पित्त अैर कफ । उनकी वृद्धि या हानि होती है रसों के आधार पर, द्रव्यों के आधार पर । रसों के संतुलन से ये तीनों संतुलित रहते हैं । जब ये संतुलित रहते हैं तब हमारा शरीर भी स्वस्थ रहता है, मन भी स्वस्थ रहता है । शरीर और मन को स्वस्थ रखने की प्राचीन प्रक्रिया पर यह थोड़ी संक्षिप्त-सी चर्चा है । आज का युग तो वात, पित्त और कफ का नहीं, जर्म्स और वाइरस का है । डॉक्टर भी इन्हीं दो तत्त्वों पर ध्यान देते हैं, वात, पित्त और कफ के बारे में उन्हें भी ज्यादा जानकारी नहीं है । कभी-कभी मैंने इस बात को सुना है और इससे मुझे आश्चर्य भी हुआ है कि डॉक्टर अपने परिवार के लोगों को ऐलोपैथी दवा कम देते हैं । उनकी चिकित्सा आयुर्वेद या होमियोपैथिक से कराते हैं । इससे यह स्पष्ट होता है—आयुर्वेद के सिद्धान्त, जो शरीर और मन के संदर्भ में निर्धारित किए गए हैं, वे अर्थहीन नहीं है । इनकी सार्थकता को समझना आज के युग में भी आवश्यक है । यदि इन बातों को समझ कर इनका प्रयोग करना शुरू करें तो निश्चय ही शारीरिक और मानसिक—दोनों दृष्टियों से लाभ उठाया जा सकता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. मानसिक आरोग्य और अध्यात्म

तन और मन दोनों स्वस्थ रहें, यह हर व्यक्ति की स्वाभाविक आकांक्षा है। शरीर स्वस्थ हो और मन स्वस्थ न हो तो पागलखाने जाना होगा। मन स्वस्थ हो, शरीर स्वस्थ न हो तो अस्पताल, दवाखाने की शरण लेनी पड़ेगी। दोनों घर से दूर ले जाते हैं। शरीर से भी ज्यादा सताने वाली या कष्टदायी है मन की बीमारियां। मन बहुत सताता है। रोग के दो अधिष्ठान माने गए—शरीर और मन। इसी आधार पर बीमारी के दो भेद कर दिए गए—शारीरिक रोग और मानसिक रोग। धर्म या अध्यात्म के साथ मानसिक रोगों का संबंध ज्यादा है। एक सिद्धांत है—वीतराग को मन का रोग नहीं होता। मन का रोग नहीं होता इसलिए शरीर का रोग भी नहीं होता। मन शरीर पर जितना प्रभाव डालता है, जितने रोग पैदा करता है उतना वह मूल रोग नहीं होता। शरीर का रोग सबसे पहले प्रभाव डालता है शरीर पर और फिर प्रभाव डालता है मन पर। मन का रोग पहले प्रभाव डालता है मन पर और फिर प्रभाव डालता है शरीर पर। मुख्य प्रभाव अपना-अपना है। शरीर का रोग शरीर पर और मन का रोग मन पर। लम्बे समय के बाद या उत्तर काल में शरीर और मन—दोनों परस्पर प्रभावित होते हैं।

अध्यात्म की फलश्रुति

धर्म या अध्यात्म का सिद्धान्त है वीतरागता। शायद हमारी दुनिया में वीतराग से ज्यादा कोई सार्थक शब्द नहीं है। जीवन के विकास का इससे बड़ा कोई शब्द नहीं है। वीतराग बन गया, इसका अर्थ है—व्यक्ति शिखर पर पहुंच गया। कोई चोटी बाकी नहीं रही, जहां आरोहण करना हो, चढ़ना हो। वीतरागता सर्वोच्च शिखर या परम बिन्दु है। अध्यात्म की फलश्रुति है वीतरागता। अध्यात्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की आराधना इसलिए की जाती है कि वीतरागता उपलब्ध हो जाए। जो व्यक्ति वीतरागता की दिशा में प्रस्थान कर देता है उसके लिए मानसिक बीमारी का प्रश्न नहीं होता। वीतरागता के लिए तो है ही नहीं। ध्यान की साधना वीतरागता की दिशा में प्रस्थान है। व्यक्ति ध्यान करता है चित्त की निर्मलता के लिए। चित्त की निर्मलता का अर्थ है वीतरागता की दिशा में प्रयाण। जैसे-जैसे चित्त की निर्मलता बढ़ती जाएगी, वीतरागता का लक्ष्य निकट आता जाएगा। राग और द्वेष—ये दोनों मलिनता पैदा करते हैं। द्वेष की मलिनता का हमें पता चल जाता है किन्तु राग की मलिनता का पता नहीं चलता। वस्तुतः दोनों ही फैक्ट्रियों के जहरीले रासायनिक द्रव्य हैं जो हमारे चित्त को गंदला कर देते हैं, विषैला बना देते हैं।

अध्यात्म और आयुर्वेद का दृष्टिकोण

अध्यात्म का यह सिद्धान्त है कि वीतराग के मन में विकार नहीं होता, रोग नहीं होता अथवा वीतरागता की साधना करने वाले व्यक्ति को भी मन का रोग नहीं होता, क्या यह ठीक बात है ? हम इसकी कसौटी कैसे करें ? क्या स्वास्थ्य का सिद्धान्त इसे सम्यक् कहता है। स्वास्थ्य के दो सिद्धान्त हैं—प्राचीन और अर्वाचीन। प्राचीन सिद्धान्त है—आयुर्वेद और नया सिद्धान्त है—आयुर्विज्ञान। भारतीय स्वास्थ्य की प्राचीन परम्परा रही है आयुर्वेद। आयुर्वेद के आचार्यों ने मानसिक स्वास्थ्य के बारे में क्या सोचा ? क्या पाया ? इस संबंध में उनका दृष्टिकोण क्या रहा ? इस संबंध में खोज करें तो पाएंगे—आयुर्वेद के आचार्यों ने मानसिक रोगों को कई भागों में बांटा है। मानसिक रोग अर्थात क्रोध, लोभ, भय, काम, इच्छा आदि-आदि पचासों मानसिक रोगो के बतलाए। उनकी दृष्टि में क्रोध आदि मानसिक रोग हैं। एक आदमी क्रोध करता है। उसे अनुभव करना चाहिए—मानसिक दृष्टि से मैं स्वस्थ नहीं हूं। मानसिक दृष्टि से जो स्वस्थ होगा उसे क्रोध आएगा ही नहीं। जितने भी बड़े-बड़े महान सन्त हुए हैं, बड़े शान्त हुए हैं। गृहस्थी में भी जो बड़े-बड़े साधक हुए हैं, बड़े शान्त हुए हैं। बहुत बार प्रयत्न किया गया, अमुक संत को क्रोध आ जाए लेकिन सफलता नहीं मिली। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में ऐसी सैकड़ों-सैकड़े घटनाएं उपलब्ध हैं और अलिखित घटनाओं का तो कोई हिसाब नहीं लगाय जा सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुग्ण ज्यादा हैं, स्वस्थ कम

सूफी सन्त नदी से स्नान कर आ रहा था। वह एक गली से गुजर रहा था तो किसी ने ऊपर से राख और कोयले की बोरी एक साथ उसके ऊपर उलट दी। साथ में चल रहे लोग क्रोध से उत्तेजित हो गए। संत ने उन लोगों को शान्त किया। मुस्कराते हुए बोले—'भोले आदमियों ! हो सकता है मेरा कसूर इतना बड़ा रहा हो कि कोई मुझपर आग डालता। इस व्यक्ति ने कितनी मेहरबानी की है कि इसने आग नहीं डाली ठंडे कोयले और बुझी राख ही डाली। कितना भला आदमी है।'

यह स्वर उसी व्यक्ति के मुंह से निकलता है जो मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है। एक आदमी बड़ा क्रोधी है, लालची है। वह समझता है कि यह कोई बुराई नहीं है किन्तु ठंडे दिमाग से सोचें तो पता चलेगा—लोभ भी एक बड़ी मानसिक बीमारी है। आज यह मान लिया गया—महत्त्वाकांक्षा विकास का लक्षण है। महत्त्वाकांक्षा मांत्र जीवन चलाने के लिए हो तो उसे उचित मान लिया जाए किन्तु वह असीम बन जाए तो एक बीमारी ही कहलाएगी। स्वयं बड़ा बने, बेटा भी बने और पोता भी बने—यह महत्त्वाकांक्षा जागे भी तो बड़ा बनने के उचित-अनुचित तरीकों का विवेक भी समाप्त हो जाएगा। आज समाज में तेजी से फैल रहा भाई-भतीजावाद भी मानसिक-रुग्णता का ही परिणाम है। आज राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र का विश्लेषण करें तो मानसिक दृष्टि से रुग्ण व्यक्ति ज्यादा मिलेंगे और स्वस्थ व्यक्ति कम मिलेंगे। ज्यादातर आदमी अपनी बुद्धि से नहीं चलते, अपनी मनीषा से नहीं चलते। अपनी बुद्धि या विवेक से चलने वाले लोगों की संख्या कम है।

कारण है महत्त्वाकांक्षा

मानसिक बीमारी का प्रमुख कारण है—महत्त्वाकांक्षा। प्रतिस्पर्धा के इस युग में इसीलिए मानसिक रूप से स्वस्थ लोगों की संख्या कम है और अस्वस्थ लोगों की संख्या ज्यादा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह—ये सब मानसिक बीमारियां हैं। जिस प्रकार— सिरदर्द, पेटदर्द, घुटने का दर्द, बुखार आदि शरीर की बीमारियों की एक लम्बी तालिका है, उसी प्रकार मन की बीमारियों की भी एक लम्बी सूची है। आयुर्वेद ने इसकी पूरी तालिका बनाई है। इसकी अध्यात्म के क्षेत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से तुलना करें तो वही तालिका अध्यात्म के क्षेत्र में भी मिल जाएगी। यह एक ऐसा बिन्दु है, जहां स्वास्थ्य का विज्ञान और अध्यात्म विज्ञान—दोनों एक भूमिका पर आ जाते हैं। आयुर्वेद का सिद्धांत है—क्रोध मत करो। क्रोध एक बीमारी है। धर्म का सिद्धान्त कहता है—क्रोध मत करो। क्रोध एक बन्धन है। अन्तर सिर्फ भाषा का है। एक स्थान पर शब्द है बन्धन, दूसरे स्थान पर शब्द है रोग। यह भूमिका का अन्तर हो सकता है किन्तु तात्पर्य में कोई अन्तर नहीं है। इसीलिए कहा गया—स्वस्थ रहना है तो क्रोध, लोभ का त्याग नितान्त जरूरी है।

मूल कारण को पकड़ें

यदि अध्यात्म का थोड़ा भी अध्ययन करेंगे तो पता चलेगा—बीमारी का यानी बन्धन का मूल कारण क्या है? हम इस बात पर ध्यान दें। लम्बी तालिका पर जाएंगे तो समस्या पैदा हो जाएगी। उसे याद रखना भी मुश्किल है और उनसे बचने में भी कठिनाई है। तालिका को संक्षिप्त कर लें, छोटा कर लें तो बात पकड़ में आ जाएगी, मूल मर्म समझ में आ जाएगा। अध्यात्म के आचार्यों ने कहा—**रागो य दोसो बिय कम्मबीयं**। कर्म का बीज क्या है? बंधन का मूल क्या है? सिर्फ दो तत्त्व हैं—राग और द्वेष। राग और द्वेष—ये दो कर्म के बीज हैं, बंधन के बीज हैं। आयुर्वेद के आचार्य भी इसी बिन्दु पर पहुंचे हैं। उन्होंने कहा—हमने मन की बीमारियां बहुत गिना दीं। संक्षेप में कहें तो ये सारी बीमारियां दो कारणों से होती हैं। एक कारण है इच्छा और दूसरा कारण है द्वेष। इच्छा यानि प्रियता, द्वेष यानि अप्रियता। प्रीति और अप्रीति। प्रिय संवेदन और अप्रिय संवेदन।

पागलपन का कारण

आज दुनिया में जो यह अतिशय पागलपन बढ़ा है, उसका कारण क्या है? कारण दो ही हैं—असीम इच्छा और असीम द्वेष। प्रीति भी बहुत अधिक है और अप्रीति भी बहुत अधिक है। कुछ दिन पहले समाचार पत्र में एक समाचार पढ़ा—राजस्थान में मनश्चिकित्सालय कम हैं किन्तु पागलों की संख्या बेशुमार बढ़ती जा रही है। अनुशंसा की गई—सरकार पागलखाने और बनावाए। मनश्चिकित्सकों की नियुक्तियां की जाएं। हम मान लें—सरकार पागलखानो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और मनोरोग डॉक्टरों की संख्या बढ़ा देगी किन्तु क्या यह इस समस्या का सही निदान है ? जब तक पागल होने के कारण विद्यमान हैं, पागलखानों की संख्या बढ़ाने से इसका उपचार कैसे संभव होगा। चिकित्सालय और चिकित्सक रोग की चिकित्सा करते हैं, रोग न होने की चिकित्सा नहीं करते। इस ओर हमारा ध्यान नहीं जाता कि रोग कैसे पैदा हुआ ? क्यों पैदा हुआ ? बड़ी दिलचस्प बात है—पागल होने की चिकित्सा की जा रही है किन्तु पागल न होने की कोई तजबीज नहीं की जा रही है।

धर्म का सूत्र : मानसिक स्वास्थ्य का सूत्र

ध्यान-साधना का सारा उपक्रम इसलिए है कि आदमी पागल न हो, मानसिक दृष्टि से रुग्ण बने ही नहीं। इसके दो उपाय बताए गए हैं—इच्छा का संयम और द्वेष का संयम अर्थात् राग पर नियंत्रण और द्वेष पर नियन्त्रण। यही है मानसिक स्वास्थ्य का सूत्र और यही है धर्म का सूत्र। मन से स्वस्थ रहना है तो इच्छा का नियन्त्रण करो, द्वेष को कम करो। राग और द्वेष—इन दोनों को नियंत्रित करना, अध्यात्म की साधना का सार है। ध्यान प्रिय-अप्रिय संवेदन की चेतना को कम करने के लिए, अपने ही बनाए इस मकड़जाल से निकलने के लिए है। ध्यान करनेवाले व्यक्ति को इस बात के लिए सजग रहना होता है—ध्यान करने से मेरी प्रिय संवेदना कम हुई या नहीं ? द्वेष कम हुआ या नहीं ? यह ध्यान की कसौटी है। ध्यान की साधना करते-करते यदि प्रिय-अप्रिय संवेदनों की अनुभूति कम होती जा रही है तो समझना चाहिए ध्यान सध रहा है। यदि ऐसा नहीं होता है तो मानना चाहिए—ध्यान की दिशा उद्घोषित नहीं हुई है।

प्रश्न बुढ़िया का

राग-द्वेष से बड़ी कोई समस्या नहीं है। एक राजा का विशाल प्रासाद था। उसी के निकट एक गरीब की झोंपड़ी थी। एक दिन राजा के मन में आया— मेरे राजभवन के निकट यह टूटी हुई झोंपड़ी बहुत बुरी लगती है। यह राजभवन की शोभा को बिगाड़ रहा है। राजा के मन में अप्रीति आई। उसने अधिकारियों को आदेश दिया—इस झोंपड़ी को हटा दो। राजा के अधिकारी गए, उसमें रहने वाली बुढ़िया से बोले—'इसे हम हटा रहे हैं, तुम दूसरी जगह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चली जाओ।' बुढ़िया बड़ी समझदार, शान्त और धैर्यवान थी। उसने कहा—'मैं चली जाऊंगी किन्तु जाने से पहले एक बार मुझे राजा के दर्शन कराओ।' कर्मचारियों ने उसकी बात स्वीकार कर ली। वे उसे राजा के पास ले गए। बुढ़िया ने राजा को अभिवादन कर कहा—'महाराज ! इतने दिन आपके पड़ोस में रही। अब मैं जा रही हूं किन्तु मेरा एक सवाल है।' राजा को उसकी गंभीरता और दृढ़ता पर बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने स्वीकृति दे दी—'पूछो, क्या पूछना चाहती हो ?' बुढ़िया बोली—'महाराज ! आप न जाने कब से यहां रह रहे हैं ! आपके पुरखे भी यहीं रहते थे। मेरी झोंपड़ी भी तभी से यहां है। मैं आपके इस विशाल राज-प्रासाद और वैभव को सहन करती रही किन्तु आप मेरी इस जीर्ण झोंपड़ी को क्यों नहीं सहन कर पाए ?' इसी प्रश्न का उत्तर जानने की इच्छा है। राजा निरुत्तर हो गया। उसने अदेश दिया—'बुढ़िया को यहीं रहने दिया जाए। उसकी झोंपड़ी को न उजाड़ा जाए।'

यात्रा शुरू करें

आदमी सहन नहीं कर पाता। जब प्रिय और अप्रिय संवेदन जागते हैं, आदमी स्थिर नहीं रह पाता। समर्थ या शक्तिशाली तो बिलकुल ही सहन नहीं कर पाता। सामान्य आदमी हो या विशेष, जब-जब ये संवेदन जागते हैं, आदमी विचित्र स्थिति में चला जाता है। ध्यान की सबसे बड़ी उपलब्धि है—हमारी ऐसी चेतना जाग जाए, ऐसी दृष्टि जाग जाए, हम प्रिय-अप्रिय संवेदन का विश्लेषण कर सकें और उनसे बच सकें। यह बहुत कठिन काम है, किन्तु हम इस दिशा में चलना शुरू करें। एक बच्चे की तरह क्रमशः खड़े होने, चलने और बोलने की स्थिति की तरह ही इसका विकास होता चला जाएगा। ध्यान के द्वारा हम एक-दो कदम भी चल पड़े तो कभी-न-कभी यह लम्बी यात्रा पूरी कर सकेंगे।

स्वयं प्रयोगशाला बनें

ध्यान-साधना की यह यात्रा एक-दो दिन में नहीं, एक जन्म तक भी पूरी होनेवाली नहीं है। यह लम्बी यात्रा है किन्तु यदि हमने चलना शुरू कर दिया, संकल्प के साथ चलना शुरू कर दिया तो मंजिल निकट आती जाएगी। यदि सहन करने की शक्ति आ गई तो समझें—एक कसौटी मिल गई। हम इस कसौटी से अपने आपको परखते रहें, पता चलता रहेगा—ध्यान सधा या नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सधा ? कुछ लोग कहते हैं—एक लेबोरेट्री—प्रयोगशाला होनी चाहिए, जिससे मापा जा सके कि ध्यान लगा या नहीं लगा ? लेबोरेट्री में यंत्र यह परख सकता है कि त्वचा की प्रतिरोधक शक्ति कितनी कम हो गई ? रक्तचाप कहां तक चला गया ? हार्ट की धड़कन किस स्थिति में चल रही है ? यंत्र इन सब बातों को माप लेगा । **E.C.G.** का प्रयोग करेंगे तो हृदय और मस्तिष्क की गतिविधियों का पता भी लग जाएगा । किन्तु राग कम हुआ या नहीं ? द्वेष कम हुआ या नहीं ? इसका पता नहीं चल पाएगा । आज तक कोई ऐसा यंत्र नहीं बना है, जो इसका पता लगा सके । व्यक्ति स्वयं ही इसका पता लगा सकता है। यदि ध्यान केन्द्र के पास एक यांत्रिक प्रयोगशाला बने तो साथ-साथ ध्यान करने वाले व्यक्ति को अपने भीतर भी एक प्रयोगशाला का निर्माण कर लेना चाहिए। ध्यान करने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर एक प्रयोगशाला स्थापित करे तो यह पता चल सकता है—ध्यान लगा या नहीं लगा ।

स्वास्थ्य का सर्वोत्तम सूत्र

जहां स्वास्थ्य का प्रश्न है वहां स्वास्थ्य-शास्त्र और अध्यात्म-शास्त्र—दोनों एक बिन्दु पर पहुंच जाते हैं । हम दोनों दृष्टियों से विचार करें । धर्म में आस्था है तो धर्म की दृष्टि से विचार करें । स्वास्थ्य की आकांक्षा है तो स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार करें । जिस व्यक्ति को मन की दृष्टि से स्वस्थ रहना है, उसे कषायों को शान्त करना ही होगा । मानसिक स्वास्थ्य का एक सूत्र है—कषायों का अल्पीकरण, राग-द्वेष का अल्पीकरण । इससे बड़ा मानसिक स्वास्थ्य का सूत्र कोई भी चिकित्सा विज्ञान दे नहीं सकता । यह सूत्र ध्यान के द्वारा उपलब्ध होता है, इसीलिए ध्यान की साधना एक बहुत बड़ी साधना बन जाती है, मन को स्वस्थ, नीरोग, अरोग और प्रफुल्लित बनाए रखने वाली महान साधना बन जाती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. मानसिक आरोग्य और प्रत्याहार

प्रत्येक व्यक्ति मन का आरोग्य चाहता है। यदि उपयुक्त साधन न मिले तो यह चाह पूरी नहीं होती। हमें साधनों की जानकारी भी होनी चाहिए। उसका एक महत्त्वपूर्ण साधन है, प्रत्याहार या प्रतिसंलीनता। इन्द्रियां विषयों के साथ जितनी संपृक्त होंगी, उतनी ही बीमारियां बढ़ेंगी, चंचलता बढ़ेगी, इसलिए एक सीमा तक इन्द्रियों का असंप्रयोग करना आवश्यक है। विषय अलग रहे, इन्द्रियां उसके साथ जुड़ें नहीं। यदि इन्द्रियां विषयों के साथ निरन्तर जुड़ी रहीं तो आसक्ति इतनी तीव्र बन जाएगी, मूर्छा इतनी सघन हो जाएगी कि मन बौखला उठेगा। अगर मन को स्वस्थ रखना है तो उसका सबसे अच्छा माध्यम है— विषय अलग रहे, इन्द्रियां अलग हों और मन अलग हो। यदि निरन्तर कूड़ा-करकट आता रहा तो मन कैसे स्वस्थ और स्वच्छ रह सकता है ? इन्द्रिय, विषय और मन को अलग रखने की विधि खोजी गई और उसका नाम दिया गया— प्रत्याहार।

अन्यमनस्कता : प्रत्याहार

इन्द्रियों को विषय से अलग रखें, जोड़ें नहीं। वैसे भी आदमी कई बार इन्द्रियों को विषय से अलग रखता है। जब कभी आदमी शून्यता में बैठा होता है और सामने से कोई आदमी चला जाता है तो उसे पता नहीं चलता। इस स्थिति में उससे पूछा जाए—इधर से कोई व्यक्ति गया है ? उसका उत्तर होगा— मुझे पता नहीं। क्या वह झूठ बोलता है ? नहीं। वह शून्यता में था इसलिए उसे पता नहीं चला। शून्य अवस्था में कोई आदमी बैठा होता है तो सामने से गुजरने वाले व्यक्ति का उसे पता नहीं चलता, यह सचाई है। ऐसा भी होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है—दो व्यक्ति बात कर रहे हैं। तीसरा व्यक्ति विचारमग्न बैठा है। तीसरे व्यक्ति से पूछा जाए—ये दोनों क्या बातें कर रहे थे ? उसका उत्तर होगा—मुझे पता नहीं। मैंने कुछ सुना ही नहीं। व्यक्ति को उसकी इस बात पर विश्वास नहीं होता किन्तु यह सचाई है। यह एक प्रत्याहार है कि आंख-कान खुले हैं, बात हो रही है किन्तु व्यक्ति कुछ भी नहीं सुन रहा है। शब्द के साथ श्रोत्र-इन्द्रिय का सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ, प्रत्याहार हो गया। ऐसे सभी इन्द्रियों का प्रत्याहार होता है। सभी इन्द्रियों के विषय में यही बात है। जब आदमी अन्यमनस्क होता है, किसी दूसरी घटना के साथ उसका मन जुड़ा होता है तो उसके सामने चाहे जितने विषय आ जाएं, इन्द्रियों उसे ग्रहण नहीं करतीं। अन्यमनस्कता या शून्यता की स्थिति में सहज प्रत्याहार होता है।

सम्मोहन प्रत्याहार

प्रत्याहार की दूसरी घटना घटित होती है सम्मोहन में। एक सम्मोहक किसी पात्र को सम्मोहित करता है। उस सम्मोहन की अवस्था में प्रत्याहार घटित हो जाता है, इन्द्रिय और विषय का सम्बन्ध ही अन्यथा हो जाता है। जिसे सम्मोहित कर लिया जाता है, उसके हाथ में नमक रख दिया जाता है। सम्मोहक सुझाव देता है—देखो ! तुम्हारे हाथ में चीनी है। इसका स्वाद बहुत मीठा है और तुम इसे खा रहे हो। वह नमक को खाएगा किन्तु उस लवण का स्वाद भी उसे मीठा आएगा। यह भी एक प्रत्याहार है किन्तु यह प्रत्याहार बहुत उपयोगी नहीं है। साधना के क्षेत्र में वह प्रत्याहार या प्रतिसंलीनता उपयोगी होती है जहां स्वेच्छाकृत प्रत्याहार का विवेककृत प्रत्याहार होता है। ऐसे प्रत्याहार से ही मनोबल बढ़ता है।

प्रत्याहार संकल्पकृत हो

संकल्प-शक्ति को जगाने का, मनोबल को बढ़ाने का एक सशक्त उपाय है प्रत्याहार। साधक को इन्द्रिय-विजय करना चाहिए। व्यक्ति के मन में आया—आज मैं एक घंटा तक सामने से गुजरने वाले किसी भी व्यक्ति को आसक्ति से नहीं देखूंगा। यह एक प्रकार का प्रत्याहार है। एक संकल्प किया—एक घंटा तक आंख बंद कर बैठूंगा, किसी को नहीं देखूंगा। यह स्वेच्छाकृत प्रत्याहार है। विषय के साथ इन्द्रिय का सम्बन्ध स्थापित नहीं करूंगा, यह चक्षु इन्द्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रत्याहार है । आज मैं एक घंटा तक एकान्त में रहूंगा । किसी दूसरे की बात को नहीं सुनूंगा, उस पर ध्यान नहीं दूंगा, यह श्रवणेन्द्रिय का संकल्पकृत प्रत्याहार है । आज मैं मिठाई नहीं खाऊंगा, यह रसनेन्द्रिय या स्वादेन्द्रिय का प्रत्याहार है । उपवास एक प्रत्याहार है, प्रतिसंलीनता है इसीलिए वह इन्द्रिय-विजय का एक साधन बनता है । हम संकल्प से इन्द्रिय और विषय में वियोग करते हैं, दोनों को अलग-अलग करते हैं । एक ओर इससे हमारी संकल्प-शक्ति बढ़ती है तो दूसरी ओर इन्द्रियों को पोषण नहीं मिलता । इन्द्रिय और विषय में अपने-आप अलगाव हो जाता है । एक व्यक्ति के चश्मा लगता है किन्तु वह उसे कहीं भूल गया है, या चश्मा टूट गया है । इस स्थिति में समाचार पत्र उसके सामने है, वह उसे पढ़ना चाहता है किन्तु पढ़ नहीं पाता । यह विवशताजन्य प्रत्याहार है । वास्तव में प्रत्याहार वह होता है, जिसमें प्राप्त विषय से व्यक्ति स्वयं को स्वेच्छा से अलग कर लेता है । खाद्य पदार्थ सामने है और व्यक्ति यह संकल्प करता है—मैं इसे नहीं खाऊंगा । यह स्वेच्छाकृत प्रत्याहार है । मजबूरी में किया गया प्रत्याहार कभी-कभी मजाक का विषय भी बन जाता है ।

विवशताजन्य प्रत्याहार

एक आदमी होटल में भोजन करने गया । होटल के बैरे ने भोजन की तालिका सामने रख दी । उसने तालिका को देखा, जेब में चश्मे को टटोलना शुरू किया किन्तु चश्मा नहीं मिला । उसे घर पर ही भूल आया था । अब वह उस तालिका को कैसे पढ़े ? उसने बैरे से कहा— इसे तुम ही पढ़ लो। बैरा बोला—'महाशय ! मैं भी इसे पढ़ नहीं सकता, क्योंकि मैं भी अनपढ़ हूं।' उसके पास चश्मा नहीं था, इसलिए उसे अनपढ़ होना पड़ा । बैरे ने यही समझा—मेरी तरह यह व्यक्ति भी अनपढ़ है ।

विवशता में किया गया प्रत्याहार मखौल का विषय बनता है । उसका कोई बहुत मूल्य नहीं होता । मूल्य उस प्रत्याहार का होता है, जो हमारे संकल्प से निःसृत होता है । नहीं खाऊंगा, नहीं बोलूंगा, नहीं सुनूंगा, नहीं देखूंगा, नहीं छूऊंगा, नहीं सूंघूंगा—इस प्रकार पांचों इन्द्रियों का प्रत्याहार होता है तो मनोबल अपने-आप बढ़ता है, संकल्प शक्ति अपने आप बढ़ती है । जिसमें प्रतिसंलीनता की स्थिति कमजोर होती है, जो निरन्तर विषय के साथ जुड़ा रहता है वह मन का आरोग्य तो क्या, शरीर का आरोग्य भी नहीं रख पाता !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्यों चल रही है विज्ञापनबाजी ?

आकर्षण या लालच की वृत्ति बहुत सारी कठिनाइयों को जन्म देती है। एक आदमी बाजार में चला जाए, पास में पैसे हों तो इच्छाओं पर नियंत्रण कर पाना कितना कठिन हो जाता है। महिलाओं के लिए तो और भी मुश्किल हो जाता है। साड़ी और आभूषणों की दुकान के सामने से गुजर कर खाली हाथ घर लौट आना शायद उनके लिए कम ही संभव है।

आज इतनी विज्ञापनबाजी क्यों चल रही है ? वस्तुओं के निर्माता मनुष्य की दुर्बलता को जानते हैं। यदि यह दुर्बलता न होती तो विज्ञापन पर लाखों-करोड़ों रुपये पानी की तरह नहीं बहाए जाते। वस्तु चाहे खराब हो या हानिकारक, विज्ञापन व्यक्ति के मन और मस्तिष्क को इतना प्रभावित कर देते हैं कि व्यक्ति उसकी सारी बुराई को अनदेखा कर उसके उपयोग का लोभ संवरण नहीं कर पाता। यह आदमी की दुर्बलता ही तो है। दुर्बलता इसलिए है कि उसने प्रत्याहार की साधना नहीं की। साधना किए बिना दुर्बलता मिटती नहीं। कभी-कभी आदमी साधना करना नहीं जानता इसलिए ऐसा हो जाता है और कभी साधना करना जानता है किन्तु प्रत्याहार करना नहीं चाहता इसलिए ऐसा हो जाता है।

नियंत्रण की शक्ति है प्रत्याहार

जो व्यक्ति मन को स्वस्थ रखना चाहता है, उसे प्रत्याहार या प्रतिसंलीनता का अभ्यास करना ही होगा। यदि हम विषय-वस्तु के साथ इन्द्रिय का निरन्तर सम्पर्क बनाए रखेंगे तो मानसिक आरोग्य की कल्पना छोड़ देनी होगी। मन धीरे-धीरे बीमार होता चला जाएगा। प्रत्याहार नियन्त्रण करने वाली शक्ति है। इस नियन्त्रण की शक्ति का नाम है आत्मानुशासन या आत्मनियमन। यह एक ही शक्ति है, जो विभिन्न रूपों में काम करती है। इस शक्ति का हम एक ही अर्थ समझ लें और वह अर्थ यह है—हम मन की शक्ति को इतना विकसित कर लें कि कम-से-कम विषय के सामने आने पर अपने-आप को रोक सकें। यह निरोध की क्षमता ध्यान के द्वारा प्राप्त हो सकती है। धारणा, ध्यान, समाधि—ये ऐसे साधन हैं, जिनसे यह शक्ति विकसित हो सकती है। घर में कोई उत्सव होता है, तमाम तरह के व्यंजन बने हुए होते हैं किन्तु वह दिन तेरस का है और उस दिन घर के मालिक को उपवास का संकल्प है तो वह अपने उपवास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के संकल्प का पालन करेगा, उत्सव में बनने वाले स्वादिष्ट और मनोरम भोग्य पदार्थों से अपने आपको अलग रखेगा। यह है मन की शक्ति का विकास. सब कुछ सामने होने पर भी न खाने का संकल्प।

मानसिक आरोग्य और प्रत्याहार

हम दोनों पहलुओं को सामने रखें, मन की दुर्बलता और मन का बल—दोनों को सामने रखें। मन का बल अभ्यास के द्वारा ही बढ़ सकता है, मन का बल एक बार में नहीं बढ़ेगा, वह धीरे-धीरे क्रमशः बढ़ेगा। इन्द्रियां और उनसे जुड़ने वाले विषयों को अलग-अलग रखने की क्षमता जैसे-जैसे बढ़ेगी, मनोबल बढ़ता चला जाएगा।

मानसिक आरोग्य और प्रत्याहार—इन दोनों के सम्बन्ध में हम जानें और इसकी साधना को क्रमशः बढ़ाएं। एक बिन्दु वह आएगा, हमारे भीतर इतनी क्षमता आ जाएगी कि सारी इन्द्रियों के विषय सामने प्रस्तुत हैं किन्तु उनका हमारे सामने होना या न होना बराबर है। इस स्थिति का निर्माण बिना साधना के कभी संभव नहीं है। प्रेक्षाध्यान का उद्देश्य है—धीरे-धीरे यह क्षमता बढ़ती चली जाए। जो व्यक्ति इस क्षमता को प्राप्त कर लेता है, उसे कोई भी मनोगत वस्तु विवश नहीं कर पाएगी। कितनी भी आकर्षक चीज सामने आ जाए, वह चाहेगा तो खाएगा न चाहे तो नहीं खाएगा। चाहे तो देखेगा न चाहे तो नहीं देखेगा। कोई भी प्रलोभन उसे च्युत नहीं कर पाएगा, मन का पूरा नियंत्रण सध जाएगा। मैंने देखा है—आचार्यवर आहार से निवृत्त हो हाथ धो लेते हैं, मानो न खाने का संकल्प कर लेते हैं। उसके बाद कोई भी संत आए, कितनी भी स्वादिष्ट और पौष्टिक वस्तु लाये, उसके लिए कितनी ही प्रार्थना करे, आचार्यवर कुछ भी नहीं लेते। यह एक निरपवाद जैसी बात है। वस्तुतः यह एक संकल्प है, प्रत्याहार है। हम इस तरह की संकल्प शक्ति का विकास करें, प्रत्याहार का अभ्यास करें। यह अभ्यास एक दिन मनोबल को उस बिन्दु पर ले जा सकता है, जहां आदमी बड़े से बड़ा निर्णय और निश्चय कर लेता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य महाप्रज्ञ की प्रमुख कृतियां

- मन के जीते जीत
- आभा मण्डल
- किसने कहा मन चंचल है
- जैन योग
- चेतना का ऊर्ध्वारोहण
- एकला चलो रे
- मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि
- अपने घर में
- एसो पंच णमोक्कारो
- मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता
- समस्या को देखना सीखें
- नया मानव : नया विश्व
- भिक्षु विचार दर्शन
- अर्हम्
- मैं : मेरा मन : मेरी शान्ति
- समय के हस्ताक्षर
- आमंत्रण आरोग्य को
- महावीर की साधना का रहस्य
- घट-घट दीप जले
- अहिंसा तत्व दर्शन
- अहिंसा और शान्ति
- कर्मवाद
- संभव है समाधान
- मनन और मूल्यांकन
- जैन दर्शन और अनेकान्त
- शक्ति की साधना
- धर्म के सूत्र
- जैन दर्शन : मनन और मीमांसा

आदि-आदि

Jain Education International
www.jainelibrary.org

आमंत्रण आरोग्य को

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org